

समसामयिक हिन्दी-साहित्य उपलब्धियाँ

प्रधान सम्पादक
श्री मन्मथनाथ गुप्त

सम्पादक
डॉ० सुपमा प्रियदर्शिनी श्री रमेशचन्द्र गुप्त



नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-७

समसामयिक हिन्दी-साहित्य उपलब्धियाँ

प्रधान सम्पादन

श्री मन्मथनाथ गुप्त

सम्पादन

डॉ० सुपमा प्रियदर्शिनी श्री रमेशचन्द्र गुप्त



नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-७

प्रथम संस्करण

जुलाई १९६७

मूल्य ₹० १ ५०

प्रकाशक मंगलदास पब्लिशिंग हाउस,
'बुधसोम' जवाहर नगर, दिल्ली ७
विपी-बूट मई सड़क, दिल्ली ६
मुद्रक भारत मुद्रणालय दिल्ली ३२

सम्पादकीय

साहित्य में मतमनान्तरा का अन्त नहीं है। हममें लिभ्रान्त हान वाता का यह तसन्ना भी जाती है कि यह साहित्य का एकव्य मूचित करता है। प्रत्येक मतवा की ज्ञानों में छिपी या प्रकट एक कमीती है जिसेक कम्प्युटर पर साहित्य का क्या जाता है और हम यह बनाना है कि हममें बनना माना है और इतना पाठ। अज्ञात वात यह है कि एक जिसे माना कहता है वह वार दूसरा उस पाठ बनता है। एक उदाहरण दिया जाए तास्तथापि एक महाप्रतिभासना कलाकार गवर्माणर का कभी पचा न मक। हम प्रकार थोड़े साहित्य का निम्पण टगा पीर है।

फिर भी परम्परा स एव सबमाय कमीती है जिसे पर बाद उगली नहीं उठाना और न उसका बाद गान ही गिनना है। वह है महावात वाली कमीती। कहा जाता है कि ममय बल मूर है और वह दूध का दूध और पानी का पानी कर देता है और हर साहित्य का उगा अपयुक्त स्थान प्रर्णित कर देता है। हम इस सबमाय कमीती में अपना आलोचना का सूत्रपात करेंगे। क्या यह सच है कि जो साहित्य हजारों हजार वर्ष में जानू है और अभी तक नहीं मरा यही सभसे ऊँचा साहित्य है। जसा कि मैं बतनाया इस कमीती की तरफ निर्भीक आँस उठा कर नहीं देना इसलिए हमारी आलाचना का सूत्रपात यही न हाना चाहिए। क्या वह, महाभारत समापण, दूसरे देशों में जाय तो वाच विन, कुरान आदि सभसे थोड़े साहित्य हैं? क्या इन साहित्यों के दोषजोनों हान में साहित्येतर तत्व ही प्रधान नहा हैं? इतिवद न कहा है— मर मना नुमार शुद्ध बनात्मन मूल्यानन, यदि वह एक मरीबिकामात्र नहा है कवय एव भासा है। एसा हाना तब तक लाजिमी भी है जब तक कला का मूल्यान्त माहित और मल्पवातस्थायी स्थान और वात में मौजूद मनुष्या का भासा है। कवयार और उताकी कला के उपभाक्ता ना मोमिता हैं। हर युग और हर कलाकार के लिए एक प्रकार का साहित्य है ताकि घानु बना के एव व कामवागी हो सके। मज की बात है कि हर युग दूसरी युग के मरक १२

भयना ही साठ पमन् करती है ।

इस प्रकार गुद्ध कमीटी ता उसी प्रकार स एक काल्पनिक वस्तु है जस गुद्ध जाति । हम लाग वदादिका का श्रेष्ठ साहित्य मानत आये हैं । उनम साहित्यतर साठ कहा तक है इसकी चाह लगाने की किसी का आवश्यकता नहीं पड़ी क्योंकि उन पर महाकाल का सेवन चिपका था । वद उस समय का साहित्य है जब लिपि का विकास नहीं हुआ था । इसलिए व श्रुति के रूप में मौजूद था । कुरान का जिहाने हिफ्त कर लिया है इस लाग हाफिज कहनात है । उसी प्रकार बन्दत-स लाग मिलग जा महाभारत रामायण बाइबिल आदि के बहुत बड़े भग स्मृति में उद्धृत कर सकत है । इसका साथ यह तथ्य मिलाए कि बाइबिल की प्रथे जो श्रेष्ठ और अनुकरणीय मानी जाती है । सभी प्रथे हाल में बाइबिल का एक नया प्रथे जो अनुवाक प्रवागित हुआ है । कहा जाता है कि वह पहले से अच्छा अनुवाद है । पर वह कब इस रूप में माय हागा इसमें बड़ा सन्देह है । मैं कुरान के विवेचनों से बात का ता उहान कहा कि कुरान धरवी साहित्य का सबसे सुन्दर नमूना है । महाभारत रामायण आदि का नाम में इस प्रसंग में इसलिए नहीं बना चाहता कि इस साहित्य के रूप में श्रेष्ठ कहन वाल तो घर घर में मौजूद है और भारत में इस सम्बन्ध में किसी का सन्देह का भवकाण नहीं है ।

पर इन सारी बातों पर जब हम धय के साथ विचार करत हैं तो स्वत एक सन्देह उत्पन्न होता है कि क्या बात है कि हर जाति में धार्मिक पुस्तक ही मुख्यत साहित्यिक दृष्टि में सबसे ऊची कतिया माना गइ । हम यह नहीं कहत कि धार्मिक सागा न स्य सम्बन्ध में कोई पडमन् किया जिनसे उनका दायर में मान जाती कतिया है मवश्रेष्ठ कतिया मानी गइ । पर किसी पर किमा प्रकार का बईमानी का धाराप बिना किय यह कहा जा गरता है कि इन कतिया न ही भयन भयन दामरे में साहित्यिक मानन स्थापित किया । यह उसी प्रकार की बात है कि भयनी मा या दाने को बना नरकारिया या पक्वान सबसे अच्छी लगती है और बुद्धिमान पत्नी यदि वह पति का रिझाना चाहता भयनी साग में यह सोच लती है कि पति का द्रवित करन के कौन-सा तुगम है ।

समय की दृष्टि में ये धार्मिक पुस्तकें बहुत प्राचिन हैं । के कारण उनसे मा के पकाय हुए व्यजना का तरह यन् मुविधा थी कि वे व्यक्ति के लिए मानक बन जाए । ये महाभारत रामायण बाइबिल कुरान का नाम गैकडा यपों में पढ़न धारत है क्योंकि साहित्यिक गचिबाप एक विषय जिगा में प्रभावित हुआ — यम कोई सन्देह नहीं । यका एक दूसरे रूप में भी कहा जा सकता है कि बच्च साहित्य के रूप में दो भागों से होता है, वह एक तरह से उनका लिए

भाषा-भोष्टव का एक मानक बन जाती है। इसलिए विशयण यह कहत हैं कि विष्णु भाषा में निष्णात जाना हो तो उस लोरिया से गुरू करके भीतो न कि छाठवी श्रेणी से। अस्तु।

इस प्रकार हम दखत हैं कि महाकाल की कसौटी अन्ततोगत्वा गायद उतनी गुद कसौटी नहीं है जितनी कि हम अब तक मानत आये हैं और इस म्वन सिद्ध करके मान ली हुई स्थापना की मत्पना में सत्ह की गुजाइश है। दीघ जीवी होना अपन में एक बडा गुण है पर कवल दीघजीवी होनके कारण न तो साहित्य कोई ऊचा साहित्य हो जाता है और न कोई दीघजीवी ब्यक्ति महा पुम्प हो जाता है। इस सम्बन्ध में ब्यक्ति का प्रसंग उठान पर साहित्य के मानक क सम्बन्ध में भी अच्छी रोगनी पड सकती है। धम के कारण राम कृष्ण आदि पौराणिक ब्यक्तिय तथा बुद्ध, महावीर मूसा इसा मुहम्मद आदि एतिहासिक ब्यक्तित्व अभी तक हमार सामन मौजूद है और हम उनके सम्बन्ध में बहुत बुछ जानत हैं जब कि समय की दष्टि में हमार अधिक निवृत्त पणोसिया को हम कम जानत हैं। कल्पना कीजिए कि भारत में किसी कारण से हिन्दू बौद्ध जन धम लुप्त हो गण होने, तो क्या उस हालत में राम कृष्ण, बुद्ध, महावीर से हम उनी प्रकार परिचित होत जैसे आज है और उनी प्रकार प्रभावित होत जैसा कि स्पष्ट है हम प्रभावित हैं। मुझे तो डर है कि बहुत थोड़े लोगो को ही पता होता कि ऐम लोग भी हुए थे। चार्वाक एम महान और मौलिक चिन्तक को हमारे शास्त्रीय चिन्तक निगन गण हा, उनकी डकारा में (जो सक्डा वष तक जारी रही) यह पता चलता रहा कि ऐमा भी कोई महापुरुष जमा था।

अपन देण क सम्बन्ध में लागो को पूर्वाग्रह हान क कारण बात समझ में कम आयगी इसलिए हम इस प्रश्न को लेकर भरव प्रायद्वीप में उड जाने हैं। मान लीजिए वहा जो तीन बड़े-बड़े धम पदा हुए यानी यहूदी धम, ईसाई धम और इस्लाम समार से एकदम लुप्त हो जात तो क्या मूसा, ईसा और मुहम्मद का नाम उनी प्रकार से उजागर रहता जमा कि आज है? क्या यह सब नहीं है कि इस प्रकार के जिनन भी धार्मिक नेता या महापुरुष हुए हैं उन सभी की ब्यानि इस कारण है कि उनका मनवाद (गिप्या द्वारा कई बार अत्यन्त इतरी इत) अपने इद गिद साया-करोडा नागा को राह (परम्पर के अनुगार पूरा गुमराह) शिवा सका।

मैं भारत में अधिक उदाहरण नहीं मूगा, क्योकि जमा कि मैंने कहा जब अपन पूर्वाग्रह पर थोड़े पडतो है तो सरल बात भी समझ में नहीं आनी। इसलिए मैं पूछूगा कि क्या मूसा ईसा, मुहम्मद इत्यादि के गिप्यो में ही या उनकी

विषय मण्डलियों में उत्तर वह जो हम जाग पत्त नया नम जिनम दासी जि
 गणा के कारण प्रता होती है व गुण अनग ज्याज नही ता उनके समान थ ? पर
 उन जागा न श्रौर उत्तरा पुस्तरा का वष श्याति श्रौर वह गतिहागिर महय
 क्या गही प्राप्त हुआ ? वम श्यात एव ही कारण है व यद कि व महात्मा अपन
 टा गि श्रतन वषे गिरा पत्त नही वर नव मा उत्तर पत्त करना नही चाहा ।
 नम प्रचार मयावान वासी कसौरी व ताच वही प्रा भिनी रि गुठ या गिराह
 मपवतापुवव अनाना नी अभरत्त प्रत्या करता है, नही ता मूमा र्मा मुहम्म
 म वष मा नव तुल्य वष महापुष न गण पर उत्तर नाम पर न वार् अज्ञान
 नता के श्रौर न वत्ता है रि घट समुत्तर गरण गगामि ।

विभी नी हावत म उत्तर हमन जा गानावना की उमम म पत्त हा गया
 रि महात्मा की कसौरी वार् श्रत निर्यात्तिय श्रौर गुठ माना नही है जिगत
 हम मात्तिय ता ताप जाय श्रौर ताच वर मर । मौरा अथ मौरा वष म
 जोवित ह । उत्तरा अध्यायन भा जाता है पर इस कारण व अथ थप्ट मात्तिय
 व अन्तगत नहा मान ता मरत । ई श्राता उताहरण श्रमिण नया दना चाहता
 रि विष पात्त श्रय न उताहरणा की प्रस्तुत कर मरत है ।

अप प्रान वष उटना के वि मौरावत वार् सम्पूर्ण श्रिशास-श्यास भगौरी
 गया है ता श्रागिर मात्तिय की कसौरी क्या के ? नम प्रयग म रि श्राकर
 पाटवत न वविता के सम्बन्ध म ता जात वष के उमम मार मात्तिय व सम्बन्ध
 म श्रिपति श्रौर भा उत्तरा भरा ता जातो के । नया वत्ता है पर युग की
 कविता अगत अग का मन्तुल नया वरती वन्ति वर नर् पुन (परना कविता
 की प्रामा क्या हूँ भी) एमा कविताया का माग वरता के ता श्रिधर विचित्र
 श्रौर विचित्र श्रय म उम मग की श्राना ममश्याया नया श्राता ताया वा श्रिभ
 श्रया करे ।

श्री का श्रिय न माना मूमर गत्ता म वत्ता के वार् भी पुन वत्ता
 म श्रौ प्रार की श्रिशासा गया मना अम रि श्रौर पुन वत्ता के । न पुन हर
 श्रिया की तरट वत्ता व मूरारता व अरत श्रौ विभाजन प्रस्तुत वरता है
 वत्ता म श्राना माग म वरती है श्रौर वत्ता का उपयोग भी उत्तरा श्रि म
 श्रयग श्रयग है ।

इस प्रकार गया म पक जाता है रिश्र पुन अतग अतग वत्तु की माग
 वत्ता है । मात्तिय व मात्तिया । ता श्रावियर एम वत्तावत व सम्बन्ध म
 वष वहा है रि न युग ताका श्रिशासा की अतग अतग श्रावाम म मगहाता श्र
 है एमा ममश्रवना व श्राव । श्रिपति ममश्र है । नम वष कसौरी श्रिशासी

गद है कि महान माहिय वह है जिमको अलग अलग युग अलग अलग कारणों से सराहें। यदि हम इस कमीठी का लहर महाभारत और रामायण पर लौट जायें तो एसा लगता है कि यह कमीठी उनक धर्मोत्तर अंग पर लागू हानी है। महाभारत रामायण और श्री प्रहार श्रीक पुराणा में बहुत म अंग ऐसे हैं जिनका धर्म म कर्म प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है बल्कि यन् कर्मा जा सक्ता है कि धार्मिक नताया न उन अंगों का उपयोग अपन मन के प्रतिपादन और प्रचार म एक हृद तक जवदस्ती किया है जसा कि पुरोहित रूप, रम गंध धूप दीप, नवद्य, मुन्तर भवन आदि के द्वारा धार्मिक विचारों को पुष्ट करता है। ट्राटस्की ने लिखाया है कि धार्मिक प्रचार म इन अवान्तर उम्मुआ का क्या स्थान है। इस प्रकार एक कमीठी यह तो निकन ही सक्ती है कि हम इस रूपा म उन पुस्तकों को लें कि उन धर्मों म हमारा काम सम्बन्ध नहीं या यह हिसाव लगा न कि जिस युग म य धर्म न हाग उस युग म इन पुस्तकों को क्या हैसियत होगी। प्रत्येक धर्म के साथ समार का रूपन का एक तरीका बढाना उद्देश्य एक विश्व चिन्ति बधी हुई है। इस विश्व चिन्ति क लिये स निकन कर विचार करें, जस कि आदिमिनीय गुरुवाक्यण के लिये म निकन कर पैर रखन का एक स्थान चान्त थ, तभी हम महाकाव का आशीवात् प्राप्त साहित्य कहा नर मोना है और कहा तक ग्यो, यह जान सकन है।

फिर एक दूसरी बात लीजिए। महाभारत रामायण आदि साहित्य के सम्बन्ध म यन् माना जाता है कि वह धार्मिक चिन्तक दृष्टि का प्रतिपादन करता है पर विद्वेषण करने पर उन अंगों म बहुत न अंग ऐसे मिलन जा उस विश्व चिन्ति म बिल्कुल अलग जान है। कवीन्द्र रवीन्द्र ने महाभारत व सम्बन्ध म आलोचना करत हुए कुछ वाक्य लिगे थ जा इस सम्बन्ध म बहुत प्रामाणिक हैं। उन्होंने लिखा—' हमम सन्देह नहीं कि विभिन्न युगा म महाभारत विभिन्न लोगों के हाथों म पडा। उन पर अवान्तर आघातों का अन्त नहीं था उसकी बनावट धर्माधारण रूप म मजबूत थी इसलिये वह टिक गया। स्पष्ट है कि भीष्म का चरित्र धर्म-नाति प्रवण है—यथास्थान आभास म और दृगित म कुछ ह्म तक आलोचना म विरुद्ध चरित्र और स्थिति के साथ द्वन्द्व म यन् परिचय मिलन पर भीष्म का व्यक्ति रूप इस उज्ज्वल हानर उभरना चाहिए। काव्य पत्र म समय हम यही चाहत हैं। पर ल्या जाता है कि किसी एक काल म हमारा लैग म चरित्र की नीति के सम्बन्ध म पूर्वाग्रह विनाय कारणों म अत्यन्त प्रबल था। इसलिए पाठकों की आपत्ति की मोका स्थिति बिना कुम्भेय व निहाम म गराय्या पर लटे हुए भीष्म के साथ एक लम्बा-या पर बावबर उन नीतिवशा मे स्थापित

रर लिया जाता है। तनीजा यह है कि भीम का चरित्र अनेक मनुष्यों की बात व नाच बट जाता है। भगवन माना आज भी पुरानी नती हुई गायक अभी पुरानी न पड़े। पर पुम्भोज व युद्ध का गवकर सारी गोता की आवन्ति करना मान्य व आत्म व अनुसार निम्नदह एक अपराध है। शोचण व चरित्र का माना की भावना से प्रभावित करने की साहि यिर प्रणाती न मक्ती है पर मनुष्य व प्रभावन से उसका व्यतिथम किया गया है तथा क्या जानना उसम माना की नती नही जानी। अपोष्या वाण तव रामायण म राम का जा रूप त्यन का मितना है उगन उनका चरित्र प्रकाशित है। उसम आती लया भी है बुरी लिया ना है आत्मगण्डन भी है। कमजोरिया ना पयक है। यद्यपि राम प्रधान नायक है फिर भी श्रेष्ठता के किसी बात प्रचरित व न-वधाण नियम से न अस्वाभाविक रूप म जरू व लियाया नही गया, अर्थात किसी एक गाम्भीर्य मन का अतिदान कराही दन व वाय म उर पाठक का अज्ञान व सामन वरधर म वर मरान व रूप म रन नही किया गया। पिता व माय का रक्षा करने व रगा म पिता का प्राणहना किसी हू तव गाम्भीर्य बुद्धि की चोरण म पित हा मरना है पर बानी रा वध न ता गाम्भीर्य है न धार्मिक। मर बान रामचर न त्रिगुण सत्भ म माना व मरध म नमण पर जिम वप्रोचित ता प्रयाग किया है उसम भी श्रेष्ठता का आत्म अनुष्ण नया रहा। रामायण व कवि न किसी एक मन म मगति बठान व मानव म राम व चरित्र का निमाण रन किया यानी जो चित्र निमित्त हुआ है व स्वभाव का है मान्य व है वराचन रा नया है। पर उनरवाण्ड विगत युग की दन्वन्तासगी मरर आया।

म प्रार म हम दान है विपम पमदाला रवीद्र व अनुगा भा रामायण मोर महाभारत म पम मान्य पर लान का कुचला करता है। चवन हुए यह बता लिया जाए वि धान जो बहन-म माग मान्य व मत्र म न्डीमणन का प्रान उगारर ममान है वि व वरन वर नार मररर रन रन गयण का वध कर र है उर यह जानना चानि वि पम न मरन वय ता मान्य, मगीत मोर कता का रतामणन किया। माग मान्य धार्मिक या। मागी कताही धार्मिक थी। फिर भी वर वर नया वर मरता वि उसम का उच्च मान्य या ऊधी कता का मूजन रहा हया। धार्मिक शर व शरजु ध्याग शान्ति मानव एत्रिका धानि उगम हुए। मान्य का भितिया पर न जान किया नाम जान कमाचार अना जीम लिया पर। मम म कुण म है त्रिधम हडम वर ताया मोर का का नती कर पाता। मगी म म म पर कता है वि धान पम

किसी कारण से बुझ ही जाए, जसा कि हमारा क म्यात्रे से आधुनिक हिस्से में ही चुका है, तो भी धार्मिक साहित्य का एक अंग जीवित रहेगा क्योंकि वह कई बार एक वक्रे हूँ तक साहित्य भी बना है और जिस हूँ तक वह साहित्य है वह जीवित रहेगा।

चरन हुए एक दूसरे विषय का भी उ द्रिया जाए जिस रबीन्द्र न छुआ है। वह यह कि केवल हमारा एग क पुराणा में ही नहीं सभी देश के पुराणा में व्यक्ति का उसके ममग्र रूप में, का न उजल रूप में, पण किया जाता है, न कि केवल जसा कि रबीन्द्रनाथ न कणा, धार्मिक उपपत्तिया क कटघर में खड़े एग गवाह के रूप में। दुसरे है कि आधुनिक हि से में जा भी जीवितिया किसी जाती है उनमें यथा के बाल उजने रूपा या दखन प्रियान की परिपाटी नहा है। उसके अगली जीवन क म्यात्रे में पञ्चन की चला नहीं की जाती बस हीनकार विरवान के हीन चीरेन पान करके गुरु दिया जाता है और एक आत्मा का मुर्दा रूप प्रस्तुत किया जाता है।

ऊपर जा कुछ हमने क्या उमम युगा में चला आए हुए साहित्य का फिर से परखन और उसकी धार नन का मुकामा स्पष्ट हो गया। प्राचीन साहित्य में भी कई तत्त्व हम हैं जो आधुनिक हैं और उनमें आधुनिक युग भी अनुप्रेरणा ले सकता है जसा कि मैंने जीवनी रचना के क्षेत्र में उचित किया। धर्म न साहित्य का अपने स्वाथ क विना स्थानमान करना चाहता और किया पर वन उम सम्पूर्ण रूप में पचा गया एसा नहा क्या जा सकता। महाभारत और रामायण में गयी रचना भी क्याण और चरित्र हूँ जिसे पचान क विना उद्भूत तरण की धार कथाए गलती पची हैं। हमका प्रत्येक पक्ष पर नतना बाहुल्य है कि हम हमक द्यौर में जान की आवश्यकता नहीं। हमीविना ऐसा नगता है कि महाभारत रामायण तथा ग्रीक पुराणा पर आधारित हमर बजिल आदि क मन्वाय आदि मानव जानि के अत्यन्त प्राचीन साहित्य उग उम समय भा जीवित रहेग जब धर्म नहीं रखा। इसका कारण यह है कि महाभारत और रामायण एक तरफ जहाँ धार्मिक हैं वहाँ क अधार्मिक भी हैं उग द्रोणी क ५ पति, कुन्ता क ३ पति इत्यादि। ग्रीक पुराण में सम्बन्ध में विनाप उल्लेखनीय है। अर ग्रीक में वह प्रचीन धर्म प्रचरित नहा है जिसमें आतिथिदा क नतनाया का पूजा होती थी फिर भी ग्रीक पुराण की कहानिया न केवल ग्रीक जानि की सम्पत्ति है बल्कि सार हमार की सम्पत्ति है और व तब तक पची जायेंगी जब तक मनुष्य जानि मौजूद है। स्पष्टनिधिया क पुराण क सम्बन्ध में भी यह बात कही जा सकती है। हमके विपरीत तात्मुन्य चार्डविन और कुरान क बहुत थोड़े धर्म के

सम्बन्ध में यह बात कही जा सकती है। यह धर्मों में अपने धर्म प्रथा का धर्मोत्तर सामग्रियाँ का आक्रमण से यथासाध्य सुरक्षित रखा गयी है कि जब तक यह धर्म है तभी तक यह धर्म सप्रहास्यता का बाहर किया पडेगा।

साहित्य के विषय में जिस प्रकार में हम साहित्यतर कागण से प्रभावित होने हैं यह हम कुछ तक पहले स्पष्ट बता चुके हैं और यह स्पष्ट चुके हैं कि बहुत सा साहित्य साहित्यतर कारण से महाकाल का आगीवाप प्राप्त कर सरा। अब हम मूल्यांकन सम्बन्धी एक दूसरी विडम्बना का उदाहरण प्रस्तुत करगें। कब्रार नानक चतुर्थ आदि बहुत बड़े चिन्तक माने जाते हैं। ऐसा समझा जाता है कि बुद्ध के बाद उन लोगों ने एक नई वाणी दी। पर क्या उनके साहित्य का सही और अन्तिम मूल्यांकन हो चुका है? एक बात तो यह है कि इन लोगों के साथ एक एक सम्प्रदाय भी जुड़ गया है। अब सम्बन्ध में जो कुछ कहना है उसे हम पहले ही कह चुके और उसी कारण उनके साहित्य या वाणी को जिस प्रकार अर्थ उसी प्रकार के लोगों की वाणियाँ का मुकामले में अधिक प्रमुखता प्राप्त हुई इसका मूल भी हम पहले ही बता चुके हैं। यहाँ एक दूसरी दृष्टि से इनके पुनर्मूल्यांकन की बात पर विचार करगें। इन तीनों महापुरुषों की विशयता यह थी कि उन्होंने विद्वानों आक्रमण का मानकर यह आवाज उठाई की धार्मिक सामाजिक क्षेत्र में उन विद्वानों आक्रान्ताओं का विचारों के साथ उस आचार पर समझौता किया जाय कि तू भी नला और मैं भी नला। कबीर ने इसके साथ अपना और जोड़ दिया कि तू भी बुरा और मैं भी बुरा। उन्होंने करके पत्थर जोड़ कर मस्जिद बनाकर उस पर वाग्य उन बात मुल्ला की यदि इस कारण निन्दा का कि यहाँ पर रहने वाले का आराधना गतता है तो दूसरा तरफ उठाने हिन्दुओं का भी यह चुनौती थी कि यदि पत्थर पूजन में भगवान प्राप्त होते हैं तो मैं पहाड़ पूजना। तब बहुत मरन और मीमांसा चार करन वाला था। कुछ भी हो कबीर ने भी विद्वानों आक्रमण का राजनतिक विरोध नहा किया। कल के वे विद्वानों आक्रान्ताओं का भारतीय बन गये और हम उन्हें पचाना चाहते हैं (यद्यपि पचान की प्रक्रिया में शरीर का एक विराट अंग शरीर में कन्धर पाकिस्तान का निर्माण हो गया)। इसलिए हम ऐसे सभी मन्त्र चिन्तकों और राजनीतियों का स्वागत करने हैं जो हमारे वर्तमान आत्म का बन पहचान हैं। इसलिए हम लगता है कि कबीर नानक चतुर्थ आदि का अन्तिम मूल्यांकन अभी होना है। यह स्मरणयोग्य है कि उस समय मुसलमान विद्वानों थे और हम उनका उस रूप में स्मर रहे हैं। जिसमें विद्वानों धर्म का साथ अपने धर्म का लिए समझौता या सह अन्तिम का नारा दिया उमने धर्म में क्या किया यह हम तभी समझ सरते

ॐ जय हम समका सभी नष्टिया म तात ।

म्यन म स्मनाम स्मनावर हाकर गया और उम बहा म मार खाकर नाटना पना । मान तीजिए बना एम कुउ मन्त बवि हात जिहात अपनी कृतिया म स्मनाया और विन्गी आशान्नाया का एक पराय पर रखा हाता और टाना क महअस्मिन् का चण्ण उटाया हाता ता म्यन म स्मनाम क निष्फामिन हात क पात उन बविया मन्ता और चिल्लका का क्या समया जाना । एकर हात क स्निहाम म एन उपाहरण न । मान ताजिए हिन्दर का विन्वविजय वाला स्वप्न पूरा जाता ता फाम म जमनी की अर्धीनता मानकर कच गतजाना और एनि हासिक भवना के रख भागत्र पना क्या समय जान ? क्या एक सम्बन्ध म स्म बह विचार शकत जा आज रखत हैं यानी क्या हम उह एन स्मदानी सम यत ? यदि स्निन्दर की विजय हा जानी ता मागल पना एक व्यावहारिक राज नासिन मान निय जान जमा कि वह अत्रय मान जान । स्मा अनुपात म स्गात आशि गुल्ल म्य म जमना क विन्ड गुरिल्ला युद्ध करन वान नागा क मूल्य म अन्तर आ जाता । अधिक म अधिक स्गात एम लाग अयावहारिक आतकवाणी या स्वप्नद्रव्य अराजकतावाणी मान जान । वह अत्रय ही जेद म मगत स्मम गी वनी बात है कि उनका ठीक मूल्याकत न हा पाता ।

उमी प्रचार यदि भारत म आय हुए मुस्लिम घमावनम्बी विन्गी निवार न्यि जान ता उन मन्ता और चिल्लका की क्या हातत आती स्मकी स्म कल्पना कर गतत है । आज स्म एम मन्ता और चिल्लका की आवयसता है (स्मरण रण साक्षियतर कारण म) स्मदिग हम स्मकी जस्म अनाग पर यत कहना कि उम युग म स्न नागा की विचारधारा सम्पूर्ण म्य म गुड थी यत विन्वुन दूमरा जत हागा ।

स्मन ऊपर जा ताग फलाय उनन किमी साक्षिदक मन्ध की स्थापना की बात तो दूर रगी मार मूल्य अजीब तरीक म उवन्-पुवद गय । पर जमा कि हमन एम दौरान बार-बार क्या है कि क्या मन्भागत क्या रामायण क्या वजिन क्या रामर क्या यूरोपीस्मि क्या साफाकिसम सभी जाविन साक्षि म कुउ तत्व एम है जा तब मनी थ और आज भा उपयोगी हैं । हम अस्मिन् स्मस्मण नया दंगे । रामायण मन्भागत स्मागे सामन है । स्मा और वृद्ध का बनिमान ना हमारी छाया क सामन मौजूद है और हमगा रहगा । पर जमा कि घेन उताया कि स्मा का करान स्माया के प्रचार-वाय मिथ निमाण म अत्रय करक स्मना पन्गा जा पायत सम्भव नती है । व्यक्ति क सम्बन्ध म क्या स्म बात साक्षि क विषय म भा गती जा सकती है । मन्भागत, रामायण ना जा ना प्राचीन

साहित्य है यहा तक कि काविदास को रघुवंग आदि कृतिया का भी, धार्मिक प्रचार त्राय और मित्र निमाण की प्रशिया में अन्तग करके देखना है। खुशी की बात तो यह है कि एसा करने पर भी हम धरोहर में बिल्कुल गूँथ नहीं हो जाते, बल्कि जसा कि मैंने कहा प्राचीन विद्वान्-साहित्य में बहुत-से ऐसे तत्व जन्म-तथा विद्वान् मितत है जिनसे आधुनिक यद्य अनुप्रेरणा भी ले सकता है।

हावड फार्म ने यह लिखाया है कि कहा यूरोपियन एक प्राचीन ग्रीक कवि और कहा अमराका में लिखा कि अधिकांश के लिए लक्ष्मणवामिया ने यूरी विडिस से अनुप्रेरणा ली। एक नयी महिला एडिथ हैमिन्टन ने यह लिखा— 'प्रगति के लिए युद्ध में वह मरदा आगामी कतार में खिंची पड़ता है। इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ जो आधुनिक मध्यक ताइफालव विनागर हा गायद ही किसी कवि में पायी जाती हैं। वह विद्रोही ही मन्त्र युद्धगोत है कभी पराजय स्वीकार नहीं करता।

इस और ध्यौर में नहीं जाएँ। महाभारत से हम बहुत-से प्रमथ निकालना सकते हैं जिनसे किसी भी नये आन्दोलन के लिए आत्म वाक्य प्रस्तुत किए जा सकते हैं। एक ऐसा वाक्य नीजिए— देवायत्तम कृते जन्म ममायत्तम तु पीर्यम। फिर युद्ध की वह वाणी— 'ह्लासन शुष्यतु म गरीर त्वगस्थि मासम ।' 'सा की वह वाणी— भन ही एक उर सूर्य के छेद में निकल जाये पर धनी 'यकिन स्वग में नहीं जा सकता। — 'मनिग मैंने महाकान की कसीरी पर तब ताइड की जो तज रागनी गनी उसके पनम्बक्य बहुत सी धरोहर गायद धरासायी हो जाए कि भी नये गपु निकलते हैं बहुत कुछ बचता है और यह कोई आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि मनुष्य अपना माया के समुद्र मंथन के दौरान न जान क्या-क्या नक्षत्री और अमन उपाजित कर चुका और उसने न जाने क्या क्या निर्माण किया है भन ही वह निर्माण कही युद्ध रूप में न मिनता हा।

इस प्रकार ध्यो में एक ताना बाना प्रस्तुत करने के बाद जब हम आधुनिक साहित्य पर आते हैं तो हम उस सम्बन्ध में भी एसा चगता है कि जो जसा दीख रहा है गायद वह बसा नहीं है। यदि प्राचीन साहित्य के साथ कुछ दूसरे तत्व चिपट हैं जिनसे हम उन्हें मही रूप में नहीं देना पाते हैं तो आधुनिक साहित्य के माथ भा कर्त उपासग लग हैं और इसके लिए बड़े-बड़े यद्वात्र किये जाने हैं कि हम साहित्य का ठीक से न समझ पाय और प्रचार में वह बह जायें। हम मसार के सबसे समझ गेग अमरीका को लेते हैं। वहा के सम्बन्ध में जानकार जो कुछ बताने हैं उगम कुछ इमानान नहीं होता। जब एक पुस्तक प्रकाशित होती है तो रविनाम बीकनी में यानी प्रकाशका की पत्रिका में उसके सम्बन्ध में बड़ा जबर

दस्त प्रचार-काय किया जाता है। प्रत्येक पुस्तक के प्रचार के लिए कुछ हजार डालर के विज्ञापन पहले में तय हो जानें हैं जिसमें उसकी मांग तैयार की जाती है। समालोचक जानते हैं कि क्या करना है क्योंकि वे ज्यादातर विराय के हान हैं। कुछ साहसा आलोचक भी होते हैं पर इसमें भी पाल यह है कि किसी पुस्तक का प्रसिद्ध बनाने के लिए कुछ विराधी आलोचना भी कराई जाती है। एक तरफ जहां उम पुस्तक के सम्बन्ध में यह थाया किया जाता है कि वह युगान्तरकारी है वजाड है, मानुमटल है वहा दूसरी तरफ अन्य प्रकार के मुर भी अलाप जाते हैं। हाकर फास्ट न इसका बहुत ब्यौरवार बणन किया है। जब पुस्तक एक पुष्य है उस पर पूजा लगाई जाती है उसमें कितना मुनाफा थाया यह बूना जाता है तो मुनाफा बढान के लिए भा तरीके किए जाते हैं जिस तरह में और माला के सम्बन्ध में किया जाता है। इस प्रकार साहित्य में दुकानदारी के तत्त्व भी बहुत प्रबल रूप से घुमपटिय के रूप में आ चुके हैं।

हमारा एक पिछला हुआ है इसलिए अभी दुकानदारी के ये तत्त्व हमारे मूल्या पर और मूल्यावन पर उतने अवरोधन तरीके में हावी नहीं हो सके पर यह कहना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है कि हमारे यहां भी साहित्य का मूल्यावन मन्ने ढग में हो रहा है। यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे यहां जो पुरस्कार दिये जाते हैं वे मन्ने लागे का ही मिलने हैं या मन्ने सही लागे पुरस्कार पाते ही हैं।

यदि इस निम्न थायरे में निकल भा आय तो भी यह कहना सम्भव नहीं है कि साहित्य का मूल्यावन ठीक में होना है और यह मूल्यावन हा भा कम जबकि मारा व्यवस्था बिगडा हुई है और अज्ञानकार हमारे दग में अणवाण नहीं बल्कि नियम बन चुका है।

साहित्य के सम्बन्ध में स्थानाभाव के कारण कबल यात्री-मो वाता का धार ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है। कहने का कला कला के लिए या कला समाज के लिए यह निकल बना पुराना पट चुका है, पर चाल वह जितना पुराना पड, वह नय-नय नया आद कर हमारे सामने आता है। अब भी साहित्य पर जितना जा-बुछ विचार हो रहा है उसमें वहा पुगनी अन्तरदाकनी नय जम पाकर सामने आती रहती है। अब यह कुछ फगन-गा हो गया है कि मारे मूल्या नकार जायें और उनका हमें उठार्ड जाय। हम सम्बन्ध में अब नवलगत के चहरे स्वामाविक रूप में हमारे सामने आता है। फिर अणुवम के कारण अब स्थिति यह हो गई है कि हम उन्मोववा मन्ने के तरीके में यह माचन में अममय है कि अन्तनागरेण अन्तिम अणुवम में अन्तिम की ही विजय होगी। स्थिति ना यह है कि

साहित्य है यहा तब कि कालिदास की रघुवंग आदि दुनिया को भी, धार्मिक प्रचार काय और मिथ निमाण की प्रक्रिया से अलग करके देलना है। सुशी की बात तो यह है कि एसा करन पर भी हम धरोहर से बिल्कुल शून्य नहीं हो जाते बल्कि जसा कि मैंने कहा प्राचीन विश्व-साहित्य में बहुत-से ऐसे तत्व जहा-तहा विखर मिलन है जिनसे आधुनिक युग अनुप्ररणा भी ले सकता है।

हावट फास्ट ने यह दिखलाया है कि कहा यूरोपिडिस एक प्राचीन ग्रीक कवि और कहा अमरीका में स्त्रिया के अधिकारों के लिए लड़नवालिया ने यूरोपिडिस से अनुप्रेरणा ली। एक नयी महिमा एडिथ हैमिल्टन ने यह लिखा—

प्रगति के लिए युद्ध में वह सबका आगामी कतार में तियाई पड़ता है। इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ जो आधुनिक मध्यक तोडफाडक विनाशक हो गायद ही किसी कवि में पायी जाती है। वह विद्रोह ही सत्ता युद्धगील है कभी पराजय स्वीकार नहीं करता।

हम और व्योरे में नहीं जाएंगे। मन्नाभारत से हम बहुत-से प्रसंग निकाने जा सकते हैं जिनमें किसी भी नये आन्दोलन के लिए आरम्भ वाक्य प्रस्तुत किए जा सकते हैं। एक ऐसा वाक्य लीजिए— द्वायतम कुन्दे जम ममायत्तम तु पौरपम। फिर बुद्ध की वह वाणी— इहासन शुष्यतु म गरीर त्वगम्भि मासम । ईसा की वह वाणी— भव ही एक ऊँच मूर्ति के छेद में निबल जाय पर धनी यकिन स्वर्ग में नहीं जा सकता। — इमत्रिण मैंने महाकान की कमीटी पर सच नाइट की जो तब रागनी डाली उसका पत्रस्वरूप बहुत सी धरोहर गायक घराशायी हो जाए फिर भी नये गायु निकलत है बहुत कुछ बचता है और यहाँ कोई आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि मनुष्य अपनी यात्रा के समुद्र-मार्ग के दौरान न जान क्या क्या लक्ष्मों और अमृत उपाजित कर चुका और उसने न जाने क्या क्या निर्माण किया है भव ही वह निर्माण वहीं गूढ़ रूप में न मिलता हो।

इस प्रकार थोड़े में एक ताना बाना प्रस्तुत करने के बाद जब हम आधुनिक साहित्य पर आते हैं तो हम उस सम्बन्ध में भी एसा लगता है कि जो जसा दीख रहा है गायक वह बसा नहीं है। यदि प्राचीन साहित्य के साथ कुछ दूसरे तत्व चिपट हैं जिनसे हम उच्च मही रूप में नहीं दख पाते हैं तो आधुनिक साहित्य के साथ भी कई उपनग लग हैं और इसके लिए बड़े-बड़े पडयत्र किय जाते हैं कि हम साहित्य को ठीक से न समझ पायें और प्रचार में वह गूँह जायें। हम ससार के सबसे समझ देग अमरीका को लत है। वहा के सम्बन्ध में जानकार जो कुछ बताते हैं उससे कुछ इत्मीनान नहीं होता। जब एक पुस्तक प्रकाशित होती है तो पालिगम बीकली में याती प्रकाशक की पत्रिका में उसके सम्बन्ध में बड़ा जबर

दस्त प्रचार-काय किया जाता है। प्रत्येक पुस्तक के प्रचार के लिए कुछ हजार डालर के विज्ञापन पहले में तय हो जाते हैं जिसमें उमकी भाग तैयार की जाती है। समालोचक जानते हैं कि क्या करना है क्योंकि वे ज्यादातर किराय के होन हैं। कुछ साहसी आलोचक भी होते हैं, पर इसमें भी शक यह है कि किसी पुस्तक को प्रमिद्ध बनाने के लिए कुछ विरोधी आलाचना भी कराई जाती है। एक तरफ जहां उम पुस्तक के सम्बन्ध में यह दावा किया जाता है कि वह युगांतरकारी है वजोड़ है, मानुसटल है, बड़ा दूसरी तरफ अन्य प्रकार के सुरु भी अलाप जाते हैं। हावड फास्ट न इसका बहुत व्योरेवार बणन किया है। जब पुस्तक एक पुण्य है, उस पर पूजा उगाई जाती है उसमें कितना मुनाफा होगा यह कूता जाता है, तो मुनाफा बणन के लिए भी तरीके किए जाते हैं जिस तरह से आर माला के सम्बन्ध में किया जाता है। इस प्रकार साहित्य में दुकानदारी के तत्व भी बहुत प्रबल रूप में घुसपठिय के रूप में आ चुके हैं।

हमारा दंग पिछटा हुआ है इसलिए अभी दुकानदारी के ये तत्व हमारा मूल्या पर और मूल्यावन पर उतने जबरनस्त तरीके से हावा नहीं हो सक, पर यह कहना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है कि हमारा यहां भी साहित्य का मूल्यावन सही ढंग से हो रहा है। यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे यहां जो पुरस्कार दिये जाते हैं वे सही लागू का ही मिलने हैं या सच सही लागू पुरस्कार पान ही है।

यदि इस निम्न तायर से निकल भी आये तो भी यह कहना सम्भव नहीं है कि साहित्य का मूल्यावन ठीक से होता है और यह मूल्यावन का भावस जबकि सारी व्यवस्था बिगड़ी हुई है और भ्रष्टाचार हमारे दंग में अणवाद नहीं, बल्कि नियम बन चुका है।

साहित्य के सम्बन्ध में स्थानाभाव के कारण बबल थोड़ी-सा बात की आर ध्यान आवृष्ट किया जा सकता है। कहन का कला कला के लिए या कला समाज के लिए यह बिलक वटा पुराना पड चुका है, पर चाह वह जितना पुराना पड वह नय-नय लबादे आद कर हमारे सामन आता है। अब ना साहित्य पर जितना जा-कुछ विचार हो रहा है उसमें बही पुराना दानकताकता नय जन्म पाकर सामन आनी रहता है। अब यह कुछ फगन-या हो गया है कि मार मृत्यु नवार जाय और उनका हसा उडाइ जाय। इस सम्बन्ध में अब नवनेवक का अण्य स्वाभाविक रूप से हमारे सामन आता है। फिर, अण्युम के कारण अब म्नि यह हो गई है कि हम उग्रोमवा म्ना के तराव में यह मचन में अण्यन के कि अण्यनगरवा अण्यन लशाद में अताई की हो वित्रय हाता। म्नि म्ना अण्य

गायद भलाद की विजय हो पर वह विजय ऐसी है कि उसमें उसकी टांग टूट जाय, वह आस से अघो हो जाय उसकी गाठ में कुछ न रहे, वह एक अपाहिज की तरह अपना इच्छा व विरुद्ध एक भयानक अधकारपूर्ण गडब की आर जुड़नी चला जाय। एसा स्थिति में न तो साम्राज्यवाद विरोध का नारा ही हम रोसनी पहुँचा सकता है और न समाजवाद ही हम बहुत लुभावना मालूम होता है। अणुबम न उनीसवा सत्नी से चल आत हुए अनि मरल आगावा की कमर ताड़ दा। फिर भी हम जाना है और हम जी रहे है। मनुष्यता में हमारा विश्वास है हमनि एसी स्थिति में अस्तित्ववा की तरह दगनगास्त्र का उदय होना काइ आश्चय की बात नहीं है—जा यह कहता है कि आकबत की खबर सुदा जान हम आज जान ह ता जीण अच्छा तरह जीण। अणुबम से तथा सारी अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्थिति में स्वयं यह स्थिति उमी तरह से निकलती है जैसे गंगाती से गंगा। पर कही यत् उपमा गतन अथ में न ली जाण इर्मतिण कहा जाए कि जस गहर की सारी गल्गो पीठ पर बाध कर गहर से पनाल निकलने है कहा न गुड गगा है न शुद्ध स्थिति। स्थिति है सा भा शणिक और गुडना नदारत।

उक्त अस्तित्ववाणी किस्म के दगनगास्त्र में फिर भी दो स्थितियाँ हो सकती हैं। एक तो यह कि हम मानविकारों का कार्य हाथ नहीं है हम बक-डुक कुछ नहा कर सकने साहित्यकार का आवाज ससार की ता दूर रहा किसी भी स्थिति का बदलन में अममय है, हमलिय हम स्वाय के साथ जीण और जमी भी दुनिया हँ उसमें मौज कर और मौज करन के लिए राज ना-ना मिद्धाता का गुबारा उडा द। पर एक दूसरी स्थिति भी ऊपरवाला स्थिति से निकल सकती है कि बड़ी बुरा स्थिति है पर भलाइ है ता इसी में है कि सारे ससार में लोकतंत्र और समाजवा की स्थापना हो। हम इसके लिए निरन्तर चिन्तन और कार्य करना चाहिए भल हो वह दर में हो या न हो। हमारा योग ही बहुत बड़ी बाध है मजिल नहा। सात्र का लाग न चाह जा कुछ ममता हो पर उतवा जीवन रमी दूसरा स्थिति का सदावाहक है। सात्र दूसरे महापुद्ध के समय गुप्त स्वान्त्र्य योद्धा और बराबर समाजवाद के मुजाहिद रहे।

अपमान यत् कि हमारे यहाँ नवलखन के उपासका न पहना स्थिति ही अपनाद है माना हर आमी अपन लिए और गतान सप्त पीछे वाल आमा का अपन पत्र में दगाध ल। इसी के अनुसार वही यह प्रचार है कि हम किसी प्रकार

व मक्म-मम्प्रयो वचन रयन की जरूरत नहीं ।

निश्चित रूप से यह सब दिग्भ्रान्ति है । यह तो समय में आता है कि लागू हर विषय पर धुनकर वाद विवाद करें, क्योंकि वाद विवाद से अमली तथ्य का बाध होता है, पर केवल विवाद नहीं उस पर तथ्या की गवाही ल, एवतरफा क्रिया से वह साहित्य का बचाव रहता अच्छा है । विगपकर उस हालत में, जब उनका इस मन्त्र में जान कुछ भी नहीं बचे बराबर है और उनका सारा उद्देश्य केवल मनमानी के फन पर सवार हाकर नवयुग का कृष्ण बनकर सरेआम रागनी में आना और अपनी उफानी बजाकर मिया मिट्टी बनना है ।

बहुत तरह की गिथिल बातें मुनन का मिलती हैं । जसा कि पहल भी बताया जा चुका है लागू में यह एक मज और हा गया है कि जिस तरह भी हा सन, घना फाटकर कपटे फाटकर प्रमिद्ध हुआ जाय । इस रण मनावति में लागू इतना बहक जाते हैं और अपने का नया साहित्य करने के लिए इस तरह बरगार है कि वह कई बार बड़ी हाम्यास्पद बात बह जाते हैं । उदाहरणस्वरूप एक ही नाम में समाजवाद की बातें करना और अनाचार या व्यभिचार का बनावतना एक ऐसा ही प्रयास है । समाजवाद में और कोड़े भी बात सम्भव हो पर यह सम्भव नहीं है कि लागू एक साथ दो या इससे अधिक स्त्रिया का भोग करें । बात यह है कि समाजवाद में हर हालत में स्त्रिया का पुरुषा के बराबर माना जाता है । लखवा का यह समझना चाहिए कि समाजवादी समाज में स्त्रिया के शासन की कोई गुजाइश नहीं है । यह तो उस प्रकार की विचारधारा में सम्भव है जिसमें पुरुषा में ही आस्था की बलपना की जाती है और स्त्रिया के लिए कहा जाता है कि उनमें आत्मा है ही नहीं या स्त्रिया का पुरुषा की पसलिया से उत्पन्न माना जाता है या स्त्रिया में आत्मा मानने हुए भी उन्हें बहु विवाह का अधिकार नही दिया जाता पर पुरुषा के लिए चाह जितने भा विवाहों का अधिकार हा । समाजवादी परम्परागत परिवार के पक्ष में नहीं है पर साथ ही वह परिवार का अधिकार त्राव से मुक्त मरुच प्रेम का एक नया आधार देना चाहता है । उगम तनाव आदि के लिए भी गुजाइश है पर बार-बार तलाक देनवाला समाजवादी वाद अच्छा आत्मी नया समझा जाएगा, यह भी साफ कर दिया गया है । तनाव तो दुभाग्यपूर्ण स्थिति में इलाज का एक तरीका मात्र है जा बहुत ही अपवाद बात मामल में जाना चाहिए । इसलिए वह लागू ता नया बनने के लिए अपने ही प्रगतिशील या समाजवादी बरार देन हैं और साथ ही अपने साहित्य में तथा अपने आचरण में व्यभिचार का गुरु ग्राम प्रामाह्न देते हैं, तो नए हैं और न प्रगतिशील ही हैं ।

कहना न होगा कि एक राग मल ही राड जिना व लिए आधो म धूल की तरह ऊपर हा जाए और मुमानन व बाजल बरपा कर पर अततागत्वा उह अपना सहा स्थान मानूम हा जायगा जा सत्य पर ही है । किसी का एस लागी की बनावटी बाना म गुमराह नहा नाना चाहिए ।

इसम का म न्ह नगी कि मकम की गुलिया का मुलमान म ता न कहुगा ज्निक् एम मम्प य म उवपाना न न अधिक उपदुक्त रागा नवलसन म वदुत साहस का परिचय दिवा गधा है । यद्यपि यह स्मरण रह कि य म माहम किसी भी अय म नया नहीं है और प्राचीन वाम माग म न्य प्रकार व सभी भट्ट किए जा चुके है ।

मुय एस सम्बन्ध म एन अपमास यह होता है कि कुण्ठा अस्वाभाविकता, निराशा आदि को साहित्य का एकमात्र उपजीव्य बनानेवाले लोग सबसे के मामले म ता साहस दिखाल ह पर अय अधिकतर आरम्भक मामला म साहस क्या नहीं दिवात ? दग म फन हुए भ्रष्टाचार और गमाय व प्रति व अध क्या है ? भारत का बहुते बडा जिस्सा पूरा तरह कसम्बारा म डवा हुआ है । निया इतना प्रबल ह कि मनुष्य का न्य उठान का साहस नहीं करता । धम व नाम पर कितन कुचक चल रह ह समाज व नाम पर कितन अयाय होन है सरकार और शासन तत्र की ओर से जा कुछ हा रहा ह वह सामन ह । ता यह क्या बात है कि शान्तिकारित्व और युगात्तकारित्व बस एक ही विटु पर कद्रित हा जात है वत यह कि सबसे की गुलिया नाना जाय मैयुन का चित्रण किया जाए । गगत न समझा जाऊ इसनिए क न दना जरूरी है कि मैं उन लागी म स नगी ह जो जीवन व एस महत्वपण अग पर पण्य सो भी बहुत मोटा, लिजलिजा और काला परदा डालकर रगन ना प्रतिपादन करत हैं । योन सिद्धान्ता को छान्न की बात नहा हा रही है पर दिन वहाड हान वाले भ्रष्टाचार और बडमानी पर ध्यान न दना वहा का शान्तिकारित्व है ? क्या यह खुला सत्य नहीं है कि स्पमा तथा अय तरह-तरह की बीमारिया न खोस्तत्र को ध्यय कर दिवा है ? क्या आज का गरीब आत्मी चुनाव लड सकता है ? यदि नहा ता क्या यह लावतत्र का ढाग मात्र नया है ? एस ही गहुत में प्रश्न है जिनम हमारे लयर माहम दिगला सकत ह ? पर व ववता उन मामला म और उन क्ष प्रा म साहम का प्रणन करत है जिनम सरकार म गधप म अान का गतरा नहा ह । य काद अच्छा बात नया है । म पहत ही एस सम्बन्ध म माय का उदाहरण द चुना ह और हमारा न्य म भी स्वराज्य म पहले सभी सब विगान-विगान रूप म स्वानय यादा व । इसम बनिमचन्द्र म लकर

प्रमचद तक सभी को गिनाया जा सकता है। व अपनी विधाओं तक ही रहने
थ, पर स्वातंत्र्य आंदोलन का जोर पट्टचाने के।

इस ग्रन्थ के विषय में

अतः इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में दो बातें। हिन्दी में इधर जो उत्कृष्ट काय
हुआ है, उसका कुछ मीन के पत्थरों का इस ग्रन्थ के जरिये सामने लाने का प्रयत्न
किया गया है। श्रेष्ठ ग्रन्थों के चयन का काम आसान नहीं है। यदि यह काय
किसी एक व्यक्ति पर ही छोड़ दिया जाता तो सम्भव है कि एकाध ग्रन्थ, जिसका
इसमें समावेश किया गया है वह, इसमें न होता और उसके स्थान पर दो एक
अन्य रचनाओं का विवेचन होता। पर, इस तरह का मतभेद हमें आ हुआ करता
है और व्यक्तिगत मत से सामूहिक मत हमें आ ठीक न हो, पर ऐसे काय में उस
पर चलना ही सही होता है।

वस्तुतः इस ग्रन्थ में स्वतंत्रता के पश्चान् प्रकाशित ऐसा कृतियों का ही
मूल्यांकन किया गया है जो इस अल्पावधि में ही प्रतिष्ठापित हो चुकी हैं। कृतियों
की समीक्षा भिन्न भिन्न विद्वानों द्वारा की गई है, अतः मूल्यांकन के दृष्टिकोण
में अंतर होना स्वाभाविक है, किन्तु हमारा प्रयास यही रहा है कि कृति की
समीक्षा पूणतः निष्पक्ष हो।

कृतियों का चयन करते समय हमने कृतिकार के व्यक्तित्व की अपेक्षा कृति
की उपलब्धि को ध्यान में रखा है, यद्यपि कृतिकार का समग्र कृतित्व का भी एक
सीमा का भीतर महत्त्व अवश्य दिया है। प्रयास यह रहा है कि एसी कृतियाँ ही
चुनी जाएँ जिनमें हिन्दी साहित्य का परम्परागत विकास और नवीन प्रयोग,
दान का दान हाँ तक।

समसामयिक हिन्दी साहित्य पर कुछ अर्थ ग्रन्थ भी उपलब्ध है परन्तु उनमें
प्रायः परिष्कार प्रवृत्ति तथा कलाकार का विवेचन एवं मूल्यांकन ही प्रमुख है।
इनमें भिन्न प्रस्तुत ग्रन्थ का दृष्टिकोण यह है कि हममें उपलब्धि का मूल्यांकन का
आधार बल्कि कृति ही रही है। और, उपलब्धि की परिभाषा भी हमारी व्यापक
है। यह एक स्वीकृत तथ्य है कि स्वतंत्रता के पश्चान् भारतीय भाषाओं में
विशेषकर हिन्दी में सज्जन का माय निर्माण का काय भी बड़ बग में हुआ है। और
सज्जनात्मक साहित्य की अपेक्षा पान का साहित्य की उपलब्धि वर्तमान युग में कम
नहीं मानी जा सकती। हमें कारण प्रस्तुत ग्रन्थ में मूल्यांकन का लिए हमने कवन
सज्जनात्मक या सन्नित साहित्य का ही चयन नहीं किया बल्कि पान के साहित्य
को भी समान महत्त्व दिया है किन्तु या ग्रन्थ सज्जन ग्रन्थों का समावेश नहीं

व्यापक दृष्टिकोण के आधार पर किया गया है ।

हम विश्वास है कि समसामयिक हिन्दी साहित्य की उपलब्धियों का यह कृतिपरक अथवा वस्तुपरक अध्ययन भारतीय साहित्य के व्यापक सन्दर्भ में हिन्दी पाठक के आत्मविश्वास का निश्चय ही परिपोष करेगा ।

—ममयनाथ गुप्त

डी १४, निजामुद्दीन ईस्ट
नई दिल्ली १३

अनुक्रमणिका

सृजन

- | | | |
|--|------------------------|-----|
| १ जयभारत राष्ट्रकवि के साहित्यिक विवास का प्रतीक | डॉ० विजयद्र स्नातक | १ |
| २ उवगी अन्तमयन का काव्य रूपक | डॉ० नगेन्द्र | २० |
| ३ लोकायतन बोध के गिन्वर का महाकाव्य | श्री इलाचन्द्र जोशी | ३४ |
| ४ गोपिका अर्पायित मधुर भाव का काव्य | डॉ० सावित्री मिह्रा | ५० |
| ५ मृगनयनी इतिहास की पुन कल्पना | डॉ० गणिभूषण मिह्रन | ५६ |
| ६ झूठा सच भारत विभाजन का औपचारिक महाकाव्य | श्री मन्मथनाथ गुप्त | ७१ |
| ७ भूने बिसरे चित्र सत्राति-युग की प्राणवान् धरती का इतिहास | श्री जगदीशचन्द्र माधुर | ८६ |
| ८ नगी के द्वीप सचेत रचना शिल्प का प्रतीक | डॉ० दशराज | ९६ |
| ९ चाद चन्द्रमय रगीन इतिहास खण्ड का दपण | डॉ० रमणकुन्तल मध | १०६ |
| १० बूँ घोर समुद्र सामाजिक जीवन की मत्रांति का जीवत धानेय | श्री नमिचन्द्र जन | ११६ |

११	मैला आचल	ग्रामाचल की मुखरित आत्मा	
		डा० रामदरश मिश्र	१३३

निर्माण

१२	रस सिद्धांत	सावभौम काव्य सिद्धांत का अग्रलख	
		श्री दरराज उपाध्याय	१४४
१३	समय और हम	मजनात्मक चिंतन की दनदिनी	
		श्री रामचंद्र तिवारी	१५७
१४	संस्कृति का दार्शनिक विवचन	सृजनात्मक मानववाद की भूमिका	
		डा० अजगापाल तिवारी	१७४
१५	कलम का सिपाही	एक युग का स दभ	
		डा० बच्चन सिंह	१८४
१६	भारतीय आतंकारी आंदोलन का इतिहास	भारतीय राष्ट्रवाद का रोमाचक सत्य	
		श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी	१९४
१७	डा० रघुबीर का अग्रणी हिन्दी पारिभाषिक शब्दकोश	भारतीय कोण विज्ञान में युगांतर	
		श्री अणोबजी	२०४
१८	हिन्दी साहित्य कोश	महत्त्वपूर्ण सवभ अ य	
		श्री राजेन्द्र द्विवेदी	२१६
१९	हिन्दी विश्वकाण	एक महत्प्रयास का आरम्भ	
		डा० भोवानाथ तिवारी	२३५
	परिशिष्ट		२४५

जयभारत राष्ट्रकवि के साहित्यिक विकास का प्रतीक

कृष्ण द्विपायन व्यास विरचित महाभारत के घटना-समुल ऐतिहासिक एवं पौराणिक विराट आख्यान की सुपरिचित मृष्टभूमि पर जयभारत काव्य की रचना हुई है। महाभारत के विशाल कथानक का इस रीति-नीति में काट-छाँट कर सच-यन किया गया है कि मूल कथा का आवश्यक भाग ही रहित रहा है अनावश्यक विस्तार (या अवांतर शेषक अंग) छूटता गया है। कथा के त्याग और ग्रहण में कवि ने प्रमुख चरित्रों का अनुष्ण रखते हुए उन महत्त्वपूर्ण घटनाओं का ही चयन किया है जिनके आधार पर कौरवों पांडवों में सम्बद्ध महाभारत-कथा आज तक प्रथा में ही नहीं—अनुश्रुतियाँ में भी जीवित है। कुछ प्रसंग मर इस चयन के अपवाद हो सकते हैं, किन्तु उनकी स्थिति महाकाव्य के विनाश के लक्ष्य में असह्य नहीं है। महाभारत के विराट आख्यान में सक्का पौराणिक उपाख्यान कालोत्पल की भाँति सप्रथित हैं, उनका विच्छेद और चयन सचमुच दुस्वर है। फिर भी कहना न हागा कि वस्तु-मम के पारसी गुप्तजी ने उन सभी प्रसंगों का चयन में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है जो प्रबन्धकाव्य में प्राण प्रतिष्ठा करते हैं। कथा प्रसंगों के सतत गतिशील रखते हुए जहाँ कहीं कवि ने संक्षेप किया है वहाँ प्रसंग की अचिन्ति का ध्यान रखा है किन्तु इस सतकता के बावजूद भी कुछ स्थलों पर प्रवाह में व्याघात आ गया है। यह व्याघात पौराणिक अन्तकथाओं के कारण आया है। कथा का अप्याहार करके उसकी अचिन्ति विधान के लिए पाठक का यदि तनिक भी रुकना पड़े तो यह अन्तकथा उसकी रमानुभूति में बाधक हागा ही।

‘जयभारत’ में नट्टप में प्रारम्भ करके पांडवों के स्वर्गारोहण तक समस्त कथानक सतलीम सर्गों (प्रकरणों) में विभक्त है। प्रत्येक प्रकरण का शीघ्र सम्बद्ध

व्यक्ति या घटना के नाम पर है। सम्पूर्ण काव्य का रचना-काल एक नहाने में शैली में बँधिया है। गुप्तजी ने अपने सुदीर्घ रचना-काल में महाभारत के विभिन्न प्रसंगों पर यथासमय जो कुछ लिखा उसमें से ही कतिपय प्रसंगों का इस कृति में परिवर्तन और परिवर्द्धन के साथ समावेश किया है। अपने निवेदन में कवि ने इस हेतु फेर और परिष्कार को अपनी लक्ष्मी का भ्रम विकास ही माना है। महाभारत के जयद्रथ वध प्रसंग पर गुप्तजी ने द्विवेदी युग में जो खडकाय लिखा था उसका उपयोग इस महाकाव्य में नहीं किया। जयद्रथ वध प्रसंग नये सिर से सक्षपण, लिखा है। कदाचित् कवि का अपनी प्रौढ़ि पर पहुँचकर विशोरावस्था की कृति के प्रति मोह नहीं रहा। चूँकि इस महाकाव्य के विभिन्न प्रसंगों की सृष्टि विभिन्न कालों में हुई, अतः उनकी अभिव्यक्त शैली में भेद होना स्वाभाविक है। प्रारम्भिक रचनाओं में वचनात्मक (इतिवृत्तात्मक) यास पद्धति का आश्रय लिया गया है परवर्ती रचनाओं में समास शैली के साथ वाक्यों में कसाव और विचारा में गाम्भीर्य लक्षित होता है। कथा प्रवाह भी आद्योपात्त एक सा नहीं है—कही कथा कहने का आग्रह है तो क्षिप्रता आ गई है कही किसी प्रसंग का नवीन रूप देना अभीष्ट हुआ तो कवि की चित्तवृत्ति उसमें रम गई है और प्रवाह में मधुरता आ गई है। प्रायः उही प्रसंगों में तीव्रता आई है जहाँ संक्षेप और समाहार शैली से कथा को समेटा गया है। कौरव पांडव परीक्षा लाक्षाग्रह इन्द्रप्रस्थ अतिथि और आतिथेय आदि प्रकरण इसके प्रमाण हैं। कल्पना का पुट देकर जिन घटनाओं को नूतन उदभावना के साथ लिखा गया है उनमें एकलव्य हिडिम्बा द्यूत तीक्ष्णयात्रा कुन्ती और कण द्रौपदी और सत्यभामा युद्ध तथा स्वर्गारोहण आदि हैं। वस्तुतः इसी प्रसंगों के नवनिर्माण में जयभारत के रचयिता की कृतकृत्यता लक्षित होती है।

काव्य का मूल ध्येय मानव महत्त्व की स्थापना

जयभारत महाकाव्य शैली की प्रबन्ध रचना है। इसका मूल ध्येय नर (मानव) का महत्त्व प्रतिष्ठित करना है। नर की वक्ष्य निष्ठा और धर्म साधना जब चरम उत्कर्ष पर पहुँचती है तब उसमें से एक ऐसी दिव्य आभा प्रस्फुटित होती है जो लोक परलोक सबको अपनी दाप्ति से आलानित कर देती है। महाभारत में—न मानुषाद थप्यतर हि किञ्चित् कह कर ध्याममुनि ने इसी नर महिमा की ओर संकेत किया है। जयभारत में कवि ने भी अपने काव्य के मगनाचरण में इसी उद्देश्य में नमानारायण नमानर प्रवर पौरुषवतु कहकर नर का नमस्कार किया है। इसका वाक्य काव्य का प्रारम्भ (उपक्रम) भी नारायण नारायण साधु नर साधना द्वारा होता है। उपसंहार में भी युधिष्ठिर (गायक) भगवान् से यही

याचना करत हैं— ह नारायण ! क्या और बहू तू निज नरमात्र मुझे रगना ।
मनुष्य जन्म को ही साधना की सफाई समझन वाले युधिष्ठिर के समान भगवान्
ने प्रकट हाकर यही कहा

“सस्मित नारायण प्रकट हुए

आओ हे मेरे 'नर' आओ ।

जो कुछ है जहाँ तुम्हारा है

मुझको पाकर सब कुछ पाओ ।”

नर-ह म मानव की गौरव गरिमा न मडित युधिष्ठिर का श्वक्य यही
लगता है कि नर जन्म म बन्कर इस मसार म और कुछ काम्य नहीं मानव धम
म बढकर कुछ माध्य नहीं मानवता की उपासना म बढकर कुछ उपाग्य नहीं ।
सच्ची नर साधना ही एहि एव आयुष्मिक मुग्ध गति की जननी है । मानवात्मा
ही द्रष्टव्य, ध्यातव्य, मनतव्य और निनिध्यामित्य है ।

यथाय मानव प्रतीक युधिष्ठिर का चरित्राकन

धमराज युधिष्ठिर का चरित्राकन जयभारत म नरत्व क प्रतीक यथाय
मानव क रूप म दुआ है । धमप्राण युधिष्ठिर की कसब्य निष्ठा का आधार
कोरी गान्ध-मयाना न हाकर नान-मयाना है जा आत्मन प्रतिकूलानि परपा न
समाचरत तथा स्वस्य च प्रियमात्मन 'का मानदड मामन रगकर आम सुख
का 'पर कल्याण म पयवमित कर नी है । इसीलिए आत्म' का परात्म म
दयत हुए सर्वे भवतु सुखिना सर्वे भतु निरामया सर्वे भद्राणि पश्यतु मा
कश्चित्पु लभाग्भवत क ङ्जस्वित स्वर म युधिष्ठिर न मुड और हिमा क प्रति
अपना उद्वेग प्रदर्शित करत हुए कहा है

“राम, धव भी मैं यहा कहता हूँ मन से
कामना नहीं है मुझे राज्य की या स्वग की,
किया अपवग की भी, चाहता हूँ मैं यही
ज्वाला ही जुडा सकूँ, मैं अपना के दुख की,
भोगूँ अपनी का सुख, मेरा पर कौन है ?
सब मुग्य भोगें, सब रोग से रहित हों—
सब शुभ पायें, न हो दुःखी कहीं कोई भी ।”

मानवमान का एक ही परमात्मा का अंग मानत हुए सब मे गमभाव रगत
हुए युधिष्ठिर कहते हैं

“सुनो तात, हम सभी एक हैं भवसागर के तीर,
हो शरीर-यात्रा मे आगे पीछे का व्यवधान,
परमात्मा के अश रूप हैं आत्मा सभी समान,
एकलव्य तो मनुज मुझी सा मुझम सबका भाग,
में सुरपुर मे भी न रहूँगा निज कूबर तक त्याग ।”

धर्म के प्रति जसी अटन आस्था युधिष्ठिर के सांसारिक वृत्त्या व बीच दृष्टिगत होती है वैसे राम के चरित्र को छोड़कर भारतीय साहित्य में अमर नहीं है। जयभारत के कवि ने उसी प्रत्यय को व्यावहारिक क्षेत्र में यथाय की भूमि पर अवस्थित करके भाव की महिमा का बार-बार योगान किया है। युधिष्ठिर का जीवन विरोधी शक्तिया के भीषण आक्रमण से उत्तरोत्तर कति मय होता गया है। पल-पल पर मयम और धैर्य की परीक्षा दते हुए युधिष्ठिर न तो विचलित होते हैं और न हतप्रभ ही। संसार के सुख भोग के प्रति गहरी अनासक्ति उनके भीतर पठी हुई है और यथाय में वही उनकी शक्ति बल, तेज सब कुछ है

“जीवन, यश, सम्मान, धन, सतान, सुख सब मम के,
मुझको परंतु गताश भी लगते नहीं निज धर्म के ।”

दूत 'तीर्थयात्रा युद्ध और 'स्वर्गारोहण' इस काव्य के तेसे सग हैं जिन में युधिष्ठिर सांसारिक दृष्टि से मान अपमान सुख दुःख हय विपाद और उत्थान पतन के चरम बिदुआ तक पहुँचे हैं। किंतु भौतिक द्वंद्व और सघप की बेला में उनकी वृत्तियाँ न ता कृत्तित हुई हैं और न परास्त ही। किसी प्रकार का अति रेक उनका व्यापार में नहीं है। दुःख को वे गान-दपूवक वसे ही स्वीकार करते हैं जैसे समुद्रमयन में उदभूत कानकूट का भगवान् दाकर न ग्रहण करके देवताओं को विपत्ति से बचाया था। सुख को अपनी यत्ति सीमाओं में न बाँधकर स्वस्थ समयत भाव से जन जन में बाँट देने हैं। निस्वाय निष्कपट निरीह और निस्पृह भाव के साथ जीवन लीला का विरतार करत हुए मानवता के आदर्श की स्थापना करना ही जम उनके तितिक्षामय जीवन का ध्यय हो। दुर्योधन की कुचाला से पराजित होकर वन जाने समय उन्हें मिहासन छूटन का रचमात्र भी सेद इसलिए नहीं है कि वहा कुगामन मुनभ होगा प्रजा का गामन छोड़कर वन में आम गामन का सुधवसर प्राप्त होगा।

युधिष्ठिर के मानव भाव की प्रशंसा

युधिष्ठिर के चरित्र की महिमा का वर्णन जयभारत के उन प्रमुख पात्रों

द्वारा भी कराया गया है जिनके प्रति पाठक की पूज्य बुद्धि बनी हुई है। श्रीकृष्ण भीष्म, द्रोण, धर्मराष्ट्र और स्वयं नारायण भी उनके उन्नत चरित्र का गुण गान करते हुए उन्हें श्रेष्ठ मानव समझते हैं। द्रौपदी भीम और अर्जुन भी धर्मराज का श्रेष्ठतम मानव मानकर उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करते हैं। ज्ञान के क्षेत्र में युधिष्ठिर की मायनाया को स्वीकार करते हुए कृष्ण द्रौपदी में कहते हैं

'निज साधना से अधिक नरकुल को युधिष्ठिर में मिला,
क्या स्वर्ग में भी सुलभ यह जो सुमन धरती पर तिला।'

'तीर्थयात्रा' प्रसंग में विलक्षण रूप में हनुमान में भीम की भेंट का दृश्य है। वहाँ हनुमान में भीम का प्रबोधन हुआ यही कहा है कि पांडवा का सवट क्षणिक है क्योंकि युधिष्ठिर की धमनिष्ठा सफ़्त हाथी-- यथाधमस्तताजय।

"है युधिष्ठिर की युगोपरि धमनिष्ठा।

पापगा राजत्व ही उनसे प्रतिष्ठा।"

मानव रूप में युधिष्ठिर के चरित्र का विकास क्रमिक रूप से दिखाया गया है। प्रारम्भ में उनके शौर्य, त्याग और तपस्या का वर्णन है बाद में समता वत्सलता अनामति और कम निरसंगता विकसित हुई है। स्वर्गारोहण के प्रसंग का वर्णन कवि ने मानवतावाद के चरम उत्थ के स्तर पर पूरी प्रौढ़ता के साथ किया है। इस सग की प्रत्येक पंक्ति उनकी धमनिष्ठा को व्यक्त करता हुई धर्मराज का त्याग, प्रेम समता, बहु-वत्सलता, सौजन्य वराग्य और अनामति की परावाप्ता तक पहुँचा देती है। 'गुणवमायो' का अपने साथ स्वर्ग ल जान के आग्रह में जिस काटि के निमल शरणागत भाव की रक्षा हुई है वह परमात्मा के अंग की समत्व भाव में पूजा अर्चा है। आत्मीया के साथ नरक-वाम का आह्लाद के साथ स्वीकार करने में भी उनकी मानवता का उन्नत ही है। धीरे-धीरे नायक के समस्त गुणा स उपेत युधिष्ठिर को अन्तिम सग में कवि ने मानवता के जिस उच्चामन पर प्रतिष्ठित किया है वह भारतीय राजपि का वरुण्य आसन है। तीन बार उनकी परीक्षा हाता है और तीन बार के सहज रूप में अपना वही माग ग्रहण करते हैं जो मनुष्यत्व की उच्च भूमि पर स्थित एक कमयागा को ग्रहण करना चाहिए। फलतः उनको तो परम पुण्याय की प्राप्ति होती ही है किन्तु उनके साथ समस्त मानवता का पप भी प्राप्त होता है।

कथा का पुनरागदान और युगधर्म की प्रतिष्ठा

गुणजी प्रथम-अष्ट कवि हैं। अपना समृद्ध कल्पना द्वारा वे प्राचीन यन्त्र का जिस शली में नयान रूप देकर आकषक और मरग बनाते हैं उगका उदाहरण

'सावेत और यशोधरा के उन प्रसंगों में है जहाँ उर्मिना, कंबेयी, यशोधरा, आदि नारी पात्र परम्परा प्राप्त कथानक से भिन्न रूप में मार्मिक व्यञ्जना करके पाठक का मुग्ध कर लेते हैं। इतिहास की अनुश्रुति में पात्रों का जो चरित्र मिलता है उसे सबथा भुलाकर नवीन सृष्टि नहीं की जा सकती किन्तु युग के विवेक का ध्यान रखकर अतिप्राकृत और अतिमानव शक्ति पर आघत घटनाओं को औचित्य के धरातल पर समाहित किया जा सकता है। दूसरे युग धर्म की दृष्टि में रखकर पुरातन घटनाओं का पुनरावधान भी आवश्यक हो जाता है। कला की पूजा अति व्यक्ति की दृष्टि से यह पुनः सृजन या पुनःयाख्यान इसलिए भी करना होता है कि पुरानी कथा को ज्या की त्याग तो कहने की प्रवृत्ति होगी और न पाठक उन पात्रों पर रस ग्रहण करेगा। नवनिर्माण की अपेक्षा पुनर्निर्माण की यह पद्धति कठिन है इसके लिए प्रबंध समता अनिवार्य है। जो कवि प्रबंधात्मक शैली की कल्पना से रहित हो उह इस फेर में न पड़ना चाहिए। गुप्तजी प्रबंध कल्पना के समय कवि है अतः वे सनातन को नूतन करने के लिए अनेक मार्मिक स्थल ढूँढ़ लेते हैं। जयभारत में ए. एस. हीर्षे मार्मिक शैली को चुनकर उनकी नवीन शैली से बुद्धिमत् धारणा प्रस्तुत की गई है। अपन इस कथन की पुष्टि में यहाँ तीन चार प्रसंगों का उल्लेख करता हूँ। भीम और हिडिम्बा का विवाह महाभारत की एक साधारण सी घटना है। भीम का हिडिम्बा के प्रति आकर्षण और परिणय सामाजिक मर्यादा में अपराध की भाँति माना जाता है। महाभारत पढ़कर हिडिम्बा के प्रति किसी प्रकार की महानुभूति उत्पन्न नहीं होती प्रत्युत उमके राक्षसी होने के कारण पाठक का मन एक विचित्र विद्रूप और विकर्षण से भर जाता है। किन्तु 'जय भारत' की हिडिम्बा राक्षसी होने पर भी सहज सुन्दरी उदात्त गुणशील-समन्वित, बुद्धि विवेक परिपूर्णा नारी है। उसके हृदय की सवदनशीलता दृष्टि में व्यापक है कि वह अपन सम्पर्क में आने वाले का सहज ही अपने स्नेहपात्र में बाँधने में समर्थ है। भीम उमके दृष्ट ही देवि सम्बोधन से पुकार उठे किन्तु हिडिम्बा ने उत्तर में स्पष्ट कहा कि मैं देवि नहीं दानवी हूँ। राक्षसी जानने पर भीम के मन में उमके प्रति जातिगत अंधता भाव पैदा हुआ और उसका राक्षसी रूप पर 'जय' करने लगे। हिडिम्बा ने भीम को जिम मत्तुलित भाषा में उत्तर देकर निरन्तर किया वह गुप्तजी की कल्पना द्वारा ही सम्भव हो सकता है। भीम हिडिम्बा का वह वार्तानाप वनमान युग की बौद्धिक चेतना के अनुकूल और सामाजिक तथा मार्मिक भावनाओं के अनुकूल है। इसी कारण आज के बुद्धिवादी पाठक को हिडिम्बा का चरित्र निर्दोष और नीति-संगत प्रतीत होता है। सब बात तो यह है कि 'जयभारत' के कवि की कलापूरा लेखनी के पारस-रूप से ही हिडिम्बा आदान

वन गई है। भीम द्वारा अपने भाई का वध किये जाने पर प्रतिशोध की वान न साचकर वह अहिमा के परम तत्त्व का हृदयगम करती हुई यही कहती है

“वर की यथाय मुद्धि वर नहीं प्रेम है,
श्रीर इस विश्व का इसी म छिपा नेम है।”

कुन्ती के प्रति हिडिम्बा की उक्ति तो उच्चतम मानव आत्मा की गिथा न आया प्राप्त है। मानव तभी मफल है जब वह अपनी पावनता ने दानव का भी उद्धार कर सक

“यदि तुम आय हो तो दो हमे भी आयता,
अपनी ही उच्चता मे कसी कतवायता ?”

× × ×

“होकर मैं राक्षसी भी अन्त मे तो नारी हूँ,
जन्म से मैं जा भी रहूँ जाति से तुम्हारी हूँ।”

हिडिम्बा न कुन्ती के मरण केवल आदेश की बात ही नहीं की वरन् मुक्ति तक और प्रमाण द्वारा अपनी पात्रता सिद्ध कर दी। फलतः कुन्ती की आठ म हिडिम्बा का वध का सम्मान मिला। इस प्रसंग नूतन मृजल का प्रयाजन स्पष्ट है। भीम-हिडिम्बा-परिणय तब तक पाठक को विषेय न लगता जब तक हिडिम्बा को रूप गुण गोल-मगन्विता नारी के रूप में अंकित न किया जाता। हिडिम्बा के चरित्र का यह नवनिर्माण केवल भीम की वासनावृत्ति का ही परिमाणन नहीं करता वरन् इस अनमल विवाह को सामाजिक मर्यादा में अग्रित करके नविक मायना की प्रणय करता है। यह प्रसंग म गुप्तजी न दानव और मानव की प्रद्वेषिता का मनावणा निर विभेद करत हुए तत्स्य दार्शनिक व समान जा विचार व्यक्त किये हैं व उनका कवि-गानिक रूप के दानव हैं।

अतिप्राकृत और अतिमानव शक्ति पर आधुन घटनाओं की विवर-मम्मत व्याख्या की जयभारत म बड़ी बनानिक गली स हुई है।

महाभारत के मभा पद म बणिन द्रौपदी-वीरहरण प्रसंग को जयभारत के कवि न छूत समय म युग विदक के आधार पर नवीन रूप म प्रस्तुत किया है। मून कथा म काई परिवर्तन न करके केवल अतिप्राकृत शक्ति के उपयोग का (जा आज के बनानिक और युद्धवादी युग म अव्यवहाय लगता) ह्याकर शौचिक की मोमा-मर्यादा म विदक का प्रयोग किया है। ध्यान न कीजवा के पाप का शकन के लिए पहले ता द्रौपदी के कर्ण चन्दन का वणन किया है यात्र म भगवान का अतिप्राकृत शक्ति के कारण द्रौपदी का यन्त्र अमाम बना लिया है। उग वस्त्र-रानि को रौंके-गीचन परिश्रान्त और सज्जन हातर टू गामन बट जाता है

यदातु वाससा राशि सभामध्ये समाचित ।
तदा दुःशासन आतो द्योदित समुपाविशत ॥

इसके आगे घृतराष्ट्र की आत्मग्लानि और दुर्योधन के प्रति आक्रोश-वचन का महाभारत में वर्णन है। किंतु 'जयभारत' में द्रौपदी भ्रमहाय दशा में भगवान का स्मरण करती हुई आततायी दुःशासन को धिक्कारती हुई उसके अंतर में पाप की भीति भी उत्पन्न करती है। उसका वचन को सुनकर दुःशासन पाप पल की विभीषिका से सिहर उठता है और उस अपन चारा और अघकार दिखाई देने लगता है। उस द्रौपदी के वस्त्र के ओर छोर का पतान रहा वह भयभीत होकर कौपने लगा और स्तम्भित होकर वहीं बठ गया

“सहसा दुःशासन ने देखा अघकार सा चारो ओर,
जान पडा अन्बर सा वह पट जिसका कोई ओर न छोर,
आकर अक्षमात अति भय-सा उसके भीतर यठ गया,
कर जड हुए और पब कौपे, गिरता सा यह यठ गया।”

इसके आगे सभा को सावधान करने के लिए कवि ने गांधारी का प्रवेश कराया है। नारी के अपमान के क्षणा में किसी वृद्धा नारी की वातर वाणी का प्रयोग मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी अधिक समीचीन और सामयिक है। गांधारी ने सभा में आते ही सबसे पहले अपने अघपति को प्रबोधा और फिर आत्मग्लानि के साथ भाई के कुत्सित आचरण के कारण अपन पितृ-कुल और पुत्रों की अनतिवृत्ता के कारण अपने पति-कुल व वलवित होने की बात कही। अपनी अतव्यया को चरम बिन्दु तक पहुँचाने के लिए उसने लोक लाज की दुहाई दी और वातर नाव से पुकार उठी

“हाय ! लोक की लज्जा भी अब नहीं रह गई रक्षित क्या !
आज यहू का तो कल मेरा कटि पट नहीं अरक्षित क्या ?”

निःसंदेह गांधारी का उपयुक्त वचन में किसी भी नराधम का अस्त करने की, पाप-कर्म से बिरत करने की अभूत क्षमता है। महाभारत में यह नाम घृतराष्ट्र ने दिया है और उमन बार बार दुर्योधन का कोसा है किंतु घृतराष्ट्र की भरतना में न ता इतना जल है और न श्रोताओं को लज्जावनत करने की ऐसी क्षमता। एसा ही एक और प्रसंग महाभारत में उम समय आता है जब अनातवांस के समय पाण्डव द्रौपदी सहित राजा विराट के यहाँ वेप बदन कर समय काट रहे थे। सराध्री के रूप में द्रौपदी दासी का वाय कर रही थी। रानी का भाई कीचक द्रौपदी के रूप पर आसक्त हो गया। भ्रमहाय द्रौपदी ने आत्मरक्षा के लिए भीम की गरण ली। जयभारत के कवि ने इस प्रसंग में द्रौपदी को विराट की सभा

म आकर अपील करन का अवसर दिया है। उसन केवल आत्मरक्षा की अपील ही नहीं की, प्रत्युत वह राजा के शासन घम को भी तलवारती हुई स्त्रण भाव का सक्त दकर उस सज्जित कर गई

“सज्जा रहनी अति कठिन है, कुलवधुप्रो की भी जहाँ ।
हे भक्त्यराज किस भाति तुम हुए प्रजारजक वहाँ ?”

× × ×

“तुमसे निज पद का स्वाग भी भलीभाति चलता नहीं,
अधिकार - रहित इस छत्र का भार तुम्हें तलता नहीं ?”

श्रीपदी के चारित्रिक विकास म मतीत्व और निर्भक्ता को उदघाटित करन के लिए गुप्तजी की यह नूतन उद्भावना साध्य है।

पुन सर्जन मे युगादश का भाव

बीया एक और प्रमग दस विषय म उल्लेखनीय है, वह है धमराज युधिष्ठिर का द्रोणाचार्य का मुद्ध विरत करन क लिए अमत्य भाषण। ‘अश्वत्थामा हत नरा वा कुजरो वा की युक्ति म छत्र और कतव का जा अग है उनके दोष म युधिष्ठिर का अलिप्त नहीं किया जा सकता। औचित्य और नीति की किसी भी व्यवस्था म युधिष्ठिर का यह असत्य भाषण दोषपूर्ण ही टहरगा। महाभारत म गुरुभक्त अर्जुन ने श्रुद्ध होकर युधिष्ठिर की इस काय क लिए प्रत्यक्ष रूप म निन्दा की है। किन्तु उन निन्दा-वचना का उत्तर दन हुए भीम न कौरवा के छत्र, कपट धनीति और अत्याय का वणन करके युधिष्ठिर क इस काय का उचित बतता कर पाठक के मन को हल्का करन की चेष्टा का है। जयभारत’ म कवि न पाठक की भावनाधा का साथ दिया है और पाप का पाप कह कर सत्य की प्रतिष्ठा की है। पाप का पाप कहन क लिए युधिष्ठिर की वाणी का उपयोग हुआ है। पाप की मुक्त बण्ड म स्वीकृति (कनफान) म हा उह अपना निष्कृति दृष्टिगत हुई। इस स्वीकृति म एक भार पाठक क दृश्य मन को सात्वना मिली दूसरी और युधिष्ठिर का चरित्र और अश्व उज्वल हुआ

“बोले धमराज, भाई भीम दू गात हो,
सिद्ध नहीं होता गुद्ध साधन से साध्य जो,
उसकी विगुदता भी गहनोय होती है,
तात, मेरा पक्षपात योग्य नहीं इतना,
पाप जो हुआ है उसे मानना ही चाहिए।”

युधिष्ठिर क चरित्र क दस साधन का परिमात्रन ‘कनफान’ क साध्यम स

युगोचित विषय-बुद्धि की दृष्टि से सगत और शोभन है। कवि की निष्पक्ष दृष्टि में सत्य का आग्रह जिस रूप में प्रतिफलित हुआ है वह धमराज के अनुरूप है।

महाभारत की प्राचीन कथा के अन्तगत असगत या असमाध्य प्रतीत होने वाली घटनाओं को विवेक-सम्मत बनाने तथा उनमें युगोचित सामंजस्य लाने के लिए स्वान-स्वान पर सम्यक् पात्रों द्वारा आत्मग्लानि एवं पश्चात्ताप प्रकट करने की ममस्पर्शी गला भी अननयी गई है। जयभारत' में कवि ने अपनी कल्पना द्वारा ऐसे अनव अवसर ढूँढ निवाले हैं जब सदवत्त तथा दुवृत्त दोनों कोटि के पात्र आत्मग्लानि की आच म तप कर पाठक की मनस्तुष्टि करने में सफल हुए हैं। महाभारत के पात्र इस प्रकार आत्मग्लानि से सतप्त नहीं हुए, फलतः वहाँ शोक और विलाप तो है किन्तु ग्लानि की पीडा नहीं। उदाहरण के लिए दो एक मार्मिक स्थानों का संकेत ही पर्याप्त होगा। द्रौपदी के अपमान में सामीदार होने पर कण को मनस्ताप हुआ और वह अपन ऊपर खीज कर आत्मग्लानि में विगलित होकर कह उठा

‘मैंने अपना एक कम ही अनुचित माना,
कृष्ण का अपमान, किन्तु तब क्या यह जाना,
यह है मेरी अनुज वधू, अथ वहाँ ठिकाना,
इसका प्रायश्चित्त मृत्यु के हाथ बिकाना ॥”

दुर्योधन की अनीतिपूर्ण हठधर्मिता से वित्र होकर धृतराष्ट्र और गांधारी अपने भाग्य को बार-बार कोसते हैं। गांधारी तो दुर्योधन मा पुत्र पदा करके अपनी पुत्रपणा को ही विनकारती है। यह आत्म धिक्कार उसके अन्तर का विद्रोह है जिसे वह कृष्ण के समक्ष व्यक्त करती है

‘मैं भी हे गोविन्द अतत अमला नारी।
पांडु सुतो को देल मुझे भी डाह हुई थी,
एक एक पर बीस बीस की चाह हुई थी।
दुर्योधन में विकसित हुई धनीभूत वह डाह ही।

क्या कर सकती हूँ मैं भला, भर सकती हूँ आह ही ॥”
कुन्ती की आत्मग्लानि तो सचमुच उम पश्चात्ताप की वहि में सतप्त करके भस्म सा किये दे रही है। कण के प्रति अपराधीनी कुन्ती का स्वर अश्रु विगलित होकर इतना करण विह्वल हो गया है कि पाठक की समवेदना एक साथ उभे गंगा के आलवाले म घेर लेती है। कुन्ती अपन आप को नागिन कह कर कण के प्रति किये गये दुष्टव्यवहार का स्वीकार करती है। संकेत की कन्येयी और ‘जय भारत की कुन्ती में आत्मग्लानि की यह समता दखकर गुप्तजी की कल्पना की

सराहना करनी पड़ती है। कुत्ती का पदवात्ताप शब्द शब्द से फूटा पड़ रहा है
 “देवो नहीं, नहीं आर्षा हूँ, मैं नागिन सी जननी हूँ,
 सबसे ऊँचा पद पाकर नी, स्वयं स्वर्गौरव हूँ नही हूँ।
 मा से मां न बहे तो कुछ भी बहे पुत्र, वह गाली है,
 किन्तु दोष दू कसे तुम्हको जो स्वकम गुणशाली है।”

मानवतावाद की स्थापना

जयभारत' में युग धर्म के साथ कवि ने 'मानवतावाद की' व्यापक दृष्टिकोण में स्थापना की है। मानवतावाद के विधापक तत्त्व समता प्रेम, सत्य, अहिंसा आदि का स्थान स्थान पर विनाश वधन किया है। मानव मान में उस परमात्मा का अंग देखना और जन्मगत जाति बंधना की अवहेलना करके सर्वम समभाव से समत्व रखना गुप्तजी के काव्य में युगीन प्रभाव की छाया है। व्यक्ति का अहंभाव ही यथायत्न सक्तीयता की सृष्टि करके उस सामित बनाना है। इस 'अहं' की परिधि यदि व्यापक हो सके—एक बार अहं के भीतर समस्त समाज समा सके तो मानवतावाद का सिद्धान्त चरित्र ही सचता है। कृष्ण न कौरवों की समभाते हुए कहा था

“वह अहं 'हमों हम' तो नहीं, 'हम भी' उसका अर्थ है,
 जो सबको लेकर चल सके सब्बा वही समय है।”

× × ×

“अपना क्षेम तभी सम्भव है जब हो औरों का भी क्षेम।”

एकलव्य, कण और युयुत्सु जैसे पात्रों का चरित्राकन करते समय कवि ने इस बात का बड़ी सतर्कता में ध्यान रखा है कि जन्मगत जाति का आरोप नहीं इनके चरित्रगत गुणों को आवृत्त न कर ले। 'गुणा पूजास्थान गुणियु न च लिंग न च वयं क' आधार पर उनके व्यक्तिगत गुणों की प्रतिष्ठा में ही मानवता की प्रतिष्ठा कवि को अभीष्ट है। 'कुल में नहीं शीत ही से तो होता है कोई जन आप'—यह कर समाज निमित्त वणगत भेदभाव का परिहार किया गया है। एकलव्य ने तो स्पष्ट रूप से गुण द्वापाचाय में यही जिनासा प्रकट की है—

‘शुश्रूष्य नहीं अराजक्या में क्या ईश्वर का अंग,
 और नहीं है क्या उनका भी वही मूल मनुष्य ?’

अपने मानवता की हीनता का सामाजिक लाइन की चिन्ता न करके युयुत्सु भी आत्मा की एकता में विश्वास प्रदर्शित करता हुआ यही कहता है कि जन्मगत जाति-भेद मिथ्या है

“यदि है यह दीप दम्भकन है, आत्मा से कौन अनादृत है,
होता प्रदीप से वज्रजल ज्वा, कदम से गत-सहस्रजल त्यो ।”

मानवतावाद के विरोधी तत्त्वों का संकेत

मानवतावाद की प्रतिष्ठा करते हुए कवि के अतमन पर उन विरोधी शक्तियों का प्रभाव सतत बना रहता है जो मानव मानव व बीच बँर विद्वेष की खाई खोद कर उसे मनुष्यता की समतल भूमि पर खड़ा नहीं हाने देती । युद्ध लिप्सा और राज्य नाम इन विरोधी शक्तियों का प्रतीक है । आज का युग म यह युद्ध लिप्सा अपनी विकरालता म शतनी भयावह हो उठी है कि मानव के समस्त प्रयत्न, ज्ञान विज्ञान पसूत मग्निल आविष्कार उसे सत्रनाश के पथ पर लीचे लिए जा रहे हैं । अष्टा की सुन्दरतम रचना मानव आज अपन ही बौद्धिक निर्माण से नशस दानव बन कर सहार के बीज बो रहा है । कवि को ऐसे मानव के प्रति जो अमप है उस व्यग्यमयी भाषा मे व्यक्त किया गया है । द्रौपदी का अपमान की बात सुनकर घटोत्कच कहता है—

“हाय य दुष्कृत असम्भव दानवो से,
हम निशाचर हो भले तुम मानवा से ।”

मानव की निरीहता पर व्यग्य करती हुई हिडिम्बा कहती है
“देवा की अपेक्षा दत्य हमसे निकट हैं,
नर तो निरीहता मे दोनों से विकट हैं ।”

स्वायत्त मनुष्य की विच्छेद भावना पर मुधिष्ठिर की यह मार्मिक उक्ति भी कम व्यग्य भरी नहीं है

“हाय जल मे भी मनुज कुल आज पिछडा,
जल मिला जल से, मनुज से मनुज बिछडा ।”

मानव की युद्ध लिप्सा की निन्दा करते हुए कवि न ‘युद्ध सग म जो विचार व्यक्त किया है उन पर गांधीवादो विचारधारा का गहरा प्रभाव लगित होता है । मनुज मे युद्ध लिप्सा दनुज का रजनीज का द्योतक है और मनुष्य का मनुष्यता क्या अमानुषिकता म ही है ? स्वगारोहण का समय पाटवो न गस्त्रा को निस्तार समझ कर विसर्जित कर दिया था । पाडव गस्त्रा की अनधकारी गस्त्रि मे पूणतया अवगत हो गये थ । किन्तु श्रे । मानव जाति की युद्ध प्रियता न क्या गस्त्रा को रसातल म जान लिया ? अपार धन रागि व्यय करके आज भी मानव शस्त्र निर्माण-लीन है । युद्ध के दुष्परिणामो का वर्णन करते हुए कवि ने करण और वात्सल्य भाव की भूमि पर जा सुन्दर दर्शना की है वह युद्ध की निम्मारना भोदणता और

अन्यता का प्रत्यक्ष भूतिमान कर देती है —

“बैठ जिन कंधा पर गगन में खले थे
काट डाला यौवन में आप उन्हें क्रूरों ने
बधो पर जिन्हें चढाये फिरे प्यार से
करके हताहत गिराया उन्हें धूलि में,
धिक् ! यह धीर कम, गम कहा इसमें
धिक् ! नर नागरो के अथ की अन्यता ॥”

भारतीय सांस्कृतिक आदर्शों का उभेप

जयभारत भारतीय मस्तिष्क के उन आदर्शों का व्यावहारिक चित्र प्रस्तुत करता है जो सामाजिक और धार्मिक मर्यादाओं का परम्पराओं को चुनौती देकर व्यक्ति विरोध के आचरण से स्थापित हान है। महाभारत को यथायवादी कोटि का काव्य इसलिए कहा जाता है कि उत्तम काली सनातन शास्त्र मर्यादा का अप्रह्वन हान कर यथाय जीवन के कर्तव्य-कर्म का अनुरोध है। यह हान हुए भी गुप्तजी ने अपनी सांस्कृतिक विचारधारा का उसी गली में व्यक्त किया है जिस उन्होंने ‘साकल और यगोधरा’ में वष्णव धर्म की पृष्ठभूमि पर किया था। उन्होंने समाज, नैतिक जाति, नारी, पाप पुण्य, धर्म अधर्म आदि विषयों पर जो भाव प्रकट किए हैं उनमें मौलिक विचार प्रायः एक-सही हैं। भारतीय नारी के सम्बन्ध में उनकी जा मायना और पूज्य वृद्धि रहा है उसको जयभारत में और अधिक स्पष्ट रूप में प्रकट किया है। अन्धता जीवन की कहानी बहान हुए ‘यगोधरा’ में जो चित्र प्रकट किया है ठाक बसा है यहाँ मिलेगा

“नारी लेने नहीं लोक में इन ही आती है,
अधुनाय रसकर वह उनसे प्रभु-पद धो जाती है।
पर देन में बिनय न होकर जहाँ गव होता है,
तपस्याय का पथ हमारा बहों सब होता है ॥”

भारतीय परिवार-संस्था, विवाह प्रथा दाम्पत्य भाव की मर्यादा, गृहस्थाश्रम में एष्याश्रय की सांस्कृतिक परिस्थिति आदि सामाजिक विषयों पर ‘जयभारत’ में जो विचार कवि ने प्रकट किए हैं उनका मूलधार भारतीय जीवन-शासन ही है।

‘जयभारत’ का प्रतिपाद्य विषय और मुख्य रस

काव्य-भौष्टव की दृष्टि में जयभारत का समीक्षा करने हुए उसके भाव पक्ष पर ऊपर की पत्तिका में जो कहा गया है वह ध्यान देने योग्य है। रस

निष्पत्ति, अलंकार विधान छंद योजना आदि विषया पर स्वतन्त्र रूप से विचार किया जा सकता है। चरित्र चित्रण, रूप-वर्णन, दृश्याकन आदि भी इस प्रसंग में उल्लेख्य समझे जायेंगे। किन्तु प्रस्तुत निबंध के सीमित कलेवर में इन सब विषया का मविस्तर समावेश सम्भव नहीं अतः मैं यहाँ कुछ विगिष्ट तथ्या का ही संक्षिप्त मात्र बरूंगा।

जसा कि मने प्रारम्भ में लिखा है कि जयभारत विभिन्नकाल की रचनाओं का सक्लन होने से राष्ट्रकवि का प्रतिनिधि अर्थ है जिसमें उनके कवि-कृतित्व को पूणता प्राप्त हुई है। भाषा भाव और गली सभी में समानता न होकर स्पष्ट परिलक्षित होने वाली भिन्नता और विविधता है, अतः समग्र भाव से इन तत्वा पर एक साथ विचार नहीं किया जा सकता। महाभारत का मुख्य प्रतिपाद्य विषय धर्म की जय और मुख्य रस शांत है। जयभारत' में भी शांत रस की ही मुख्यता है अथ रस उसके अग्र बनकर आये है। प्रतिपाद्य विषय मानव की श्रेष्ठता और मानव प्रतीक धर्मराज युधिष्ठिर की जय है। युधिष्ठिर 'जय भारत का धीर प्रसात नायक है। युधिष्ठिर के प्रवर्तितजय क्रिया व्यापारा के बीच निवृत्ति की जो अतः सलिला धारा प्रवाहित हो रही है वही निबंद को सीचती है। आजीवन कस्तूररत रह कर जीवन की अन्तिम पडिया में सब कुछ छाडकर जब पाडव हिमालय पर्वत पर दह पात प लिए चले तब उनके अतस में केवल शांत रस ही था—रख एक शांत रस अतस में विष सा विषयो का त्याग चन। स्वगारोहण सग में जिस निलिप्त भाव से युधिष्ठिर की चित्तवृत्ति स्वग और नरक को ग्रहण करती है वही धर्म भाव—निबंद की सर्वोच्च स्थिति है।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से काव्य में कवि का पूर्वग्रह स्पष्ट परिलक्षित होता है। जिन पात्रों का चरित्र महाभारत में हृद्य और तिरस्कार योग्य है उह भी गुप्तजी ने किसी न किसी प्रकार उठाने की चेष्टा की है। द्रौपदी का चरित्र बहुत ही ऊजस्वित और प्राणवान् रखा है। दुर्योधन को अन्तिम क्षणा में एक एसी भाव भूमि पर कवि ने खडा कर दिया है कि उसमें दुष्टपता के होने पर भी दणक या पाठक का मुग्ध करने की शक्ति आ गई है। दुःशासन को भी मातृभक्ति से परिपूर्ण कर दिया गया है। कर्ण और अर्जुन के चरित्रों में उदात्त गुणा का आधान किया गया है। चरित्र चित्रण का मूल मानवतावाद का आदान है, अतः दुबल त पात्रों में गुप्तजा ने अपना काव्य प्रतिभा से गुणा का सधान कर लिया है। युधिष्ठिर द्रौपदी हिडिम्मा और कर्ण इस काव्य के सुंदर चरित्र हैं जिनके चित्रण में कवि को धन्य मपन्नता मिली है।

रूप-सौंदर्य का अवन

रूप-वर्णन और दृश्यावनक। दृष्टि म काव्य म अनक मुदर, सजीव और आकषक स्थल हैं जिह पढत ही नत्राक सामन मनारम व्यक्ति या दृश्य खचित हो जाता है।

एकलय का रूप-वर्णन

“कसी गेंसी थी मासपेगियां, श्यामल चिक्ना चम,
बना आप ही था जो अपना जन्मजात बर बम।
भाल ढका सा था बालों मे, ढाल बना था वक्ष,
घण्टित भी भुजदंडो से थे उत्क्षिप्त युग कक्ष।
बर मे क्या, भ्रू अक्षरों पर भी रखे था वह चाप,
दृष्टि प्रसर थी किन्तु मुकुल था उसका सरलालाप।”

हिडिम्माका सौंदर्य-वर्णन

“उत्थित बसुंधरा से रत्नों की गलाका थी,
किवा अवतोग हुई मूर्तिमती राका थी।
अग मानो फूल, बचभुग, हरीशाटिका,
कर-बद-पल्लवा थी, जगम सी वाटिका।”

श्रीकृष्ण का वर्णन ‘रणनिमग्न’ सग म प्राचीन परम्परा भुक्त अलकार गली म किया है। उपमा उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अन्कारा की छटा दगनीय है। प्रकृति वर्णन क भी दा-तान स्थल पठनाय हैं।

भाषा पर सस्कृत का प्रभाव

भाषा क सम्बन्ध म क्वा एक बात का ही उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। महाभारत की प्राचीन कथा पर आधृत होन पर भी जयभारत’ म सस्कृत श्लोक का अनुसरण नहीं किया गया। पि तु कहीं-कहीं कवि सस्कृत की शक्ति और सुभाषिता की अनूदित करन का लाभ सवरण नहीं कर पाया है। अपने इस कथन की पुष्टि म कुछ उदाहरण नीच प्रस्तुत करता हू —

१—भोगने से कब घटे हैं रोग रूपी राग,

और बढ़तो है निरन्तर द्वंद्वों से आग।

सस्कृत—न जातु काम कामनामुपभोगन गाम्यति।

हविषा कर्णवर्मैव नृपणवाभियधते ॥

२—विविध श्रुति स्मृतिया कल्याणी,
भिन्न भिन्न मुनियो की वाणी,

गूढ़ धम गति, पूछू किससे,
पय बह गये महाजन जिससे ।

संस्कृत—श्रुतिविभिन्ना स्मृतियोर्विभिन्ना,
नेको मुनियस्यमत न भिन्नम् ।

धमस्य तस्य निहित गुहाया ।
महाजनो येन गत स पय ॥

३—एक स्वजन को त्याग करे कुल कष्ट निवारण,
प्राप्त हेतु कुल तजे, प्राप्त जनपद के कारण,
जनपद जगती सभी तजे आत्मा के हित में ।

संस्कृत—त्यजदेक कुलस्यार्थे, प्राप्तस्यार्थे कुल त्यजेत् ।
प्राप्त जनपदस्यार्थे, आत्मार्थे पूयिषी त्यजेत् ॥

४—पर आत्मरक्षा इष्ट है,
धन से तथा दारादि से भी सबया ।

संस्कृत—आत्मान सतत रक्षेत् दाररपि धनरपि ।

कवि की सूक्तियाँ

संस्कृत के सुभाषित वाक्या क अतिरिक्त कवि क अपने वाक्य विचार भी
ऐस है जो सूक्ति की कोटि में आत ह जिनकी भाव व्यजना इतनी सीधी सरल और
अप्यपूर्ण है कि उह टकमानी मनने में दर नहीं लगगी । यदि इस तरह की सुंदर
सूक्तिया का सफल किया जाय ता उनकी सख्या शताधिक होगी । उदाहरणाय
दो चार सूक्तिया नीचे दी जाती हैं

१—मिलना ही आनंद, बिलुडना वेद है,
पुर्नमलन ही इष्ट जहाँ बिच्छेद है ।

२—रस के विरल घूट ही अच्छे अधिक भोग में रोग है ।
३—होता सदा है मानियों को मान प्यारा प्राण से ।

यग के घनी हूँ जो उन्हें अपयग कराल कपाण से ॥
४—कीर्तमान जन मरा हुआ भी अमर हुआ जग में जीत ।

५—निराग तो जीवित ही मरा है,
उत्साह ही जीवन का प्रतीक है ।

अलकारा की दृष्टि से इस वाक्य में उपमा उत्प्रेक्षा अर्थात्तरयास, दृष्टांत और

रूपक की प्रधानता है। उपमा का इस काव्य का प्रमुख अलंकार कहा जा सकता है। छंदा की विविधता से तो काव्य भरा हुआ है। प्रत्येक सग म नया छंद ग्रहण किया गया है। मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के छंदा का प्रयोग है। 'युद्ध सग मुक्त छंद का सुंदर निदग्गन है।

महाभारत और जयभारत

महाभारत का संस्कृत साहित्य में 'पंचम वेद की सना दी गई है। ज्ञान विज्ञान की व्यापक परिधि का घेर कर व्यास मुनि ने उसकी वस्तु का विस्तार किया है। सामाजिक लौकिक व्यवहार नीति में लेकर पारलौकिक चिन्तन के सूक्ष्मातिमूक्ष्म विषया पर दार्शनिक दृष्टि में महाभारत में विचार विमर्ग हुआ है। किंतु 'जयभारत' में न तो वसी व्यापकता है और न गूढ़ता। गभीर विषया का जहां कहीं प्रसंग आया है कवि ने उम शास्त्रीय विमर्ग की काटि तक न पहुंचा कर बौद्धिक मथन तक ही सीमित रखा है। मर कहन का तात्पर्य यह न समझा जाय कि 'जयभारत' में गूढ़ विषया पर विचार व्यक्त नहीं किया गया किंतु उह शास्त्रीय रूप नहीं दिया, यही मुझ अभीष्ट है। वस्तु पात्र रस और उद्देश्य में 'जयभारत' की महाभारत से समानता है। परिधि विस्तार को सीमित रखने के कारण वस्तु की याद छोट करके त्याग बहुत अधिक करना पडा है। जयभारत में कवि ने न तो महाभारत की कथा का आनुपूर्वी अनुकरण किया है और न पर्वों के विभाजन की गली का अपनाया है। स्वतंत्र रूप में गण्ड-कथा की गली में लिखे गए विभिन्न प्रसंगों का वाद में महाकाव्य के शरीर में संग्रहित किया गया है अतः एक सग का दूसरे सग से आकाशा परक सम्बन्ध नहीं है। सभी सग स्वतंत्र और एक तरह से अपन में पूण हैं। औत्सुक्य की दृष्टि में यह बात महा काव्य में श्रुति ही समझी जायगी। महाभारत में पाठक का औत्सुक्य और कथा की आकाशा समन जनी रहती है। शपक और अवान्तर कथा प्रसंगों के हान हुए भी उममें पाठक गमग्र कथावस्तु का साथ लेकर घाग बढ़ता है। 'जयभारत' में यह सम्बन्ध प्रारम्भ के तीन सर्गों में तो कुछ जुडता है बाद में सभी प्रकरण स्वतंत्र हो जात है। है इतना अवश्य है कि सम्पूर्ण काव्य का पत्रन के बाद महाभारत की—कौरव पांडवों की—मूल कथा का व्यापक बाध हो जाता है।

एक ज्ञान और। महाभारत का आख्यान इतना समृद्ध विज्ञान, गतिशाली और विरामय है कि गुप्तजी सद्ग प्रसंग-वाक्य की प्रतिभा वाचक कवि ने उमके पृष्ठाघार पर महाकाव्य लिखने समय अधिक प्राजन प्रौढ गम्भीर, गतिशाली और प्रवाहपूर्ण रचना को आगा करना स्वाभाविक है। भारत के तत्कालीन

सांस्कृतिक सघन का यथायक वा यथार्थ की भूमि पर जसा सजीव बणन ध्यास न किया, वसा जयभारत म नही है। जयभारत का कवि उसका आभास द सका, यही उसकी सफलता समभी जानी चाहिये। युगादश, युगधम और युगोचित विवेक की रक्षा करन मे भी कवि पूण सफ न हुआ है। पुरातन कथा का नवनिर्माण करन म उसन सदम की जय का ही प्रतिष्ठित किया है किन्तु धम की प्रतिष्ठा भगवान् के प्रयत्न स न होकर मानव (युधिष्ठिर) के प्रयत्न से हुई है।

महाभारत और रामायण हमारी पतृक सम्पत्ति हैं। इस सम्पदा का उपयोग करन का उत्तराधिकार हम बश परम्परा स उसी तरह प्राप्त है जमे वपौती का स्वत्व बंटे को सहज ही म मिल जाता है। यदि श्रीकृष्ण क द्वारा जयभारत' मे यम रक्षा की जाती तो नर का गौरव आज हमार सामने न होता नारायण की पूजा म ही हमारी समस्त शक्ति शेष हा जाती। कदाचित इमीलिए कवि न धम की प्रतिष्ठा का भार नर के कंधोपर रखकर उमके नरत्व को ऊँचा ही नही बनाया, वरन् उसके महत्व को गौरव गरिमा से दीप्तिमान भी कर दिया है।

जयभारत म कवि न चरित्र चित्रण म कुछ अधिब स्वतंत्रता मे काम लिया है, इसलिए महाभारत क पात्रा की आत्मा के अणुण रहते हुए भी उनक रूप म कही-कही परिवर्तन दृष्टिगत होता है। महाभारत के चरित्र जिस सहज भाव से जीवन क राग-द्वेष सुख-दुःख पाप पुण्य को स्वीकार करक अपनी गतिविधि का परिचय देन है उतनी सहजता हम जयभारत क पात्रा म नही दिखाई देती। एक प्रवार की जागरण सतकता बौद्धिकता और विवेकपरायणता स अनवरत उदबुद्ध य चरित्र जिस विकास पथ का अनुगमन करते है उसका सूत्र कवि अपन हाथ म रखता है। पाठक को बहु उह तत्र सौपता है जब उसक वाछित चरित्र गुण उनम (पात्रा म) उभर आते हैं। कवि की यह मृष्टि पाठक के लिए सदब आनन्द मयी हो—यह आवश्यक नही है। किन्तु गुप्तजी जम प्रबुद्ध कवि की कलम विवेक का सन्तुलन नही खाती इसी कारण उनकी पात्र मृष्टि भी सदा पाठक को मुग्ध किय रहती है। पात्रा के उनयन की प्रक्रिया बौद्धिक हान पर भी कही तक हीन नही है। इसीलिए सबदनामिल पाठक उनम रम जाता है। किन्तु उनयन की प्रक्रिया यता पर प्रसववाचक विह्वलगाया जा सकता है। महाभारत म सभी प्रमुख पात्रा क चरित्र विकास की चरम सीमा तक पहुँचे है किन्तु जयभारत म युधिष्ठिर ही एक ऐसा पात्र है जो सभी दृष्टिया म पूणता पा सका है। नेप चरित्र अद्विकसित रह गये हैं। स्त्री पात्रा म द्रौपदी क चरित्र को उदात्त और दुःख बनान म कवि का सफलता मिली है द्रौपदी क प्रति कवि न प्रतिगम्य श्रोदाय रखा है और उन स्त्री रूपका आदर्श बनाना चाहा है। हिडिम्बा एक ही सग म वह सब-कुछ देकर

व्ययता की भागी बन जाती है जो द्रौपदी को दीघ सघप व बाद उपलब्ध हुआ है। भाष्म और श्रीकृष्ण के चरित्र अपन तेज, बल पराक्रम, और शक्ति की दृष्टि में सबथा अप्रस्फुटित है।

गाति पत्र का अवतारणा न करके कवि न उस विषय का छाड ही दिया है जो महाभारत की चिन्ता शारा का स्रोत है। गाति पत्र की विवचन पद्धति 'जय भारत' में नहीं है—कथा भी दो तीन पक्तियों में कह ली गई है। गाति पत्र की घम नाति और राष्ट्र-नाति कवि का क्याकर आकृष्ट न कर सकी, यह आदर्य का विषय है। गाति पत्र भारतीय जीवन गगन का एक ज्वलन्त पत्र प्रस्तुत करता है उमवी पीठिका पर गुप्तजी सद्ग नीतिवादी समथ कवि सुन्दर भाव-विधान कर गवता था। पात्र का यह नुटि म न म सगमे अत्रिक खटवन वाली प्रतीन हाती है। इन श्रुतिया व रहन हुए भी मृन् ध्यय का पान में कवि सफल हुआ है। अन्तिम सग में कवि न 'जयभारत' 'जय जय भारत' और 'जयजयजय भारत' कहकर तीन बार युधिष्ठिर को जय का ही उदघोष किया है। यह जयनाद युधिष्ठिर की जय व रूप में मानव की जय का प्रतीक है। काव्य और कवि-कर्म की पूणता की दृष्टि में जयभारत में 'गुद्ध और स्वर्गारोहण' प्रकरण ही गुप्तजी के यग को चिरस्थायी जनान व निण पयाप्त है। गुद्ध सग में मानव की रागात्मक प्रवृत्तिया का अतद्द्व द्वार स्वर्गारोहण सग में मानव की उत्प साधना का जो रूप परिचयित हाता है वह श्रमण लाव (मत्य) और परलाव (स्वग) की कल्पना में मलोभाति मल गाना है। गुद्ध सग पर काव्य को समाप्त करन पर भी मत्य लाव व सघप द्व द्व का चित्र पूरा हा जाना, किन्तु स्वर्गारोहण पर समाप्त करन पर लोह परलाव दाना की पूरी भावी कथाके उपमहार व साथ सामन आती है।

सधप में, 'जयभारत' राष्ट्रकवि व अद्गनादि के माहिल्यिक अनुष्ठान का प्रमिक विवास प्रगित करता हुआ उनक कवि कृतित्वका पूणता पर पहुँचानवाला महानाव्य है। राष्ट्रकविक कृतित्व का समग्र रूप में यन्ि एक हा रचना में परिचय पाना हा तो 'जयभारत' का ही प्रतिनिधि रचना के रूप में उपस्थित किया जा सवना है।



२

उर्वशी : अंतर्मन्थन का काव्य-रूपक

आलोचना की प्रक्रिया के मूलतः तीन अंग या साधन हैं —

१ प्रभाव ग्रहण २ व्याख्यान विश्लेषण, और ३ मूल्यांकन। आज कविता और आलोचना दोनों के क्षेत्र में नए प्रयोग हो रहे हैं और एक ओर जहाँ 'नई कविता' का जोर है, वहाँ दूसरी ओर उसी के बजान पर 'नई आलोचना' भी ज़ार पकड़ रही है। उर्वशी का प्रकाशन इस साहित्यिक सत्य का अतक्य प्रमाण है कि कविता को 'अच्छी या बुरी' कहना जितना आसान है उतना आसान 'नई' या 'पुरानी' कहना नहीं है। इसी तर्क से मने निम्न आलोचना का कर्तव्य-कर्म और आलोचना की प्रक्रिया आज भी वही है। उर्वशी का मैं एक सद्गुण पाठक का तरह अंगत कवि मुझ में सुनकर और अंगत गद में स्वयं मनोयोग के साथ पढ़कर, रस ले चुका हूँ और अब इस स्थिति में हूँ कि उसकी आलोचना कर सकूँ।

प्रभाव ग्रहण

'उर्वशी' व अधिवास प्रसंगों की पढ़ने में मुझे निरक्षय ही रस मिला। भाव, कल्पना और विचार में परिपुष्ट उर्वशी की कविता में भावा की आदानित करने, प्रबुद्ध कल्पना व सामन मूल अमूल के रमणाय चित्र अंकित करने और विचारका उदबुद्ध करने की अपूर्व क्षमता है। नर-नारी का प्रेम—दगा की शब्दावली में काम तथा काव्यशास्त्र की शब्दावली में रति—मानव जीवन की सत्य प्रबल वृत्ति है और 'उर्वशी' काव्य का वही आधार विषय है। काम की अनुभूति व मूढम प्रबन्ध कामल कठोर तरल प्रगा, माहक-पीडन, उद्देगनर और सुखनर, दाक और मानस मृण्मय और चिन्मय अनन रूपा का उर्वशी में अत्यन्त मनोरम चित्रण है और सजस अधिक् आकषक है प्रेम की उस विर अतृप्ति का चित्रण जो भोग में त्याग और त्याग में भाग अथवा रूप स धरूप और धरूप से रूप की

और भटकती हुई मिलन तथा विरह में समान रूप स व्याप्त रहती है। भाव-सवेदन की यह अनेकरूपता अपन आप म भी कम काम्य नहीं है, किन्तु इसमें भी अधिक महत्त्व है उस अतदान का जो अवचेतन या अधचेतन म घुमडने वाल इन अधे सवदना को चेतन मन के आलोक म प्रस्तुत करता है और वदा चिन् दमन भी अधिक महत्त्व है कवि की उस प्रस्था का जा इन अरूप भवृतिया को कल्पना रमणीय रूप प्रदान करती है। इन सभी प्रसगा के उदाहरण देना यहा समव नहीं है—कवल तीन उद्धरण देकर मैं अपन मत को पुष्ट करता हू, जो अमग सवदन की सूक्ष्मता, तीव्रता और प्रगाढ शक्ति को चिन्तित करते हैं

१—(क) देह डूबने घली अतल मन के अकूल सागर मे,
किरणें फँक अरूप रूप को ऊपर खींच रहा है।

(ख) जब भी तन की परिधि पार कर मन के उच्च निलय मे
नर-नारी मिलते समाधि-मुख के निचेत गिलर पर
तब प्रहृष की अति से यों ही प्रकृति कांप उठती है,
और फूल यों ही प्रसन्न होकर हँसने लगते हैं।

२—(क) यह विद्यु-मय स्पश तिमिर है पाकर जिसे त्वचा की
नींव टूट जाती, रोमों मे दीपक बल उठते हैं ?
यह धार्तिगन अधकार है, जिसमे बंध जाने पर
हम प्रकाश के महासिन्धु मे उतराने लगते हैं ?
और कहोगे तिमिर शूल उस घुम्बन को भी जिससे
जड़ता को प्रिययां निखिल तन-मन की पुल जाती हैं ?

(ख) जला जा रहा अथ सत्य का सपनों की ज्वाला मे,
निराकार मे, आकारों की पृथ्वी डूब रही है।
यह कसी मापुरी ? कौन स्वर लय मे गूज रहा है
त्वचा जाल पर, रक्त गिराओं मे, अकूल अंतर मे ?
ये ऊर्मियां ! अगाध नाद ! उफ रो बंधसी गिरा की !
बोगे कोई गद्य ? कहूँ क्या बहकर इस महिमा को ?

३—उफ रो यह मापुरी ! और ये अथर विक्च फूनो-से।
ये नयीन पाटल के दल ध्यान पर जब फिरते हैं,
रोम रूप, जानें, भर जाते किन पीयूष-कणों से।
और तिमटते ही बटोर बाहों के धार्तिगन में,
बहुत एक पर एक उष्ण ऊर्मियां तुम्हारे तन की
मुझमें कर सत्रमण प्राण उमल बना देती हैं।

अनुभूति का विचार भी कम रमणीय नहीं होता—परन्तु वह सबके लिए सम्भव नहीं है। भाव का दान सहजानुभूति की, जिसे दिनकर ने सम्बुद्धि कहा है प्रौढ़ता की अपेक्षा करता है। उबगी के कवि की प्रतिभा इस विनिष्ट गुण से समृद्ध है। उसके अनुभूति और चिंतन-रस, दोनों ही समृद्ध हैं इसलिए आवेग को विचार में अधान सवेदना की प्रत्ययो में और विशेष अनुभव को सामान्य ज्ञान में परिणत करने की कला में वह सिद्धहस्त है

१—प्रेम मानवी की निधि है, अपनी तो वह ऋषि है।

प्रेम हमारा स्वाद, मानवी की आकुल पीडा है ॥

२—गलती है हिमशिला, सत्य है, गठन देह की छोकर,
पर, हो जाती वह असीम कितनी पपस्विनी होकर।

३—रूप की आराधना का भाग

आलिंगन नहीं तो और क्या है ?

स्नेह का सौंदर्य की उपहार

रस चुम्बन नहीं तो और क्या है ?

४—बुद्धि बहुत करती बखान सागर तट की सिक्ता का,
पर, तरंग चुम्बित सक्त में कितनी कोमलता है,
इसे जानती केवल सिहरित त्वचा नग्न चरणों की।

५—नारी क्रिया नहीं, वह केवल क्षमा गति, करणा है।
इसीलिए, इतिहास पहुँचता जभी निकट नारो के,
हो रहता वह अचल या कि फिर कविता बन जाता है।

इस प्रकार के प्रेमगा अधवा सूक्तिया की मार्मिकता का रहस्य यह है कि इनमें विचार अनुभूत होकर या अनुभव तक में पुष्ट होकर सामन्य आता है। बसल भावना प्रायः तरल होकर बह जाती है और केवल तक मस्तिष्क के आवागमन तरंगों पदा कर विलीन हो जाता है—वह हृदय का स्पर्श नहीं करता। किन्तु अत्र कल्पना, क द्वारा इनका समन्वय हो जाता है ता दोनों का ही विशेष उपहार होना है। भाव तथा स गति और तक भाव में रम पाकर रमणीय धन जान हैं।

'उबगी की विम्ब-याजना प्रत्येक समृद्ध है। उमम गच्छ रम और स्पर्श के छोटे-बड़े धनक विम्ब हैं। इन विम्बों की रेखाएँ कहीं मूढम-नरन कहा नीमी और दृढ़, कहीं विराट एव गपन हैं—इनके रंग चित्र विचित्र छोटे भास्वर हैं। समृद्धि और वचिश्य में यदि व पन क विम्बा में हीनतर हैं ता आयाम में उनमें यद्वर नी हैं। इसी प्रकार यदि प्रगाद और निराना के विम्ब विधान धन आयाम के कारण दिनकर के विम्ब विधान में भयंकर हैं ता समृद्धि में

दिनकर की विम्ब योजना भी उनमें कम नहीं है। छायावाणी कविया की अपभा दिनकर का त्रिम्ब विधान अत्रिक मून, पत्यन और अनुभवगम्य है। उसमें चित्र कनाक साथ मूर्तिकला के गुण विद्यमान हैं—वह वायवी कम और तौकिक अधिक है। नई कविता के त्रिम्बा का वैविध्य, रूपरंगा की स्पष्टता और दृढता तान विम्बा में है किन्तु दिनकर की शुद्ध कवि रचि न उट्ट विद्रूप-बोभतम, विशृङ्खल तत्त्वों से सवथा मुक्त रगा है। गोचर ज्ञान पर भी व स्थल नहीं हुए पुनरावर्ति दाप से मुक्त होन पर भी कविश्य के मोह में व धनगद और भद् नहा वने। वस्तुतः 'उवगी की विम्ब योजना अत्यन्त समृद्ध है—विराट और कामल, उदात्त और मधुर विम्बा का ऐसा अपूर्व सकलन आधुनिक युग के उद्भूत कम काया में मिलता है। सम्पूर्ण काव्य ही एक रगीन चित्रशास्त्रा है जिसमें शब्द और अर्थ की व्यञ्जनाओं से अक्षित नगचित्र रगाचित्र रगचित्र तलचित्र और विगट भिन्नि चित्र जगमग कर रहे है। उवगी की विषय-वस्तु ऐहिक और मूत न हाकर सूक्ष्म तथा मनोमय है इसलिए 'उवशी के कवि को उसे विम्बित करने में सामान्य से अधिक आयास करना पडा है और उसका कौशल एवं सिद्धि उमी अनुपान से अधिक स्तुत्य है।

१—रात्रि के वैभव का एक मून चित्र देगिए

सम्राज्ञी विभ्राट, कभी जाते इसको देला है
समारोह प्राण मे पहले हुए डुकूल तिमिर का
नक्षत्रों से त्वचित, कूल-कौलित भानरें विभा की,
गुप्ते हुए चिहुरो में सुरभित दाम श्वेत फूलों के ?
शोर सुना है यह अस्फुट ममर कौण्य घसन का,
जो उठता मणिमय अति-द या नभ के प्राचीरों पर
मुक्ता भर, लम्बित डुकूल के मद मद घषण से,
राज्ञी जब गवित गनि से ज्योतिर्विहार करती है !

२—अत्र आउद के क्षण की मूर्तित करन वाता एक त्रिम्ब दरिएए

प्रिय ! उस पत्रक को समेट ला जिसमें समय सनातन,
क्षण, मूत, सबत, शताब्दि की बूदों में अक्षित है।
बहने दो निदचेत शान्ति की इस अकूल धारा में,
देग-काल से परे, छूट कर अपने भी हाथों से।
किस समाधि की गिखर चेतना जिस पर ठहर गई है ?
उठता हुआ विगिल अम्बर में स्थिर-समान सगता है।

०—और अत म एव अत्यंत सूक्ष्म विम्ब का निरीक्षण और कीजिए ।
अपन ही घर की भयंकर उथल-पुथल का निरीह भाव में देखन वाली
श्रीगीनरी कहती है

जो कुछ हुआ, देख उसको मैं कितनी मौन रही हू ।

कोलाहल के बीच मूकता की अकम्प रेखा-सी ।

विम्ब-धोना की इस समृद्धि के लिए कल्पना के साथ ही दिनकर की समय
भाषा भी कम उत्तरदायी नहीं है । इस गती के चौथे दशक में छायावाणी भाषा
की अमामायता के विरुद्ध विद्रोह करने हुए उमका व्यवहार की भाषा का निकट
लान का सफ़्त प्रयत्न जिन कविया ने किया था, दिनकर और वच्चन उनमें
अग्रणी थे । दोनों न सीधी अथ यकिन के लिए भाषा का तयार किया किन्तु
वच्चन की भाषा जहां जनभाषा का नकटय प्राप्त करने का प्रयत्न म मस्कृत के
अशय रत्नकोष में वचित हा गई वहाँ दिनकर ने उसका भी भरपूर उपयोग
किया । फलतः उमका छायावाणी की लक्षणिक समृद्धि के साथ-साथ व्यावहारिक
भाषा के प्रत्यक्ष प्रभाव का भी यथाचित समावेश हो गया और एक नई शक्ति
एव स्फूर्ति आ गई

१—पर, सोचो तो, मत्थ मनुज कितना मधुरस पीता है ।

दो दिन ही हो, पर करते वह घषक घषक जीता है ।

२—जाने, कितनी बार चन्द्रमा को बारी बारी से

धमा घुरा से गई और फिर ज्योत्स्ना से आई है ।

३—पर वह परिरम्भण प्रकाश का मन का रन्मि रमण है ।

४—और वक्ष के कुसुम-कुज सुरभित विध्याम भवन में,

जहाँ मृगु का पक्षि टहर कर धाति दूर करते हैं ।

५—हारी में इसलिए, कि मेरे घोडा विकल दुर्गों में,

खुली घूप की प्रभा, किरण कोलाहल की गडती थी ।

इन उद्धरणों की भाषा में मौल्य-समृद्धि का साथ एक मात्र ताजगी है जो
छायावाणीतर काव्य भाषा की काम्य उपरनिधि है । किन्तु जहाँ कवि में व्यवहार
की भाषा या जनभाषा का जाग काव्य रचि का धनिप्रम कर उमठा है वहाँ
धनिव्यक्ति नगा हो गई है

१—सगना है यह जिसे, उसे फिर नोंद नहीं घाती है

दियत रत्न में, रात आह भरन में बट जाती है ।

२—घबटो है यह भूमि वहाँ बुझी होनी है नारी ।

दिनकर की विम्ब योजना भी उनसे कम नहीं है। छायावादी कविया की अपेक्षा दिनकर का विम्ब विधान अधिक मूल प्रत्यक्ष और अनुभवगम्य है। उसमें चित्र कला के साथ मूर्तिकला के गुण विद्यमान हैं—वह वायवी कम और लौकिक अधिक है। नई कविता के विम्बा का वैविध्य, रूपरेखा की स्पष्टता और दृढ़ता तो इन विम्बा में है किन्तु दिनकर की गुद्ध कवि रचि ने उन्हें विद्रूप-बीभत्स, विशृङ्खल तत्त्वा से सवथा मुक्त रखा है। गाँवर होने पर भी वे स्थूल नहीं हुए, पुनरावृत्ति-दोष से मुक्त होने पर भी वैचित्र्य के माह में वे अनगढ़ और भद्दे नहीं बन। वस्तुतः 'उजगी' की विम्ब योजना अत्यन्त समृद्ध है—विराट और कामल, उदात्त और मधुर विम्बा का ऐसा अपूर्व सरलन आधुनिक युग के बहुत कम कान्यो में मिलता है। सम्पूर्ण काव्य ही एक रंगान चित्रशाला है जिसमें गद और ग्रथ की व्यञ्जनाओं से अक्षित नर्वाचित्र, रेखाचित्र रंगचित्र तैलचित्र और विराट भित्ति चित्र जगमग कर रहे हैं। उजगी की विषय-वस्तु ऐहिक और मूल न होकर सूक्ष्म तथा मनोमय है इसलिए 'उजगी' के कवि को उन विम्बित करने में सामर्थ्य से अधिक आयास करना पड़ा है और उसका कौशल एक सिद्धि उसी अनुपात में अधिक स्तुत्य है।

१—रात्रि के वभव का एक मूल चित्र देखिए

सम्राज्ञी विश्राट, कभी जाती इसको देखा है
समारोह प्राण में पहने हुए डुकूल निमिर का
नभत्रा से खचित, कूल कीलित भालरों जिभा की,
गुये हुए चिकुरों में सुरभित दाम इवेत फुला के ?
और सुना है वह अस्फुट भमर कोणय वसन का,
जो उठता मणिमय भलिन्द या नभके प्राचीरा पर
मुक्ता भर, सम्बित डुकूल के मन्द मन्द घण से,
राज्ञी जब गवित गति से ज्योतिर्विहार करती है !

२—अप्य भ्रान्त के क्षण की मूर्तित करने वाला एक विम्ब देखिए

प्रिय ! उस पत्रक की समेट लो जिसमें समय सनातन
क्षण, महत, सवत, गतादि की सूदा में अक्षित है।
बहने दो निश्चेत गति की इस अकूल धारा में,
देग-बाल से परे, छूट कर अपने भी हाथा से।
किस समाधि की गिण्टर चेतना जिस पर टहर गई है ?
उड़ता हुआ विगिल अम्बर में नियर-समान लपता है।

३—और अतः मैं एक अत्यन्त सूक्ष्म त्रिम्ब का निरीक्षण और कीजिए ।
अपने ही घर की भयंकर उथल पुथल को निरीह भाव से देखन वाली
श्रीगीनरी कहनी है

जो कुछ हुआ, देख उसको मैं कितनी मौन रही हूँ ।

कोलाहल के बीच भूकता की अकम्प रेखा-सी ।

त्रिम्ब-योजना की इस समृद्धि के लिए कल्पना के साथ ही दिनकर की समय
भाषा भी कम उत्तरदायी नहीं है । इस शती के चौथे दशक में छायावादी भाषा
की अमाभाषता व विरुद्ध विद्रोह करते हुए उसका व्यवहार की भाषा व निकट
लान का सफ़्त प्रयत्न जिन कवियों ने किया था दिनकर और वच्चन उभय
अग्रणी थे । दाना न सीधी अथ 'यक्ति' के लिए भाषा का तयार किया किन्तु
वच्चन की भाषा जहाँ जनभाषा का नैकट्य प्राप्त करने के प्रयत्न में मन्वृत के
अभय रत्नकोप में वचित हो गई वहाँ दिनकर ने उभयों में भरपूर उपयोग
किया । फलतः उसमें छायावाद की लक्षणिक समृद्धि व माय-माय व्यावहारिक
भाषा के प्रत्यक्ष प्रभाव का भी यथाचित समावेश हो गया और एक नई शक्ति
एक स्फूर्ति आ गई

१—पर, सोचो तो, मलय मनुज कितना मधुरस पीता है ।

दो दिन ही हो, पर कसे यह घषक घषक जीता है ।

२—जाने, कितनी बार चन्द्रमा को बारी बारी से
अमा घुरा से गई और फिर ज्योत्सना से आई है ।

३—पर यह परिरम्भण प्रकाश का मन का रश्मि रमण है ।

४—और वक्ष के कुसुम-कुंज सुरभित विश्राम भवन में,
जहाँ मृत्यु के पथिक ठहर कर श्वांति दूर करते हैं ।

५—हारी मैं इसलिए, कि मेरे शीश विवर्त दुर्गों में,
सुती धूप की प्रभा, किरण कोलाहल का गडना था ।

इन उद्धरणों की भाषा में सौन्दर्य-समृद्धि व माय एक मात्र मायगा है जो
छायावादी काव्य भाषा की साम्य उपस्थिति है । किन्तु उर्ध्व कवि में व्यक्त
की भाषा या जनभाषा का जाग काव्य शक्ति का प्रतिष्ठित रूप उभयों में उर्ध्व
प्रभिव्यक्ति नहीं हो गई है

१—सगता है यह जिसे, उसे फिर नोंद नहीं आनी है,
दिवस रत्न में, रात घाट नरन में कूट जाती है ।

२—घाटो है यह भूमि यहाँ बूढ़ी होनी है नारी ।

३—तूने भी रभे निर्घिन । क्या बातें बतलाई हैं ।

४—नित्य नई मुदरताओ पर मरते ही रहते हैं ।

—और आप यान रखें कि य उचितया बल्पना बिलासिनी अप्पाराओ की हैं ग्रामीणाओ की नहीं ।

व्याख्यान विश्लेषण

उवगी का मून प्रतिपाद्य क्या है ? यह प्रश्न स्वभावतः प्रत्येक जागरूक पाठक का ध्यान आकृष्ट करता है । जसा कि कवि ने अपनी भूमिका में स्पष्ट किया है उवगी का मून विषय काम या प्रेम है— यह काव्य दग्गन और मनोविज्ञान के द्वारा जीवन के काम पण की व्याख्या करता है । काम या प्रेम के अनेक रूप हैं । एक उवगी का प्रेम है जो शुद्ध एन्द्रिय भोग का प्रतीक है—उवगी दबलाक म मानव नोब म केवल ऐन्द्रिय सुख व सम्पूर्ण उपभोग के लिए आती है । देवमृष्टि का काम अतीन्द्रिय है जो चेतना भर उत्पन्न करता है कि तु परितृप्ति की तमयना उसमें नहीं है । ऐसा लगना है जमे उवशी के प्रेम द्वारा कवि ने अपने पूर्ववर्ती छाया वादी काव्य व अतीन्द्रिय शृंगार व निरुद्ध प्रतिश्रिया व्यक्त की है । उवगी की भावना के चित्रण म कवि पर फायड व मनोविश्लेषण शास्त्र का भी गहरा प्रभाव है—फायड की काम चेतना (लिजिडो) विषयक मौलिक धारणा उवगी के स्वरूप विश्लेषण म स्थान-स्थान पर मुस्रिण हो उठी है (देखिए पृष्ठ ६०) । काम का दूसरा रूप मिलता है पुरुषवा म । पुरुषवा का प्रेम जैसा कि मैंने अभी स्पष्ट किया है सहज मानवीय प्रेम है । मानव चेतना व आधार-तत्त्व ती हैं—इन्द्रिया, मन और चतय आत्मा । मन प्रथम दो सवस्वीकृत है तीमरे के विषय म मत भेद है । पुरुषवा का म्गन तीसरे तत्त्व म विदवास करता है अतः प्रस्तुत प्रश्न म उमे भी मान चलना होगा । आत्मा की मत्ता स्वीकार कर लेने पर इतिहास और पुराण म वर्णित शरार और आत्मा व चिर द्वन्द्व की समस्या सामन आ जाती है । शरीर का काम विष है और आत्मा का काम अमृत है—उपनिषद के रहस्य द्रष्टा ने आत्मा व काम का उच्छ्वमित वाणी म उदगीय किया है—मध्य युग व मधुराणामक भक्त म भी विरह व प्राणायाम म ही सही इसका स्मरण किया है और शरार के काम की गहणा । किन्तु मानव चेतना का सम्पूर्ण इतिहास तो शरीर के काम म उद्देनित है । फिर मत्य क्या है ? दिनकर न दोना व समबय म गवा अनुगमान किया है—समबय ही नहीं व दोना के तादात्म्य की प्रतिष्ठा करत हैं । पुरुषवा जिन मानवीय काम का प्रतीक है वह एन्द्रिय होकर भी आत्मिक है पार्थिव होकर भी अपार्थिव है—अर्थात् अभिन्न मृण्मय और चिन्मय दोना

हा है। काम का नीमरा रूप है श्रीगीतरा का प्रेम जा निर्भोग ममपण का प्रताक है मम्पूण आमदान का प्रतीक है। इमम काम का भोग-यथ अनुपस्थित है ववन नान की ही महिमा है। अत यह विरह प्रदान है, मम काम की तृप्ति नहीं उपयन है साहित्य की गद्यावली म यही आदा प्रेम (प्लेटानिक नव) है। मुवया क प्रेम म काम का एक और ही रूप भिन्नता है—यह काम का सपन (पनयुक्त) रूप है गार्हस्थ्यक रूप—जिमम काम का पूण उपभाग तो है पर वह मरतन न हाकर धम का हा अग है। काम यहा सिद्धि नहीं है साधन है। वह अपनी मत्ता धम को मर्मपिन कर सपन हा जाता है अत वह पूण तृप्ति भी है क्याकि अतृप्ति क त्रिण उमम अवकाश नहीं रह जाता।

उवगी म काम क य चार प्रसिनिधि रूप हैं। कवि इनम मे किमको अन्त स्वीकार करता है? अथात काम की इम ममस्या का जा मानव-जीवन की चिरतन ममस्या है कवि क्या समाधान प्रस्तुत करता है? स्वभावत उवगी का अध्येता अत म यह मांग करता है।

काव्य की नायिका है उवगी—उमा म आरम्भ कीत्रिण। (क) उवगी त्रिव्य या अतीन्द्रिय प्रम म कृष्णिन हाकर मानव प्रम की पूणता का गुण भोगन आनी है—वायव्य गगन म रमवता भूमि का आनन्द लन स्वग छात्कर पृथ्वी पर आनी है। यत्ति उमक पण को स्वीकार किया जाण ता प्रान का उत्तर यह बनता है कि अतीन्द्रिय प्रेम भावना और कल्पना का प्रेम मवथा अपूण है वह चेतना म एक व्ययामगी रिक्तता उत्पन्न कर रण जाता है परिन्तोप नहीं कर पाना—चेतना का परिणाम ना उम प्रेम म है जा अपनी पूणता म तन मन की मर्मपिन तृप्ति-पूर्ति का पयाय है। काव्य म उवगी की प्रसुगता क आधार पर ममस्या का यह एक समाधान माना जा सकता था परन्तु उवगी क प्रेम का अन्त ता चिरत्रियाग म होता है अतएव स्पष्टत हा म कवि का समाधान नहीं है। काव्य का उगान मान कर यत् त्रिव्य भी निशाना ना सकता था कि उवगी का पूण पूवपण मात्र है उमाता त्रिवियाग अन्त यत् सिद्ध करता है कि अतीन्द्रिय काम पूण या सपन काम नहीं है। त्रिन्तु स्वग म उवगी का दाग ध्यया फिर मवका निपथ कर ली है। (२) पुरुरवा का प्रेम त्रि द्वन्द्वमय मानव प्रेम है जा अल्प म रूप का अार और रूप मे अल्प की अार भक्तता रता है। इग द्वन्द्व क कारण भिन्न क तमय अण म भा पुरुरवा बनन है। यत् यवनी वरावर वनी रहना है और अत म पुरुरवा मयाग न रता है। मवका प्ययय यह हा मवता था त्रि मानव प्रेम अपने प्रवृत्त रूप म गतिकर नहीं हा करता—जब तक मम मृमम अण

विद्यमान रहेगा तब तक वैपम्य या उद्वेग बना रहेगा, मामरस्य की सिद्धि के लिए मृण्मय अक्ष का सन्ध्यास अनिवाय है। उपनिषद्-बाल के ऋषि और मध्ययुग के मधुरोपासक भक्त लौकिक प्रेम को स्वीकार करते हुए भी अतत साधु ही हो जाते थे। उवगी काव्य को पुरुरवा की दुःखात कथा मान लेने पर यह समाधान प्राप्त हो सकता है। किन्तु उवगी काव्य की परिममाप्ति पुरुरवा के सन्ध्यास के साथ नहीं होती अतः कवि का यह भी अभीष्ट नहीं है। (३) तीसरा पक्ष है श्रीगीनरी का निष्काम प्रेम ही काम की सिद्धि है—इष्ट के प्रति सम्पूर्ण आत्मदान का प्रतीक यह निर्भोग प्रेम आत्मलाभ का ही पयाय है। स्वदेश विदेश के लौकिक प्रेमाख्यान इसी का माहात्म्य गान करते हैं और मनोविश्लेषण शास्त्र भी इसका समर्थन करता है। किन्तु उवगी में श्रीगीनरी की वेवसी का विस्तृत बणन क्या इनको स्वीकार कर देता है? (४) अन्त में सुक्या का प्रेम है जो स्वतंत्र न होकर धम (गृहस्थ धम) का ही अंग है—सिद्धि न होकर साधन है। उसमें उपभोग है पर उद्वेग या द्वन्द्व नहीं है इसलिए वह तृप्त है। आयु के राज्यारोहण में काव्य का अतः इनकी ओर सन्नत करता है कि कदाचित् सुक्या का पक्ष कवि को ग्राह्य है किन्तु काव्य में उवशी तथा पुरुरवा के पक्ष इतने प्रबल हैं कि उनकी तुलना में यह पक्ष बड़ा मुलायम और कमजोर पड़ जाता है। सुनि— और पुत्र-कामना कहो तो, यद्यपि, वह सुखकर है, पर, निष्काम काम का, सचमुच वह भी ध्येय नहीं है। निरुद्देश्य निष्काम काम सुख की अचेत धारा में, सतानें अज्ञात लोक से आकर लिल जाती हैं। वारि बल्लरी में फूलो-सी, निराकार के गह से स्वयं निकल पडनेवाली जीवन की प्रतिमाओ सी। अतः कवि का मत यह हम उवगी या पुरुरवा के शान्त में ही ढूँढना होगा।

उवगी का समाधान है
 प्रकृति नित्य आनन्दमयी है जब भी भूल स्वयं को
 हम निसर्ग के किसी रूप (नारी, नर या फूलों) से
 एकतान होकर रीते हैं समाधि निस्तल में,
 पुल जाता है कमल, धार मधु की बहने लगती है,
 बहिक जग को छोड़ वहीं हम और पर्वत जाते हैं
 मानो, मायावरण एक क्षण मन से उतर गया हो।

×

×

×

पर, खोजें क्यों मुक्ति ? प्रकृति के हम प्रसन्न अवयव हैं,
जब तक शेष प्रकृति, तब तक हम भी बहते जाएंगे
लोलामय की सहज, गात, आनन्दमयी धारा में ।

और उधर पुरुरवा का नयाधान है

देह प्रेम की जन्मभूमि है, पर, उसका विचरण की
सारी लोला भूमि नहीं सीमित है दधिर-त्वचा तक ।
यह सोमा प्रसरित है मन के गहन, गुह्य लोका में,
जहां रूप की लिपि अरूप की छवि आका करती है,
और पुरुष प्रत्यक्ष विभासित नारी मुखमण्डल में
किसी दिव्य, अप्यवन कमल को नमस्कार करता है ।

×

×

×

यह अतिश्रुति विषय नहीं, शोणित व तप्त ज्वलन का
परिवहन है सिन्धु, गात दीपक की सौम्य गिला में ।
निन्दा नहीं, प्रशंसित प्रेम की छलना नहीं समपण,
त्याग नहीं, सचय, उपत्यकाओं के कुसुम-द्रुमा को
ले जाना है यह समूल नगपति के त्रुग गिलर पर,
यहां जहां कलास प्रात में गिव प्रत्यक्ष पुरुष है,
और शक्तिदायिनी गिवा प्रत्येक प्रणयिनी नारी ।

‘उवशी का पक्ष प्रकृति का पक्ष है—उमक लिए प्रकृति अद्यान् एन्द्रिय धरा-
तल पर काम-भुगही पूण मय है उमक आग कुठ और का अनुमान अनावयन
है । यह प्रकृत ध्यान अथवा प्रकृति के प्रति पूरा आत्मापण ही अपन महज रूप
में जीवन की मिट्टि है महज का अर्थ है निर्वाण और निष्काम । कामना या
वामना में दूषित होकर महज काम रूप यह अमृत गरन में परिणत हो जाता
है अतः निष्काम भाव में एन्द्रिय काम का ध्यान ही जीवन का चरम माध्य
है । माग का अर्थ प्रकृति में माग नहीं है कामना में माग—निष्काम आत्मापण
ही वास्तविक माग है—‘माग प्रवचना है । पुरुरवा का भी ‘तीर्थ’ काम में पूरा
आस्था है । किन्तु उमक लिए वह माधन है मिट्टि नहीं है । वह कामवादी है
एन्द्रिय रति का यथा आत्म रति की गाधना मानता है—अथवा प्रकृति को धारा-
धना यह ईश्वर की ही धारापना के निमित्त करता है । ‘माग प्रकार उवशी और
पुरुरवा के दृष्टिकोण में अन्तर्गत है कि ज्ञान ही निष्काम ध्यान का
जीवन का चरम माय मान है । ‘माग यह है कि उवशी के त्रिय अन्तिम मत्ता
प्रकृति है—उमा के प्रति निष्काम आत्मापण जीवन की मिट्टि है जब कि पुरुरवा

के लिए परम तत्त्व ईश्वर है प्रकृति के माध्यम से उसी व प्रति पूण सम्पण जीवन की सिद्धि है।

कवि का अपना मतव्य इन दोनो म न कौन सा है ? कदाचित् पुरूरवा का मतव्य ही उसका मतव्य है ? किन्तु क्या वह माय है ?—और क्या उवशी काय का सम्पूण विधान उस निभ्रात रूप से अभिव्यक्त एव प्रतिफलित करता है ? ये प्रश्न तुरत ही हमारा ध्यान श्राकृष्ट करत ह । पर ये प्रश्न तो व्याख्यान विनपण म आग मूल्याकन के अतगत आत ह ।

मूल्याकन

पहला प्रश्न यह है कि क्या उवशी काव्य म प्रस्तुत कामविषयक उपयुक्त मतव्य—दोनों या उनम म बार्द एव जीवन के वृहत्तर मूया की कसौटी पर दुद्ध टहरता है ? क्या काम साधना सम्पूणन निष्काम ही सही जीवन की सिद्धि है ? इमम सन्दह नहीं कि काम अत्यन्त मौलिक वक्ति हं और जीवन की समृद्धि म उसका योगदान निश्चय ही मवाधिक है । परन्तु एक ता निष्काम काम की धारणा हा कुछ अटपटी सी है—मनोविज्ञान मनोविश्लेषण शास्त्र आदि के द्वारा वह सिद्ध नहीं हो सकती क्योंकि काम सुख की समृद्धि का मूल आधार मानसिक ही मानना पडेगा इमीलिए काम को (गह्रा वा) मनना रत बहा गया है । मन व काम के बिना केवल तन के काम की स्पृहा क्या सम्भव है ? तन व आनन्द म जा आस्वात् है वह तो मन की ही त्रिया है । मन का काम ही तो तन के काम को ऐश्वर्य प्रदान करता है—भाज्य रस म जा म्यान सुग व वा हं वही वरन् उनम भी अधिक महत्वपूण स्थान एद्रिय रस म मन व रस का है । इमलिए केवल घुम डन और गुण्टा की स्थिति को छाडकर मन के काम का गरल मानना न सत्य है और न उचित ही । दूसरे निष्काम या सकाम कसा भी काम जीवन की सिद्धि पसे हा सकता है ? जीवन व व्यापक और स्वस्थ मूल्या के आधार पर दस प्रकार की स्थापना स्वीकार्य हा सकती है ? अजक युग म इस तक को भी स्वीकार करना रति आत्मरति की ही साधना है । आजक युग म इस तक को भी मानना होगा कि जीवन का कठिन है । यह सिद्धान्त मान लिया जाए तो यह भी मानना होगा कि जीवन का चरम पुणपाय काम है और जा व्यक्ति एद्रिय काम म जितना लीन है उनना ही सिद्ध है—पारमाधिक दृष्टि म और लौकिक दृष्टि म भी । आज इस जीवन-दगा का कौन स्वीकार कर मरता है और कम स्वाकार कर मक्ता है ? मययुग म भी जय जावन अणभ्राकृत अधिक अन्तमुता या और जावन मूल्य भी उसी के अनुरूप थे मधुरापासना म मम्यद्ध दागनिन पद्धतिया पारमाधिक दृष्टि स एद्रिय काम

का जह प्रकृति का अज्ञ मानकर उसको बि मय आनन्द माधना का प्रेरक साधन मात्र मानकर छाड़दती थी—महज माधना की कुछ कामभारतीय पद्धतियाँ क अति रिक्त अयत्र वही भी एन्द्रिय काम का अत्यति तर्क रूप म स्वाकार नहीं किया गया । अतएव उपयुक्त दोनों म स किसी भी रूप म—उन्नती अथवा पुनरुत्था का—यह अद्भुत काम-दान न ग्राह्य हो सकता है और न काम्य ही । हा, पुनरुत्था क स यास का चरम परिणति मानकर—उमी पर कायाय का कद्रित कर यदि वहा काव्य का समापन कर दिया जाता ता अतिम अथ व्यजना बदल जाती तथा एन्द्रिय काम का पारमार्थिक उन्नयन—आत्मनाम म उन्नयन—सफल हा जाता और यह जीवन ज्ञान यतमान युग धम क अनु रूप न हात हुए भी एक विद्वान् चिंतन परम्परा क अनुकूल अवश्य हाता । परन्तु दिनकर की युग चतना स यास को स्वा कार करन म अनमथ है—कुम्भ मूढम उसका प्रमाण मिल चुका । युग धम क अनु रूप काम का परिणति का एक और रूप हा सकता ह जिसका प्रतिफल हम मुक्या क जीवन ज्ञान म मिलता है और अत म औगीनरी जिनगी आर प्रकारान्तर स इगित करती है सतति द्वारा आत्म विकास । वनमान मनाविद्वान् गारु भी इसका समर्थन करता है—रति की सफ न परिणति है सतति आर उसके द्वारा व्यक्ति क धरानल पर प्रवृत्ति का उन्नयन एव सामाजिक धरानल पर अज्ञ का सामाजीकरण कर मनुष्य जीवन सफ न हा सकता है । दिनकर का जागरूक विचारक-कवि हम पर स अवगत है और उसका प्रतिपादन उन्नती म उन्ना के पन्तु वाक्य का वस्तु विधान जिस रूप म किया गया है उसम यत् एव उदा दुःख पड जाता है और पाठ्य मारभूत प्रभाव क रूप म इस ग्रहण नहीं कर पाता, क्याकि स्पष्टत ही यह कवि का अभिप्राय नहा है । एमी म्विति म समाधान क्या है ?

वास्तव म काम का महत्पुरुषाय म प्राग जवन का चरम पुष्पाय मानना ही गन्त है । जवन का चरम पुष्पाय धम ही हा सकता है जिसम लौकिक दृष्टि स अमनुष्य और आध्यात्मिक दृष्टि म नि श्रेयम् की सिद्धि अतभूत है । अथ और काम उसका साधन है—स दाना ही महान् पुष्पाय है किन्तु अन्तत साधन-रूप ही है—साध्य नहा बन सकन । काम अथ की अथगा निरुचय ही अधिक समृद्ध और काम्य के अर्थात् उसम विद्वान् अधिक है । किन्तु साध्य उा भी नहीं माना जा सकता । भरे मन म उन्नता क मून विचार की मग्न वही बाधा यही है कि यह साधन म सिद्धि कूडन क लिए प्रयासगोन है । कामायनी म लौकिक दृष्टि मे धम का आध्यात्मिक दृष्टि म धम का भा उगमकर अतत धान-रूप मो । का चरम पुष्पाय माना गया है । इमनिण उगरी परिणति अथ्यवर्ती बाधाधा क रहन हुए भा धरुण है । कामायनी अद्या और मनु का कथानक है मनु आर इहा का

आस्थान नहीं और उसी के अनुरूप वह पुम्पाथ के धम और आनन्द पक्ष को ही महत्त्व देता है अथ-पक्ष को नहीं। मुझे आश्चर्य है कि 'उवशी' की भूमिका में कामायनी के विषय में इस प्रकार की विचित्र कल्पनाओं की आवश्यकता क्या हुई है।

तब फिर कवि का समाधान क्या है? कवि ने भूमिका में इस प्रश्न का उत्तर देते हुए लिखा है कि 'उवशी' में वह कोई समाधान प्रस्तुत नहीं कर सका। और वस्तु स्थिति यही है। दिनकर द्वन्द्व का कवि है समाहित का कवि नहीं है समस्या के सम्पूर्ण उद्घाटन का अनुभव कर प्राणा के पूरे आवग के साथ अत्यंत प्रभावमय अभिव्यक्ति करना उसके लिए जितना स्वाभाविक है समाधान प्रस्तुत करना उतना नहीं। इसलिए दिनकर के काव्य में स्वाभूति का बल है और आत्मस्वीकृति की स्वाभाविकता भी उस प्राप्त है। द्वन्द्व उसका अनुभूत है, समाधान अनुभूत नहीं है—विचार में द्वारा समाधान वह भी प्रस्तुत कर सकता है, किन्तु वह करना नहीं चाहता। उवशी काव्य का प्रभाव रमी तथ्य की दृष्टि करता है—उसमें अतम-धन की अदभुत शक्ति है किन्तु चित्त की समाहित उससे द्वारा सम्पन्न नहीं होनी। उद्घाटक प्रभाव की दृष्टि से 'उवशी' निश्चय ही अत्यंत प्रबल काव्य है—छायावादोत्तर युग में ऐसा प्रबल काव्य हिन्दी में दूसरा नहीं निखा गया और जहां तक मराठी काव्य है (यद्यपि यह ज्ञान अनुवाद पर आश्रित और अत्यंत सीमित है) अथ भारतीय भाषाओं में भी इतनी प्रबल समसामयिक रचना बर्दाचित् नहीं है।

एक प्रकार में उवशी की समीक्षा यहां पर भी समाप्त हो सकती है। परन्तु मुझे लगता है कि मैं अभी अपना मत ही पूरत व्यक्त नहीं कर पाया और उस यही पर छाड़ देने से उवशी का मूल्यांकन शायद अधूरा रह जाएगा। मेरे सामने अब यह प्रश्न उठता है कि काव्य में मूल्यांकन में समाधान का क्या स्थान है? इस में साहित्य में मैं नवति उद्देश्य अथवा समाधान का कायल नहीं हूँ। इस प्रकार का समाधान बलाक उत्पन्न में बाधक ही होता है। किन्तु समाधान का यह तो स्थूल अर्थ हुआ, अपन सूक्ष्म अर्थ में वह अर्थवित्ति का प्रयास है और प्रत्येक कलाकार के लिए अर्थवित्ति की अनिवार्यता असंदिग्ध है। कलाक मूलाधारक विषय में या तो अनन्य मत प्रचलित है किन्तु यन् मत प्रायः सर्वमान्य कम-ना-कम बहुमान्य, अवश्य है कि कला का प्राणतत्त्व है सामाजिक अर्थवित्ति की एकता में परिणति। अर्थवादों में इस युग में यूरोप में और इधर भाग्य में भी इस मत के विरोध में अनेक विचित्र स्थापनाएँ हुई हैं जो नाना प्रकार के दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक तर्कों के आधार पर यह सिद्ध करने के लिए प्रयत्नशील है कि सामाजिक या

एकाचित्ति का अनुमन्धान एक कृत्रिम कला चष्टा है—आधुनिक जीवन की विकीणता ही आज के जीवन एवं कला का सत्य है। इन स्थापनाओं के खण्डन मण्डन के लिए यहाँ अवकाश नहीं है और वास्तव में कृति तथा विकृति के भेद का लोप करने वाली इन अतिवादी धारणाओं का प्रतिवाद करना प्रस्तुत प्रसंग में आवश्यक भी नहीं है क्योंकि गिन्बर के कला सस्कार निश्चय ही इस प्रकार के अतिवाद से मुक्त है। अतः यदि सामजस्य कला का आधारतत्त्व है तो उवशी के वस्तु विधान में उसके अन्तरंग अर्थात् विचार और बहिरंग अर्थात् काय्यरूप—दोनों में एकाचित्ति दूदन का प्रयास कला रसिक पाठक के लिए स्वाभाविक है—और यही वादा यही हा जाता है क्योंकि उवशी के मूल विचार तथा उमका प्रतिफलित करने वाले वस्तु विधान में अचित्ति नहीं है विचार का अवयव भग कला रूप की अचित्ति का भी भग कर देता है। यथाय दष्टि न यदि कवि द्वन्द्व को ही अतिम सत्य मान लेता और पुनरवा के सन्धान में ही इस प्रणय कथा का विसर्जन कर देता तब भी कला रूप की पूणता उनी रहती। किन्तु उसके आत्मावादी सस्कार समाधान के लिए आवुल और विषय प्रयास करत है। उसमें एक ओर जहाँ उवशी की सुन्दर कला प्रतिमा में, पूण होन होने शरारें पड जाती हैं वहाँ दूमरी ओर सहृदय पाठक के चित्त की समाहिति भी बिखरन लगती है। इसीलिए सामयिक हिंदी-भाषा की यह श्रेष्ठ उपलब्धि अंगरूप में अपशावृत अधिक समृद्ध एवं प्रबल हान पर भी अपन समग्र रूप में न कामायना की श्रेणी में आती है, और न 'प्रियप्रवास तथा 'साकेत' की श्रेणी में।



लोकायतन : बोध के शिखर का महाकाव्य

‘लोकायतन’ हिंदा के मध्ययुगीन और आधुनिक महाकाव्या की परम्परा के साथ एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और नवीनतम कड़ी के रूप में जुड़कर हमारे सामने आता है। इस महाकाव्य की विशिष्टता का एक कारण यह है कि इसमें पतञ्जी की जीवनव्यापी साधना एक ऊँचे धरातल पर उभरकर समग्र युग के बिलखारव को समदती और सजाती हुई अपनी मिद्धि को महाकाल के परिप्रेक्ष्य में लाकर लडा कर दता है।

विश्व इतिहास का वर्तमान युग कोई साधारण युग नहीं है। यह एक बध्मा वैज्ञानिक सम्यता के विकास की चरमावस्था का युग है जो हजारों वर्षों से विकास प्राप्त महान् मानवीय मूल्या को कुचलकर सामूहिक मानवीय प्रगति की प्राकृतिक रेखा को बीच ही में लौघकर, कुछ विचित्र ही प्रकार की बयवितक, सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक और सांस्कृतिक उलभना में अपने आपको उलभता हुआ महाविनाश की मरीचिका की माहक ज्वालाका की ओर तजो से भागता चला जा रहा है। सारा युग बवल क्षणा के क्षीण पुल पर पागला की तरह कभी सामने की ओर दौडता है कभी बीच ही में टकराकर गिर पडता है, कभी पुल का लौघकर दायीं ओर बाल महागत्त में कूदन का प्रयास करता है और कभी बायीं ओर उल्लन लगता है।

इस निनात क्षणवानी युग का भूत और भविष्य के दा दीप विम्वृत छोरा की छाया और प्रनाग के माध्यम में दमे त्रिना उत्तका सटीक भूतयानन असभव है। क्षण के बीच में फँसी हुई दृष्टि बवल क्षण क्षण की उलभना के जाल में ही उलभ कर रह जाता है। ऊचार्द से सपूर्ण युग का सम्यक सर्वेक्षण करन की समयता उमम नहीं रहती। कोई त्रिरना महाकवि ही व्यापक विहगायलावन के उस उच्च सिंदु पर लडा हान का साहस कर सकता है जहाँ से बाल के दह-बडे

खण्डा की भक्ती विस्तार से दर्शा जा सकती है। उसी त्रिदु म उसी महानान खण्डा के बीच कुलबुलाता हुआ वतमान युग अपने हाम और विषटन की पूरी प्रक्रियाओं के साथ महासागर के बीच एक छोट-म द्वीप की तरह तरता हुआ अपने वास्तविक रूप में दिखायी दे सकता है। लोकायतन का कवि उसी उच्च त्रिदु पर खड़ा है। वही म वह युग युग से स्पष्टि भारतीय मानस का मधन करता हुआ वतमान युग की विघटित परिस्थितियाँ के साथ चित्रण और विस्तेरण के साथ ही भावी युगा के अधिमानस के पूर्ण विकसित रूप की मागलिक भावी प्रस्तुत करता है।

पूर्वसृष्टि या आस्था शीपक से लोकायतन का पूर्व द्वार खुलता है। मूर्तिमती पृथ्वी की कर्णा भी हिम निगम पर आमान गरदवालीन उपा से एक अपूर्व ज्योतिर्मयी, ध्यान मग्ना नारी मूर्ति पाठक की आँखों के आगे उभरता है। युग मध्या की घना मुनहरी तमिस्रा की तरह उससे कथा पर बाल कुतल लहरा रहे हैं। यह है पृथ्वी पुत्रों साता जो रामायण के धन में भूगर्भ में प्रवेश करने के बाद युग युग से भू-मानस में उपचनना के रूप में छापी हुई है और वही से पान ज्योति की नयी-नयी लहरा के स्फुरण द्वारा मानव मन की अंध रदिया का विनष्ट करनी हुई युग-युग में पार हाम और विनाश की बाला छायाओं के बीच भी स्वयं विरणा के बिखेरती रहती है।

सीता की उस एकाग्र ध्यानावस्था में सहसा दीप्त नीलमणि पवत के समान मनमाहा राम का आविर्भाव हुआ है। सीता ने चिंतित और विचलित-सी दग कर राम उन समझते हैं कि आज के नये प्रकार में नये मानव का गढ़ना है इसलिए सीता बाता को भूलकर नये बल्प की बाल माचनी चाहिये। आज नये बल्प को जन्म देने के लिए पृथ्वी प्रसव-व्यथा में पीड़ित हो उठी है

नये बल्प की प्रसव-व्यथा पृथ्वी की,

छिड़ा निमित्त जग से बाहर भीतर रण।

परपान का इन सध्या में जबकि बाहर और भीतर रण छिड़ा हो, मानव जाति निगमूय हा गयी है। उन नयी दृष्टि देना है नया बोध देना है—एमी दृष्टि, जो एक धार देवाबाल के पुतिना के द्वारा उन जीवन के विराटता के दगन कर दे और दूगरी और उमी विराट के बीच में स्थित वतमान धण के टोम साधार दे भरे जा जब और चेतन, इन्द्रिय और आत्मा, स्वयं और मर्य, स्थिति और समूह उपचनता और उच्च तना के बीच का भेद और दृष्ट मिटा कर सात मानस में एक उच और महत् मागलिक जावन के बीज बो सब। और तब युग-युग के सायाओं के प्ररख, आन्विति वात्माकि प्रकट हान हैं जो आतिषा,

राष्ट्रा और शिविरों में विभाजित आज का विनाशधर्मी मनुष्यता की दुख-गाथा सुनकर मन के वन में ध्यानावस्थित न रह सके । बाल्मीकि कहते हैं

आशंकित जन, आपद-बाल भयानक,
प्रलय सजन में छिड़ा विश्व घातकरण
फिर पाताल प्रवेश नहीं कर जाये
धरा-चेतना, चित्तित मन इस कारण ।
महाह्वास छा जाय न विघटित भू पर
उबर न पाये शक्तियो तब मानव मन,
सावधान करने आया मैं जन को,
दण्ड जगत पर घिरे घोर सक्कट धन ।'

प्रादिक्रि प्रपत्नी अनादि महिमा से घोर तमसाच्छन्न युग की बीभत्स पकिलना में अपरिचित नहीं है । वह स्वयं डाकू का जीवन बिता चुका है और इस कारण मानवीय अवचेतना की अधी गलियाँ में भटक चुका है

डाकू से कवि बना प्रीति करुणा-रत्न
ज्ञात क्षुद्रता विकृति मुझे जीवन की,
अथ स्वाय की काम गूह्य गलियो में
ज्योति भटकती पग पग पर भू मन की

और उसी अथ चेतना से उबरकर उसी में माध्यम से उसने महाज्ञावन की उस दिव्य महाज्योति की विराटता के दर्शन किये हैं जो युग युग में ह्लास और दिवास के उल्टे सीधे चक्करों में भटकती रहने वाली मानवता का अन्तिम लक्ष्य है । इसीलिए वह आज एक नयी भाषा रचकर महासत्य पर आधारित एक नया स्वप्न गड़कर, सामूहिक मानव को एक नयी दृष्टि देने के लिए उत्सुक है । वह चाहता है

भूत, अविष्यत् घतमान के तम में
देख सकू मानव का धी-नव ध्यान ।
स्वप्ना की निधि से गढ़ सकू धरा मन
अंतर आभा का जो गोभा-रूपण ।
यथे प्राति के स्वण-मूत्र में भू मन
एक बने जग, षड्देगा में खडित,
देग-जातियों से निलर मानवता,
विविध धम सम्कृति हो विश्व समायित ।

सबनाम के अणु उदजन आयोजन
मनुज सिंधु-जल-तल में करें निमज्जित,
हो रचना सकल्प महत् जन क्षमता
लोक क्षेम हो दुःख, विकृति पर जय नित ।

केवल आदिकवि ही नहीं मारी प्रकृति सारी धरती आज के मनुष्य के
बौद्धिक विघटन, अनास्था नतिर खवता आर्थिक राजनीतिक और जातिगत
सकीर्णता और साम्प्रतिक दृष्टिभ्रम देखकर आगबित हा उठी है ।

पृथ्वी सीता को स्नेह से गोदी में भर अपनी उस आशावा की बात कहती
है

आद्र कठ से बोली धरती, बेटी ।
जात तुम्हें मेरे मन का सघषण,
युग-संध्या जब, मची प्राति अग जग में
मचल रहा मेरे भीतर नव जीवन ।
नये कल्प का जन्म, क्षितिज मुख स्वर्णम,
बाहर भीतर घटते नव परिवर्तन ।
× × ×
क्रुद्ध गेय फूत्कारों से दिग्गि घूमित
महा-मृत्यु-मेघों से मथित अंबर,
मुझे धिरोधी गिबिरो का भय भ्रम हर
सज्जन प्राति स्थापित करनी भू-तल पर ।

पृथ्वी की अपनी वयवितक पीटाएँ भी हैं । जिम आमजननीन प्राणी—
अर्थान् मनुष्य—को उगन अर्पन अन्तर के स्नेह रम में लालित करके उमके
विवाम में साया बरमा तक पूरा सहयोग दिया है वह अपनी ही आमधानी बुद्धि
ग अर्पन धरम हास और विनाग की योजना स्वयं बनाय बटा है । अिगरे जान
र कुछ अत्यंत उपेक्षणीय कणा की पूजा लेकर उसने पृथ्वा के विवामणील और
सतत गतिगील जीवन की महज प्रगति क पथा को र्धन क प्रयत्ना में न मध्य
युगा में कोई धान उठा रगी, न आज ।

अर्पन अत्यंत धाये, भूँ और लडिन पान के दप में कतरा कर पिछले युगा
के तयानयित गानिया और आज क जड-तत्त्ववाणी कथानिक। न पृथ्वी क विराट
जीवन-गत्र को अत्यंत सकीर्ण बनाकर उतकी भीतरी और बाहरी विवाम
सम्बधी योजनामा को अत्यंत गीमित मान दिया है । मनुष्य न अपनी विकृत बुद्धि
क दम में अर्पन को प्रकृति और जावन का निपता मान दिया है और वह अर्पन

राष्ट्रा और शिविरा में विभाजित आज की विनाशधर्मी मनुष्यता की दुःख-गाथा सुनकर मन के वन में ध्यानावस्थित न रह सक। वाल्मीकि कहते हैं

आशंकित जन, आपद काल भयानक,
प्रलय सज्जन में छिड़ा विश्व घातक रण
फिर पाताल प्रवेश नहीं कर जाये
परा चेतना, चित्तित मन इस कारण।
महाह्रास छा जाय न विषटित भू पर
उबर न पाये गतियो तक मानव मन,
सावधान करने आया मैं जन को,
देख जगत पर घिरे घोर सङ्कट घन।'

आदिवासी अपनी अनादि महिमा से घोर तमसाच्छन्न युगा की बीभत्स पक्वता से अपरिचित नहीं है। वह स्वयं डाकू का जीवन बिता चुका है और इस कारण मानवीय अचेतना की अधी गलियाँ में भटक चुका है

डाकू से कवि बना चोच कटना-बस
आत क्षुद्रता विकृति मुझे जीवन की,
अध स्वाध की काम गुह्य गलियाँ में
ज्योति भटकती पग पग पर भू मन की

और उसी अध-चेतना से उबरकर, उसी के माध्यम से उसने महाजावन की उस दिव्य महाजयाति की विराटता के दर्शन किये हैं जो युग-युग में ह्रास और विवास में उल्टे-सीध चक्करों में भटकती रहने वाली मानवता का अतिम सध्य है। "सीलिए वह आज एक नयी गाथा रचकर महासत्य पर आधारित एक नया स्वप्न गढ़कर सामूहिक मानव को एक नयी दृष्टि देने के लिए उत्सुक है। वह चाहता है

भूत, भविष्यत् वतमान के तम में
देख सकू मानव का श्री-नव ध्यान।
स्वप्नों की निधि से गढ़ सकू धरा मन
अंतर आभा का जो गोभा दपण।
अधे प्रीति के स्वप्न-सूत्र में भूमत
एक वन जग, यद्गुदों में खडित,
देग-जातियों से निखरे मानवता,
विविध धम सस्कृति हों विश्व ममचित्त।

सवनाग के अणु उदजन आयोजन
मनुज सिधु-जल-तल मे करें निमज्जित,
हो रचना सकल्प महत् जन समता
लोक क्षेम हो दुग, विकृति पर जय नित ।

कवन आदिकवि ही नही सारी प्रकृति, सारी घरती आज के मनुष्य के
बौद्धिक विघटन, अनाम्या, नतिक गवता, आर्थिक, राजनीतिक और जातिगत
सकीणता और सांस्कृतिक दृष्टिभ्रम दगकर आगवित हो उठी है ।

पृथ्वी सीता को स्नेह म गोदी म भर अपनी उम आगका ब। बात कहती
है

आद्र कठ से बोली घरती, बेटी ।

ज्ञात तुम्हें मेरे मन का सघषण,
युग-सध्या जब, मची प्राति अग जग मे
मचल रहा मेरे भीतर नव जीवन ।
नये कल्प का जन्म, क्षितिज मुख स्वर्णिम,
बाहर भीतर घटते नव-परिवतन ।

× × ×
ऋद्ध गेय फुत्कारों से दिग्गि धूमिल
महा-मृत्यु गेधों से मथित अवर,
मृक्षे विरोधी गिविरों का भय भ्रम हर
सजन गाति स्थापित करनी भू-तल पर ।

पृथ्वी की अपनी वयवित्त पीढाएँ भी हैं । जिम आत्मचेतनगीन प्राणी—
अर्थान् मनुष्य—को उगन अपन अन्तर के स्नेह रम म लालित करक उमक
विकाम म साखा बरनों तक पूरा सहयोग लिया है वह अपनी ही आ-मघानी बुद्धि
म अपन चरम हास और विनाग की योजना स्वय यनाय बटा है । गिखरे ज्ञान
क कुछ अत्यन्त उपयोगीय कषा की पूजा तवर उसन पृथ्वी क विकामगान और
गनन गतिगाल जीवन की महज प्रगति क पया का स्थन क प्रयना म न मध्य
युगों म काई बात उठा रनी, न आत्र ।

अपने अत्यन्त बाध भूरे और सडित ज्ञान क दप म इनरा कर पिछने युग
क तयाकदित जानिया और आत्र क जड-नस्त्वबानी कानिका न पृथ्वा के त्रिगट
जीवन-भोत्र को अत्यन्त सकीण यनावर उमका भानग और बाट्रा विकाम-
गम्बधी योजनाषा क अत्यन्त मामित मान लिया है । मनुष्य न अपनी दिव्य बुद्धि
क दम म अपन को प्रकृति और जीवन का नियता मान लिया है और वह अपन

अत्यंत सतही माना म उसका मूल्यांकन करना चाहता है। यह दुमति उन बड़ी तर्जों से महानाग की आर खींचे लिए जा रही है। पृथ्वी गहरी वेदना व साथ कहती है

मृट्टी भर मन के जगमग माना मे
 क्रिया बौद्धिकों ने मेरा मूल्यांकन।
 तत्त्वविदा ने मत्प धाम घतलाया
 जरा रोग भय पाप ताप का प्रागण।
 धमज्ञो न त्याग विराग सिलाकर
 कहा व्यथ जग, मिथ्या माया बंधन,
 मुपितमाग विज्ञापित कर यतियो ने
 चाहे जन धरणी बन जाये निजन।
 स्वग नरक, जड चेतन द्वन्द्वो मे रत
 ज्ञान दग्ध पा सके न मेरा परिचय,
 तकवाद मे लोये समझ न पाये
 बुध समग्रता मे मेरा महदाशय।

इस प्रकार लोकायतन के कवि न पृथ्वी की अतवेदना को एक ज्वलत और जीवत हृदय की मधाय पीडा व रूप म उभारकर रखा है और पृथ्वी की इस आत्म अभियोजना द्वारा उसने अपन दशन का पूर्वाभास हम दिया है। जिन आलाचको का आज भी यह मत है कि कवि पत बबल रहस्यवादी स्तरा की वाष्पीय ऊँचाइयो म उडान भरत है और पृथ्वी व ठोस और यथाय जीवन स उनका कोई घनिष्ठ तगाव नहीं है उह उक्त पत्तिया पर ध्यान देना चाहिये।

पत जा न ता जड तत्त्ववाणी बौद्धिका के जीवन मन्धी थाय विदलेपण व कायल हैं और न तात्त्विकों के इस मतवाद के कि पृथ्वी का जीवन केवल रोग गोक दुःख-य और पाप-ताप म आत्राण रहता है। जीवन के गहन स्तरों के विदलेपण और भवसागर व प्रचंड मयन व सस्वरूप वह इस निष्कष पर पहुँच हैं कि पृथ्वी व धूल भरे जीवन की सृजता न ही उगवा गम्य श्यामत्र आचल सुरोभित है। और इस रहस्यमय आचन की छाया व नीचे युग युग का मगल मय जावन धडक रहा है। ऋत के चिदानन्दमय प्रकाश स प्ररित हाकर यह धरती जन जीवन म अपनी पूणता विखरती जाती है। वह कहती है

मैं हूँ जीवन-क्षेत्र, यही मैं मन से,
 क्षण परिमित म हूँ मैं नित्य अपरिमित,

श्रुत प्रकाश मे मुझको जन-जीवन मे
सृजन-सुषुणता करती अपनी निर्मित ।

युग युग मे यह धरती विकास और हानि के चक्र-नमि चक्र मे जीवन के नये
नये रूप का धारणी बाल सजानी हुई अनन्त मृष्टि-भाजना का अभिनयन करती
रहा है

युग मन का प्रतिपक्ष कर मेरा जीवन
बढ़ता उठ-गिर चल सिद्ध निजपथ पर
नया जन्म ले मेरा अन्तर्पी धन,
क्षणिक नित्य के रूप पुलिन देता भर ।

सीता इस अनन्त जीवन-मध्यना धरती माता के अन्तर मे निहित चिन्मणि
है जो अपनी अमर शिखा से पृथ्वी के जीवन का जगर-भगर करता रहती है।
सीता जिम उपचेतना का प्रतीक है वह नित-नयी भावज्योति से युग युग मे
मानव मन का उन्मत्त करती रहती है।

धरती के अन्तर मे और मानव मन के अन्त मे निहित भूत शक्ति है
निदधेना जिमने भीतर मृष्टि के अनन्त रहस्य स्थापित कर लिए हैं। यह
निदधेना चित पायक का लपटा मे धधकती हुई नित-नये रूप मे विकसित
होती हुई उपचेतना मे घुन मिल जाती है और फिर वहाँ से निरन्तर ऊपर
उठती हुई उच्चचेतना के शुभ्र प्रकाश मे परिणत होना जाती है। उमा उच्च
चेतना के निःसीम गतिमय मित आनाम मे

उतर रही नि स्वर सहस्र उपाय
क्षण का वातायन गायन मुख-दापित ।

× × ×

दूट रही भावी विद्युत्-पवन-सौ,
फूट रहे भित्तियों से स्वर्गिक निम्न ।

इमनिम आज के महाकवि के ऊपर यह दायित्व था पड़ा है कि वह जनमानस
युग के निम्नरतन से जावन के भीतर चित्-विस्थापन उत्पन्न करके चेतना की
अन्तर्गत मणि शिखाया द्वारा नयी आशा और नये हर के प्रतीक प्रकाश सृ-
ष्टि करे और एक प्रकार के नान की इस मध्य मे मानव-जीवन को विभक्त
और सजाना के महावाच्य मे विनीत होना मे बचाव । विद्युत् युगा की भूरा मे
बधकती नयी आशा नयी सगन और नये धन मे नये-जावन निम्नर की ओर
निम्नर बनने बढ़ाव । और इस प्रकार जह मुन्मत्त के भीतर छिपे हुए चिन्मय
शिव के भावी जन-न्याय के हित राज निवार । इमनिम जीवन की पत्थर

के नातर निहित भ्रम तस्का खो" निकालन और उस मूल महारम के उत्पादक— परमेश्वर-तत्त्व—का भी उसी पाहन के बंधन से मुक्त करने के उद्देश्य में मुनि वाल्मीकि, लक्ष्मण और उमिना धरा पर फिर अवतरित होने हैं, जिन्हें चैतन्य रूपिणी सीता और जन शक्ति के प्रतीक राम की प्रेरणा प्राप्त है। राम सीता में कहते हैं

स्वाग शुभ्र ऊमिता स्फटिक रस पात्रो
स्नेह-दुग्ध घट सौम्य सुमित्रानन्दन,
सूष्टि-मच्च की निरुपम नटी, प्रिय तुम,
रचो भूमिका मानवता को नूतन ।

और इस भूमिका के गायक है वही आदिकवि वाल्मीकि जो नये नये युगों में नये-नये कवियों की आ-माआ में उतरकर नित नयी प्रेरणाएँ प्राप्त और प्रदान करते चले आ रहे हैं ।

यह है 'लाभायतन की भूमिका जिस पर तनिक विस्तार से इसलिये लिखना पडा है कि इसी मूल ढांचे के भीतर इस महाकाव्य की सारी परिवर्तना और सारा रचन समाया हुआ है ।

वर्तमान युग विश्व-घापी उदय पुषल का युग है । दूसरे महायुद्ध के बाद सारे ससार में ऐसी उलझी हुई समस्याएँ और चक्रवाचपूर्ण परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयी हैं कि उनका समुचित समाधान या सही व्यवस्था के लिये कोई रास्ता ही अन्तर राष्ट्रीय नेताओं को नहीं सूझ पा रहा है । द्वितीय महायुद्ध ने मनुष्य को एक ओर एक लम्बी परम्परा में काटकर अलग गव किया है और दूसरी ओर किसी नया व्यवस्था की स्थापना या किसी नया और स्वस्थ परम्परा के निर्माण के लिये कोई भीतर प्रेरणा या लगन मनुष्य अपने भीतर नहीं पा रहा है । फलस्वरूप आज केवल राजनीतिक या आर्थिक क्षय ही हम अन्यवस्था अशांति और असंतोष नहीं पाते बौद्धिक और सांस्कृतिक क्षय में भी एक विचित्र विशूलता, लक्ष्यहीनता आत्म विद्रोह जीवन और प्रवृत्ति के नियमों के अस्तित्व या उपयोगिता के प्रति सगव विराट् सृष्टि की किसी निषामिका शक्ति के प्रति झूठगत अविश्वास और अज्ञानता का गोलगन्ना सञ्चल कियायी देता है ।

मनुष्य आज लाभायतन में चली आ रही प्रतिक विकास सम्प्रधी अपनी प्रगति के इतिहास के प्रति बवल उन्मागीत हो नहीं अविश्वासी भी हो चला है । विकास के युग के बाद हा बीच-बीच में ह्यम के जो युग ससार के इतिहास में घटते रहते हैं आज वह बवल उन्ही पर ध्यात दे रहा है । मानवीय मूल्या के विवस्थाओं विघटन के जो लक्षण आज बड़ा स्पष्टता में मनुष्य सामने प्रकट हो

रहे हैं, उन्हीं को स्थायीमत्य मानता हुआ आज का बुद्धिवादी मानव मनुष्य जाति की अन्तिम अस्पर्शता और अनतिदूर भविष्य में धरातल में उमक चिर विनयन के सिद्धांत पर विश्वास करने लगा है। जड़ विज्ञान की दृष्टि प्रगति में इतराया हुआ आज का यात्रिक मानव स्वयंसे बध्या राजनीति के हाथ अपनी आत्मा का बच चुका है। अपने क्षणवानी जीवन की प्रतिनिधि की तुच्छता में निप्त हाता हुआ अपनी अहमयता और विकृत आत्म विद्रोह के फलस्वरूप प्रकृति और ईश्वर से बटकर, सामूहिक जीवन में छिन्न होकर, अपने अंतर के बंधन कोट में मुह छिपाय, प्रकृति की मूल प्राणशक्तिया के प्रति स्वान की तरह भूक रहा है।

एक मनुष्य पर, एक युग पर किसी आत्मा की बाणी का कोई प्रभाव पड़ सकता है यह विश्वास करना कठिन है। ऐसा युग ईश्वर के नाम से ही इस बदर विवृता है जसे वह कोई मतक लाक की प्रेतात्मा हो। अतः चिदाकाश में मुक्त आनन्दमय उडान भरने वाली चेतना की चचा मात्र को वह पागना का प्रलाप मानता है। जीवन विकास के मार्गिक नक्षत्र पर में उसका विश्वास हट गया है, प्रकृति की कल्याणकारी योजनाओं का वह परा-तले रौंकर ठुकरा देना चाहता है। एक विराधी आत्म विद्रोही और पूवग्रही वातावरण में कर्द कवि—चाह वह आन्विकि ही क्या न हो—क्या सत्ता सुनाय और विसा ?

पर जय चारा द्वार बत्पात की सध्या का धुधलका छाया हो, हास और विनाश की व्यापक योजनाओं के ऊपर प्रलय मेघों में घिरी कराल काल रात्रि सध्या से सधनतर हानी हुई घिरती चर्चों आ रहा है। तब किसी महाकवि की बाणी अपने भातर की घुटन में बँधी भी नहीं रह सकती। वह गत मह्य धाराओं में फूटकर हा रहगी, फिर चाह कोई उसका समुचित उपयोग करना चाहे या नहीं। लोकायतन सामूहिक जीवन का ऐसी ही परिस्थितिया में लिखी गया महाकृति है जो कवि की उपचेतना के चारा द्वार घिरी हुई दीवारा का तार पारकर, तारक, बाहर के मुक्त और विस्तृत प्राणन में अमक्ष्य धाराओं में प्रवाहित हार उदात्त भावा प्रतीवात्मक चिन्ता और गहन विचारा के रंग विरग पूरा का महज भाष में गिनाती चर्चों जाती है।

लोकायतन में कथा-नक्षत्र बहुत ही सरल और साधारण होत हुए भी मूर्ख है। एक मगूत तनु मर्म काव्य-कथा का पटन सुना गया है जो मबडी के जान के तनु में ना अधिक् सुकुमार है। यह महज कथा-नक्षत्र एक द्वार जहाँ कथा के अर्थ-गुदर काव्य-अस्तिमामय रूप नाम्बर और दृश्य-नागीतमय चित्र प्रस्तुत करता है वही दूगरी द्वार गतनात सुग म जन मानग में उरता रत्न

वाली ह्यास मूलक प्रवृत्तिया के पारस्परिक टकराव द्वारा उत्पन्न उन्नतिशील प्रवृत्तिया की अस्पष्ट अकुनाहट को भी स्पष्ट करता है ।

कथानक संक्षेप में इस प्रकार है—सुन्दरपुर नामक जनपद रोग शोक, दुःख दैन्य और अज्ञान में धिरा था । जनता का यह दारिद्र्य युवा कवि वशी के हृदय में शून की तरह ज्वाला करता है । अपने ममत्वयसी साथी हरि को पकड़कर वह निश्चय करता है कि दस तीन हीन स्थिति में सुन्दरपुर का हर हासत में उबारना होगा । पर जब तक दश अज्ञानता की बडिया से जकड़ा हा तब तक कवि का एक ही नक्ष्य हा सकता था—दश को गुनामी की जजीरो से मुक्त करना । गाधीजी की प्रेरणा से सारा देश जग उठा था और वशी हरि और हरि की बहन सिरी के प्रयत्न में वह जड़ता ग्रस्त जनपद भी सजग हो उठता है । गाधीजी की दण्डी यात्रा के फलस्वरूप सारा दश हिन उठा था और स्वतंत्रता आन्दोलन में पूरा जार पकट लिया था । वशी के नेतृत्व में सुन्दरपुर में भी जागृति के चिह्न दिखायी देने लगते हैं । स्त्रिया और पुष्पा में नया उत्साह और नयी चेतना जग उठनी है । मिरी (या श्री) की लगन के पत्रम्बरूप स्त्रियों के लिये एक कला गिविर की स्थापना की जाता है जहाँ उच्च सब प्रकार की उपयोगी शिक्षा दी जाती है । एक गृह उद्योग गिविर भी ग्गोल लिया जाता है जिसमें चर्खा कातन तकलिया चलान और कपड़े बुनने के कामों में ग्रामवासी व्यस्त रहने लगते हैं । लोभ गालिया में रचे गये वशी के गीत प्रत्येक घेत और खलिहान में गाय जाने लगते हैं । साथ ही स्वतंत्रता संग्राम की गति भी तीव्र में तीव्रतर होती चनी जानी है । वशी और हरि को कारावास भुगतना पडता है जहाँ उच्च दश की मुक्ति के लिये नयी-नयी प्रेरणाएं मिलनी हैं । स्वतंत्रता आन्दोलन दिन पर दिन जोर पकड़ता चला जाता है । जस स्वराज्य लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये देवामुर संग्राम छिड़ गया हो और भारत भू मांगर का मदन हा रहा हा ।

इस प्रकार राष्ट्र का मुक्ति यज्ञ समाप्त हुआ । पर वशी को लगा कि जिस महान उद्देश्य की परिकल्पना में वह प्रेरित है उसमें—

राष्ट्र-मुक्ति के केवल प्रथम चरण भर,
विश्व एकता करनी भू पर निर्मित,
मनुज प्रीति के अमर सूत्र में गुपित
स्वयं पीठ करनी भू-मन पर स्थापित ।
धन्यपात अघटित न अन्ध्र गगन से,
जीवित रावण-वत् अचेतन मन में,

मानव बनना दूर, दीघ, दुष्कर पय,
अस्त सूय ! लोहित तम भू प्रागण मे ।

मानवीय अवचेतना में बने हुए रावण और वसु को जब तक जड़ में मिटा नहीं लिया जाता तब तक न तो राष्ट्र की स्वतंत्रता का लक्ष्य पूरा हो सकता है और न मानव के सामूहिक कल्याण का । इसलिये यथाथ मानव बनन के दुःसम और नाश पय पर विजय प्राप्त करनी ही होगी । पर, स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद भी हरि दम्बता है कि राष्ट्र की मानसिकता अभी तक बदल नहीं पायी है । अभी तक इस दग की जनता केवल परोपजीवी और पराध्र भाजी ही नहीं बनी हुई है बरन चिंतन की दृष्टि से भी वह पर-मानस जीवी बनी हुई है

बजर भीतर मन की भू,
हम पर मानसजीवी जन,
चित् खाद्य न उपजा सकते—
वय से पराध्र सेवी मन ।

वगी हरि की गिजायत भरी वानें सुनता है और समझता है कि बवल इसी दग की जनता ही नहीं बरन् समग्र मानवता इस युग में अवचेतना के अधम अधकार में गयी हुई अंधी गलिया में भटक रही है । वह कहता है

अवचेतन कुठामो से
मदित प्रच्छन्न मनुज-मन,
दो दारण विचरणों से
कंप क्षुब्ध ध्वस्त भू प्रागण !

सुन्दरपुर का कला गिविर धीर धीर विन्तार पाता हुआ एक सासृतिव पीठ में परिणत हो जाता है । वगी हरि, गिरी और उनका सहयोगी एक आदम और प्रजावात्मक बद्र की स्थापना करके उमक गवतामुखा विवाम के कामों में जुट जाते हैं । "स पृथ्वी पर ग रोम गाव" दुःसम दक्षिणा का जड़ में विनाश करके धरती की मिट्टी को ही स्वयं की विभूति में परिणत करना सुगम्वृत मानव का पहला कर्तव्य है—यत् यान वगी न समभी और दूगरा का गमभायो । भू का दरिद्र करके जिन ऋषिया न जन मन में प्रभु पर धाम्या जगानी चाही थी उनकी उम गामती धाम्या का तकर मनुष्य क्या कर यही वह सारा करता ।

बेद्र का तीव्र गुणगन्धि मुख्यवर्णित और गुनियोजित था । बद्रवासिया न स्वयं अधन हा धम ग मिट्टी में मोना उपजा लिया था । धाम-धाम के गाँवों के भौतिक जीवन को समृद्ध बनाने उस भौतिक बनव के भीतर एक स्वस्य धाम्या म्भिक धगा की सहर वगा न तरगिन कर ती था ।

निश्चेतन में लेकर अतिचेतन तक एक ही मूल चेतना के तार झूठ होते रहते हैं—केवल सितार के पर्दों की स्थितियाँ ही अंतर हैं। पर वे सभी पर्दे और उन सबकी अनग अनग स्थितियाँ एक दूसरे में अनिवाय रूप से बंधी हुई हैं। उन सभी का समन्वित और सुनियोजित रूप ही अभूत और अनाहत विश्व राग बन जाता रहता है—यह महान् मातृलिंग विश्वास के द्वारा सिया के अंतर में, और जीवन में भी, दूर से उत्तर होता जाता है।

भू जीवन और आध्यात्मिक जीवन एक दूसरे के विरोधी नहीं बल्कि पूरक हैं। शरीर के बिना आत्मा का न कोई आधार है न अस्तित्व और आत्म चेतना और आध्यात्मिक अनुभूति के बिना शरीर जड़ और निष्प्राण है। यदि भू जीवन अविकसित अथवा रुद्धिया में अस्त रोग ग्राह, दुःख दुःख में पीड़ित और पारस्परिक घृणा कलह और विनाश में रत हो तो आध्यात्मिक चेतना के विकास का कोई शक्य फिर नहीं रह जाता। और यदि भू जीवन समृद्ध होने पर भी उच्च-स्तरीय जीवनानुभूति और ऊँच गामी चेतना के स्पर्श से रहित हो तो वह भी निरर्थक सिद्ध होता है। इन दोनों का सामंजस्यपूर्ण और सुनियोजित समन्वय ही बशी का अभीष्ट है, और स्वभावतः लोकायतन के कवि को भी।

मुद्गरपुर के आदेश केन्द्र की व्याप्ति मुनकर शब्द के विभिन्न भागा और विदग्धा से भी उत्सुक नर नारी वहाँ आते हैं। उनके द्वारा बशी का सपक सतार के विभिन्न दग्धा के सांस्कृतिक प्रतिनिधियाँ से हो जाता है और एक दिन उसे विदग्धा भ्रमण का निमंत्रण भी मिलता है।

इस यात्रा में जब कवि विमान पर बैठकर विस्तृत भू परिभ्रमा के लिय निकल पड़ता है तब विराट का अनंत नील विस्तार देखकर वह परम ध्यानदमय रहस्य स्वप्ना में मग्न जाता है। उसका अंतर पुलकित हाँकर विराट का अत्यंत सुंदर परिवर्तन करता हुआ घोर उठता है

कीन यह निराकार नि सोम
निरामय पुरुष व्याप्त सखत्र ?
तारकों के मणि कण से दाप्त
नील का सिर पर जगमग छत्र ।
समीरण जीवित स्वासोच्छ्वास,
भूय शनि जायत अनिमिय नेत्र,
क्षितिज तट प्रेम-याहु परिवभ
धरा पद-पीठ, कम-गति क्षेत्र ।

ध्योम क्या नाद यहानिर्वाक ?
सजन-सम मे अजल तल्लीन ?
तरते जिसमे बहू चिद बिदु
महत आनन्द सिधु के मौन !

इसी प्रकार क उदात्त चित्र एव क वाद एव कवि बगी की आखा क आग
रग । बरगा छटाआ म उभरत बल जान है ।

इसक बाद बगी एक एक करके प्राय सभी प्रमुख दगा म भ्रमण करता है ।
प्रत्येक दगा क प्राकृति व भव शक्ति व उन्नति और जन-जीवन की सुख-समृद्धि का
सुन्दर चित्रमय वणन 'लोकायतन' म विस्तार म किया गया है ।

सब-कुछ दग्ध-मुनन क बाद अत म कवि इस निष्पत्ति पर पहुँचता है कि
पश्चिम के जीवन की श्री गाभा और सौष्टव बवन बाह्य जीवन तक सीमित हैं
अंतर का उद्भासन बहा नहीं मिलता और इधर भारत आन्तरिक कुटाआ स
ग्रस्त रहन क कारण अपन भौतिक जीवन का समृद्ध नहीं कर पाता

ह्लास-तम का भारत म रूप
पलायन पाप-पुण्य की नीति,
पारलौकिकता, कम विरक्ति
अथ विन्यास, हृद्धि जड रीति !
सन्ध पश्चिम म स्थापित स्वाय,
अनास्था, रण भय, बट्ट सदेह,
शक्ति का मोह, राष्ट्र का दप,
बहिमुख, नीतिष जाड्य सदह !

कवि यही सोचता रह जाता है कि अंतर और बाहर की दाना प्रवृत्तिया का
स्वस्थ और सतुलित विकास हाकर दोनों विम प्रकार एक-दूसरे क सहायन और
पूरक बन सकेंगे । जब वह अपनी लबी यात्रा क बाट बट्ट म लोटता है तब इसी
उद्देश्य म प्रेरित हाकर नयी लगन म काम करना आरंभ कर देता है ।

बट्ट का मुग्ध स्वस्थ मुग्ध और मुग्धवस्थित जावन दखकर निवृत्तस्य
व्यवस्था का एक शक्तिशाली दन श्रृंखला हा उठता है और जो दल क कुछ
व्यक्ति बट्ट म घूमकर बगी की हत्या करने का प्रयत्न करत हैं । पर वह बच
जाता है और हरिजन बचान क प्रयत्न म स्वय अपनी जान गँवा बैठता है । आथम
म भयकर शक्ति छा जाता है । कुछ समय बाद मिरी भी बच बसती है । बगी
अकसा पड जाता है पर नयी पीढ़ी म नया जलाह दखकर वह नया शक्ति
बनारता है और बट्ट का दिन-नय पात्र म उन्वाधित करता है । पृथ्वी पर की

स्वर्ग उतारन के स्वप्न का वह सत्य में परिणत करन के प्रयास में निरंतर आगे बढ़ता रहता है। पर स्वप्न स्वप्न ही है और यथाथ यथाथ—और वही निमग्न यथाथ एक दिन अणु युद्ध के रूप में धरा पर तवाही मचा देता है।

कवि (अयान बगी) की अंतरात्मा को इस महाविनाश का पूर्वाभास मिल जाता है। वह उस दुघटना से पहले ही सहसा केन्द्र से (अयान जीवन से) अतर्धान हो जाता है। उमनी प्रिय शिष्या मेरी जा एक विदेशी महिला है, उसकी निमूढ़ ज्ञान भरी अतदृष्टि से प्रभावित होकर केन्द्र के प्रति अपन का अपित कर देती है। अणु विस्फोट से जब सुंदरपुर का मस्कृति-केन्द्र नष्ट भ्रष्ट हो जाता है और आशिक अणु युद्ध से जब विश्व का एक बड़ा भाग ध्वस्त हो जाता है तब मेरी हिमगिरि के अक्षय लोकायतन नाम से एक नया केन्द्र बसाती है और उस मोहक, रमणीय और शुभ्र प्राकृतिक वातावरण में नये मानव की स्थापना करती है। आशिक अणु युद्ध से सतप्त देश विदेश के अनक स्त्री पुरुष भी वहाँ आकर अपार नीन शांति और सित चिदाभास के अनुभव से एक नयी जावन स्फूर्ति पाते हैं।

पुरानी रूढ़ियाँ से पूणत मुक्त और निश्चेतन से लेकर अतिचेतन तक के विकास क्रम में पूरी रसमयता से बँधा हुआ नया मानव धरा पर अवतरित होता है

ले चुका जन्म था नव मानव
आते अधुत लोरी के स्वर,
पलने में उसकी विश्व प्रकृति
थी झुला रही गा गा नि स्वर !
“कितने सवत्सर बीत चुके
में रही प्रतीक्षा में अपलक,
जड अथ शक्तिमा से भू की
कद सघषण रत रह अब तक !
तुम उदय हुए रस सूप दिव्य
कर धरायोनि का तम दीपित,
आप्यात्मिक प्रथम प्रभात शुभ्र
भू पर लाये, जन-मन विस्मित !
दिक-काल हुए गति चरण प्रणत,
बंदी स्मित पलकों में गान्धत,
करतल पुट में गोभित अनत,
जीवन समग्रता में परिणत !

युगा के बलमप स पवित्र भू-मा नय स्वर्गिक प्रकाश म धुन जाता ह आर धरा पर स्वयं का अन्तरोहण हान लगता है। मानव की मकीप मानसिक गुलियया खुन जाती हैं, अतर की सारी रममयता का माख-सागवर बालू बना दनवाती राजनीति व कुटिल चक्रा का पीछे हटाकर अत्र ममुत्रत ससृष्टि का रय आग बढने लगता है। नया मानव भौतिक और यात्रिक जावन की आतिया म मुक्त होकर उम एक नया मागलिक रूप दन उगता है। अत्र वयक्तिक और नामूहिक आ-यात्मिक और भौतिक, उच्च और निम्न—विमी ना प्रकार व जीवन मे काई अ तर नहा रह जाता और भू मा न विध्य चेतना म भितकर पृथ्वी व महन जीवन म एक नय मयाजन की मृष्टि करता है

वयक्तिक सामूहिक गतियां
स्वायँ से विषम न अय खडित,
आध्यात्मिक भौतिक, ऊप्य अथ
जन नू जीवन मे सयोजित।

यह है म उप म 'सोचापतन व यथायदात्ता रम म धुल हुए यथायँत्तर ह्रिडन का मुदर, मगतमय और मुमयानित स्वरूप।

यह महाम्बल्य धान के जीवन व कटु यथाय, विवृत मानसिकता और कठोर यात्रिकता व बीच पले हुए कठपुतल नधु मानव का एक विभूत विभाकार और विचित्र फेंटेडा की तरह लग सता है। पर यह अद्भुत और अप्रुन-वल्पित 'फेंटेजी' ही मुग व निरयक थी- आमघाना जावन का सुदूर भविष्य म चरिताय हान वाली महामागनिरता का मभावना और मायकता प्रगान करती है भून और भविष्य म कती हुई मानव-बुद्धि का एक प्रान नया दिशा-वाय दनर उमकी दिपरी हुई मानसिकता का ममप्रता व एक नय मगल-भूत्र म यौवन की प्रेरणा दती है।

'सोचापतन' के कवि का जीवन-गान कपना की उदारता म विगात और भावा का गहराई म घनरघ्यायी है। उमका इन विराट दानिक यात्रना म सभी युगा का चिन्तन ममाहित है। परस्पर विराधी गान बाने सभी दानिक, मासृष्टिक और दानिक मतवा उमम धुन भितकर रहस्यमयी रामायनिक प्रक्रिया के पत्रम्बल्य एक मुममदिन मुत्र और अति-यथाय महादान का निगरा हुषा रूप प्रगुन करत है।

मातयाय अयधतना और उदघेता म घानगन नाकीय हान की स्थिति म नकर ऊ-यो-मुगा घेतना व विगात और चरम चिन्तितान की स्थिति एक घनठ मभावनाए निहित है। य सय सभावनाए प्रकट म परस्पर

विरामी और एक-दूसरे में निवरी हुई-सी लगान पर भी वास्तव में एक-दूसरे से घनिष्ठतम रूप में मजबूत हैं। नरक के निम्नतम बिंदु में लेकर म्या के ऊपरतम बिंदु तक कदा छार विश्व-बीच क समान लारा न बँपे हुए हैं इन तथ्य का भार मैं पहले ही ध्यान दिना चुका हू। निम्नतम बिंदु में मजबूत किप ज्येठार का कान ऊपरतम बिंदु का सहज ही भनभना दता है और ऊपरतम परे न निकली हुई नकार निम्नतम परे म कपन पदा कर दती है। दोना क बीच का माध्यम है नू-जीवन जा महमू के ऊँचे दप से इतरापा हुआ दाना छारो म नकत हाव रहन बाल स्वरा का समुचित सपादन कर सकन म अस्तनय हाने के का उपनम म पड जाता है। कुटिल बुद्धि और अविचलित भावना क पारस्परिक उकराव और विचाराव क कारण पुन-पुन म आवतन और विवतन क चक्रदान म फँना हुआ वह भय और साप पीडन और कुज के भूने म भूनता रहता है। महाजीवन क दाना छारा से उठन वाली जड से चेतन का मिगन वाली नकारा क मचरण का माध्यम यद्यपि वही (अपान नू-जीवन ही) है और बीच-बीच म यद्यपि दाना प्रकार की नकारा से निकलन बाल रहन-सकत उन कुछ क्षण क विप विचलित भी करन रहन हैं तथापि कुन मिलाकर वह पुन से उन सांघातिक मकेतों की उपगा ही करता प्रापा है। साक्षात्पन म उन्ही उपमित त्रितुम्बाधिक महत्व-पूण सकता की विगद का न्यात्मक अभिव्यजना हम पात हैं—और साप ही यह मुहूर्त भी कि उनकी मुमनन्वित मानना हा नू-जीवन का एक नयी अयवत्ता प्रदान कर सकनी है।

मैं प्रारम्भ म हो कह चुका हू कि पन जी की यह अभिनव महा-वाच्यवृत्ति दान-दान क पुनिना का हुवाकर मात्र न प्ररर त्रितु वध्या बौद्धिक चेतना से प्रन्य मानव का समग्र कान-सदा म निमुक्त तरन बाला एक नया और स्वस्थ जीवन-बाप और एक नया दृष्टि दती है। विराट पट पर अचित इस परिप्रेष्य से धान क अत्यन्त सका मुन-बाध का एक नया विस्तार मिलता है।

साक्षात्पन का कॅनवास' रतना विस्तृत हान क कारण यह स्वभाविक है कि उनकी व्याक याजना म मत्र-तत्र छाटी-भोटी श्रुतिदा रह जायें। उनकी कथा-याजना पूत सुबद्ध नहीं हा पायी है। बीच-बीच म उसम दीनापन दितायी दता है। छग का मुक्त प्रवाह यद्यपि काध्य क भाव प्रवाह म मत गता है तथापि बीच-बीच म उत्र प्रवाह म अनि नग दिताया दता है। छग की याजना म यद्यपि बविध्य की काई कमा नहीं है तथापि व मत्र प्राय एक ही सचि म टत हुए-म सत है और बीच-बीच म पाक का एकरसता का-भा बाध हान सग्य है। एक हा डग की बात का नय-नय रगा म टुराप जान क उगाहरा का भी

इस महाकाव्य में कमी नहीं है।

पर इन सब बातों का मैं प्रफ-सबधी छाटी-भाटी थूटियाँ मानता हूँ और ये तथाकथित थूटियाँ वास्तव में थूटियाँ हैं भी या नहीं यह विवादास्पद है। उदाहरण के लिये कथानक व ढीलपन का ही लोजिम। क्या यह अनिवाय रूप से आवश्यक है कि महाकाव्य कथानक प्रधान होना ही चाहिये? आज जब साहित्य में सभी अंगों का रूप बदल रहे हैं तब नये महाकाव्य में नये महानियम लागू क्यों नहीं हो सकते? रसत्रिय इस सबध में हम दृष्टि में नी साचा जा सकता है कि पत जी ने महाकाव्य का एक नया पाम एन नया रूप दिया, दिया है। यदि पाठक इस महा-काव्यकृति के विंगान धरातल उमम वर्णित भावा की ऊँची उडान उसमें अकित चित्रा की मोहक रगमयना मवदगीं नान की अगाध गहनता और उद्दाम की महान् भागतिवता पर अपना ध्यान कद्रिन कर ता प्रूफ-सबधी साधारण थूटियाँ उम अत्यंत नगण्य लगेंगी। हिमालय की विराटता व प्राय क लिय गुध्र हिमानी में भडित उमकी चाटिया की भार ही ध्यान कद्रिन करना होता है न कि उमकी बनाबट का असमना और तनहुटिया व रछेपन की भार। विराट व परिप्रेक्ष्य में छाती-भाटी विषमताएँ भी असीम समता का ध ग बन जाती हैं।

इस प्रकार प्राय क गिपर से बालन बाल कवि पत की जीवन-ध्यापी चिंतन साधना साकायतन के माध्यम से एक अत्यंत मूल्यवान् सिद्धि के रूप में हमारे सामने आती है।

अतः मैं उस उदात्त बाणी की भार आप लागा का ध्यान आवर्षित करना चाहता हूँ जो नगाधिराज हिमालय ने 'साकायतन की मधातिका मरा उफ सपुका का मुनापी थी। हिमालय के रूप में जन्म महाकवि ही साधना कर रहा है।

मैं सापि विश्व मानस समस्त,
प्राची-वर्षिम को अतिश्रम कर,
इतिहास, धर्म, सत्कृतियों के
गिपर पर नव युग के पग धर—

रे रहा तुम्हें जीवन-रंगन—
यह महान् कल्प-परिवर्तन क्षण,
निर्माण करो ब्रूतन नविष्य
भू-जीवन हो भगवन्-रक्षण।



गोपिका : अपार्थिव मधुर भाव का काव्य

'गोपिका' स्व० सियारामशरण गुप्त जी की मृत्यु के उपरांत प्रकाशित कृति है जिसे उन्होंने अपने स्वगवास से कुछ ही दिनों पहले पूरा किया था। इसे देव कृपा ही समझना चाहिए नहीं तो शायद 'गोपिका' भी प्रसाद की डरावती और प्रेमचंद के 'मंगलसूत्र' की तरह अधूरी ही रह जाती। 'गोपिका' का आरम्भ लगभग बारह वर्ष पहले किया गया था। अथवा 'उपक्रम' में उसकी रचना प्रक्रिया का निर्देश कवि ने इस प्रकार किया है— योज रूप में आकर 'गोपिका' धीरे धीरे अकुरित हुई और दीर्घकाल तक पल्लवित होती रही। वास्तव में इसका निर्माण नहीं स्वतः प्रसूटन हुआ है। उसके पूरे ज्ञान परमन में यथष्ट सत्ताप है। पर परीक्षार्थी का कुछ आतंक भी मन में है, अच्छा ही है। परीक्षार्थी का यह भाव तभी फूटता है जब नम्रता के साथ यह विश्वास भी हा कि मेरी अजन-शमता यही समाप्त नहीं हो गई और अभी और भी आगे का क्षेत्र मेरे सामने है। 'उपक्रम' का यह वाक्य इस बात का साक्ष्य है कि 'गोपिका' उनकी साहित्यिक-योजना की अंतिम कृति नहीं थी। अस्वस्थता और रुग्णता के अधकार को पार कर उनकी आत्मा प्रकाश की खाज में निरंतर आगे बढ़ रही थी। शारीरिक अक्षमताओं से उन्होंने अन्त समय तक हार नहीं मानी। अनेक आलाचक उनकी रचनाओं का मूल्यांकन करते समय यह निष्कर्ष दते रहे हैं कि 'मधिलीनारण जी की 'बट छाया' से उनका 'यक्षित्व' कृण्टित हो गया और उनके साहित्य का उचित मूल्यांकन नहीं हो सका परंतु स्वयं उन्होंने अनेक बार इस 'बट छाया' को बरदान कहकर स्वीकार किया है। 'गोपिका' में 'उपक्रम' में भी इसी को भावति की गई है— आपका आशीर्वाद न होना तो सारी प्रक्रिया सम्भव न होती। भानुद की बात है कि आशुषण मुदला वृत्ताया का यह अर्थ समाप्त हुआ है जो आप की ज मतिथि है।'

कृष्णभक्त कवियों का शृंगार-काव्य आध्यात्मिक है ?

गापिका एक उद्देश्य प्रधान काव्य है अपाधिक, मधुर भाव जिसका प्रतिपाद्य विषय है। अपाधिक आत्मन के प्रति पादिक भावनाओं का उन्नयन की जा अभि-
 यक्ति मध्यकालीन कृष्ण भक्ति काव्य मनुष्य उम अलौकिक या उज्ज्वल अनुभूति
 का रूप में प्रकट करना आज का बुद्धिवादी के लिए तनिक कठिन पड़ता है। कृष्ण
 भक्ति का अन्तर्गत वर्णित शृंगार काव्य का अन्वयण मसख यह समस्या मर सामने
 रही है क्याकि उसका रसास्वादन म लौकिक अनुभूतिया का आधार पर हा कर
 सता है। मूर द्वारा वर्णित सयोग शृंगार की लौकिकता का आध्यात्मिक प्रतीक
 का स्पष्ट करन के लिए जत्र जब रसमयी व्याख्याओं का बीच श्रद्धा और जीव
 आत्मा और परमात्मा का गान का प्रवास किया गया है तभी वशा का सभी छात्र
 छात्राओं का आशा पर उनका अविश्वास और उपहास की द्योतक मुसकान फन गई
 है। गण्डिता प्रसंग मिलन नीना आल-ममय तथा इससे भी अधिक अनुल्लसनीय
 अलौकिक प्रसंगों की स्थूलता में मधुर रस और पादिक आत्मन की अलौकिकता
 लुप्त होकर रह जाती है। मादलता चंचलता, प्रम गती अथवा चन्द्रसगा
 बनकर कृष्ण का प्रियतम, जठ या दवर मानकर उनकी उपासना का आध्यात्मिकता
 में विश्वास यही मुश्किल का भी नहीं जाना गवान दशन' कुज नीला' और भी
 अथ जानाए आज के बुद्धिवादी का मध्यकालीन कृतिया और विलासप्रधान
 जीवन-दशन की अभिव्यक्ति मात्र जान पड़ती है। तत्सम्यर्था दार्शनिक सिद्धांता
 में मस्तिष्क को संस्कृत करके इस वाच्य का अनौकिक रस का ग्रहण करन का जितना
 ही अधिक प्रयत्न में किया है मर हृदय और मस्तिष्क का साईं उतनी ही बढ़ती
 गई है। अगल अलग इस दशन की ऊंचाई और गहराई दाना का प्रभाव पड़ता
 है तथा कविता भी शृंगार की दृष्टि से हृदय का अभिभूत कर नेती है लेकिन
 दशन और रस इस रूप में वही सम्पूजन नहीं हा पात कि मैं विश्वास कर लूँ कि
 यह शृंगार रस न हाकर मधुर रस है, उज्ज्वल रस है। पहली बार मरे मन पर
 कृष्ण भक्ति का राग और दशन का सम्पूजन प्रभाव तारा बाबू का बगला उपजाग
 'राधा' का कुछ स्थला द्वारा पहा और तभी पहली बार मरे 'दुष्ट सहृदय' न शृंगार
 और मधुर रस में अंतर की घाटी अनुभूति की। वही कुछ एगा मिला जा शृंगार
 की रमानुभूति में भिन्न अनौकिक मधुर और उन्नयन का। 'गापिका' में यह
 उन्नयनता यह माधुर्य आरम्भ में अत तक विद्यमान है। मध्यकालीन भक्त
 कविता में जिस मधुर भाव की उज्ज्वलता को स्थूल शृंगारिक शीलाओं का आव
 रण में संपन्न कर प्रकट कर दिया का सिधारामरण मुक्त न उसके अपादिक

भाष्य को अपनी विमल भावनाओं और कल्पनाओं द्वारा निखार लिया। इस दृष्टि से गापिका का स्थान हिन्दी साहित्य में अग्र्यतम है। द्वितीय युग में पौराणिक आख्यानो और पात्रों के आधुनिकीकरण द्वारा नए आदर्शों, नए जीवन दर्शन और नए व्यक्तियों की प्रतिष्ठा की गई थी। मध्यकालीन कृष्ण भक्ति की रीति कालीन अभिव्यक्ति की प्रतिक्रिया तो विरोध रूप से बढो रही। इसीलिए भागवत के कृष्ण की जाह महाभारत के कृष्ण की प्रतिष्ठा की गई और राधा-कृष्ण समष्टि चेतना की लहर में राष्ट्र-नायिका और लावनायक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। सिया रामचरण जी ने यह वाच्य आधुनिकीकरण के उद्देश्य से नहीं एक अत्यन्त प्राचीन भारतीय भाव-परम्परा की पुनः प्रतिष्ठा और परिष्करण की दृष्टि से लिखा है— जिसके मूल में है पूण समपण यह वा विगतन और वह सामजस्य दृष्टि जा समग्र विद्व क साथ अपनत्व स्थापित करके चलती है।

यह असाध्य प्रेम भक्ति की उस सीमा पर पहुँच गया है जहाँ कामनाएँ टूट और सधप की स्थिति से परे स्निग्ध सात्विक परन्तु तीव्र हो गई है। गापिका की मुख्य नारी पात्र (नायिका) नए उसके लिए मासल पढता है) इतु के व्यक्तित्व में असाध्य प्रेम के ये सभी आदर्श उतारे गए हैं। उसका प्रेम सावभौम और सावकानिक है वह व्यक्ति नहीं प्रतीक है—उस सनातन प्रेम साधना का जो मसीम का अमीम बना देती है जिससे गरार और समय की सीमाएँ टट जाती हैं।

इतु के रूप में गहरी वह सीमाबद्ध—क्या वह इमी शरीर की है—एक इमाक्षण की ? कस से न जाने जम जमान्तर एक साथ उसमें ये जाग उठ। कितन असह्यका में एकावार एक वह अमृत चुवा रहा है न जाने यह वणु वहाँ कब से।

राम प्रमथ में भी सबसे उल्लेखनीय तथ्य यह है कि सामान्य रूप से इस काल की अभिव्यक्ति सियारामचरण जी ने कृष्ण भक्ति में स्वीकृत और प्रदुक्त रागात्मक तत्त्वा और परम्परामा के आध्यम से ही की है परन्तु उनमें हाथा के परम्पराएँ और ये रागात्मक निगर कर परिष्कृत हो गए हैं। अपने अग्रज श्री ममिलीचरण जी की ही तरह परम्पराएँ उनमें मस्कार में हैं। मधुनीचरण जी ने पटत्रनु और बारहमास के चौगट के आधुनिक रूप से सजाकर तथा यथाथवाणी रूप से देकर उन स्वाभाविक मुद्रा और भावपक बना दिया था, सियारामचरण जी ने कृष्ण सीतामा और नायिका नदा के चौगटे के पुराने विलास-सस्पृष्ट रगा के मिटा कर उनके स्थान पर कामन सात्विक, विमल और दीप्त रंग चढा लिए हैं। जिन पाण्डे लावाभा मातन चोरी और कुज सीतामा का चित्रण कृष्णभक्त कवि नन से गोरस गान छुछाह इत्यादि के बिना कर ही नहीं सकते थे उसी

अभिव्यक्ति इस प्रकार की अनक उक्तिया द्वारा की गई है

यो कर विस भद्रुष की मरूक,
प्राणो की कोयल उठी बूक ।
यह स्वर गर दूरागत अचूक,
मेरे भिर भिर भर भर प्रभात ।

अनक स्थलो पर दार्शनिक स्पष्ट देकर भी लौकिक राग म अलौकिकता का समावेश किया गया है। कृष्ण की उक्ति है

“एक-दूसरे के अनुसारी हम, खोजते फिरे हैं एक दूसर को—गाव-गाव, घर घर और जन जन म । जय तव चित्र म प्रतीति हुई—पा लिया है पा लिया है—ता भी यह मिनन मुद्गुलभ है ब्रज के गोपाल का अनिन्द्य गोप-वाला म ।

‘सतत प्रमोत्सयि दासी नहीं, तू सुचिरसगिनी है और चिर सहचर सखा हूँ मैं।

‘गोपिका म निशाभिसारिका, दिवाभिसारिका, उत्कृष्टिता, वासकमञ्जा, सद्य स्नाता इत्यादि नायिकाप्रा क इतने निमन और स्वच्छ चित्र खींचे गए हैं कि काम का उद्गम पशु विल्वुन गौण पड गया है। भावनाप्रा की तीव्रता का काम की उद्विग्नता म इस प्रकार पृथक् कर सकन की सामर्थ्य बबल मियारामणरण जो म ही थी। इस प्रमम म कुछ उद्धरण दना अनुचित न हागा

निशाभिसारिका

‘पहर दुखल रहा कच मुच्छ हिलत है डुलत हैं। माना पग फूट हा, उडती भी जाती हूँ।

‘घनजाना स्थान कृष्ण पगडटी वह पीछे कही लौट गई सुभगा मरुनी मम मोठी घपकी स प्रियतय क निवतन म ठेन कर चुपचाप। इन्दु बढती ही गई जग कृष्ण पग क मघन निना मे रात्रिया मे घिर श्यामन तिकुजा म मुग्धागुवना।

सद्य स्नाता

उर तव उत्तमानित जल बीच सरसो म पन् रोप अलकें समेत कर ऊनी वह और उह पीठ पर उसन उछान लिया चुन एक इनीवर उपन बटार मात्रियो म वह ऊर की भार खनी मृत् मन् गति म ।

दिवाभिसारिका

प्रिय की दिवाभिसारिका हूँ। मैं जाती हूँ तुन म आज नि मकत। इन्दु बड़ी जा रहा है गोपन गिति क विजन मध्य मूप धुनी जापन दाहरी-नी,

विन्ही लग भाल पर स्वेद कणिकाएँ हैं। जब तब धूप के भनकने से उठने नवा बुरित होनी है त्वाकर की किरणों—तप से पसीज रही—पीठ पर फस कचुकी व बंध—उन पर गति नोल कच गुच्छ बेसरिया चूतर के भीतर भलकते। लक्ष्य का पता नहीं है—तो भी लगता है बंध सकत है उमका य दीप गिक् इसक नुकीले तत्र।'

गण्डिता का उदात्तीकरण

मध्यकालीन कृष्ण भक्त कवि इस प्रसंग में कृष्ण की पगड़ी में लग हुए जावक, मुख पर नग काजन और पीक तथा नल क्षत्रों के चिह्ना के बिना बात नहीं करते। उसी प्रसंग का सियारामचरण जी ने कितना पुण्य और पवित्र बना दिया है। दूसरी गाविका मजुला के यहाँ कृष्ण को जाता समझ कर इन्दु कहती है

'श्याम वस इयामिका ही पोत देना जानत। साचतो थी मर नुजपाग में हो सोचती थी क्या-क्या कुछ। छोटी खगी चन्द्र के लिए उड़ी गगन में। तो अब अगार चुग।

एक नाटकीय स्थिति के निमाण के द्वारा इन प्रसंग को स्वाभाविक और मधुर स्पष्ट किया गया है। इन्दु अपनी चिन्ता में तमय है कि लौट कर कृष्ण कहत है

'वल्लरी स्वरूप इस छाया में छिपी थी तुम। निवन गला न गया वचित बुद्धि दूर भूल तब जान पडा गीट यह छाया में। तू यह अरूप की भुजाभा में बधी थी यहा दय अर सामन सयुग का। अख मिचोनी में दख जीता मैं ही।

'जीनाग न क्या भला—पुरप ही जीत है तुम्हारी ही। बनी है हारन के लिए हम य'

'तुम उन नारिया में नहीं भीवती जा कर के हदन मात्र दयनी जा हीनता ही अपनी। मजुला के घर भी जाना है चलता हो माय'

मैं साथ चल ? पटक न दूगी मटकी मैं इसकी।

'पटक मकागा इन्दु' चाहता हूँ उन सका एसी ही। सोझापी तभी तो जाइन की शक्ति या सकोगी। तब न कहोगी सग जीत है पुरप का ही हारन को हम हैं।'

मर्यादित, व्यक्तिवनिष्ठ और व्यापक प्रेम भावना

गाविका में व्यक्त प्रेम भावना में स्वकीया-परकीया का ग्राम्या और नागरी बानाभा का भेद मिट गया है। रक्तिमणी और सत्यभामा गाविकाया का प्रेम भाव स्वयं प्राप्त कर लेने को उत्सुक हैं। गाविकाया के हृदय में कृष्ण की इन

परिणीताम्ना के प्रति श्रद्धा और प्रेम है उनकी कल्पना म कही द्वन्द्व और सघन नहीं है। मयभामा और रविमणी मुकुन्द को जन जन के लिए अर्पित करती हैं। रविमणी, लक्ष्मी और इन्दु को एक दूसरे का प्रतिरूप चित्रित करके कवि न भावनाम्ना के सावभौम ऐक्य की स्थापना की है। अनन्त स्यना पर उनके प्रेम में द्विवदीयुगीन नारी भावना के सर्वोदित प्रेम का स्पर्श भी मिलता है। मगाधरा की भांति ही इन्दु के मन में मान है कि कृष्ण उस बताकर क्या नहीं गए

‘मोद से कहा कह देना जा रहा है फिर कभी छाड़ेगा।’

‘चले गए, पहले कहा क्यों नहीं डर था क्या रोक कर बाँध लेती?’

मयवानीन गोपियों की भांति सालह शृंगार मजाकर प्रियतम का रिश्ताना ही उनकी ‘गोपिका’ का उद्देश्य नहीं है उसने प्रेम में आत्मविश्वास है। इन्दु अपनी सभी शक्ति स कहती है

हम हार रत्न मणि पहना ने मुझे—पुतली बनाना है बना दे। कहती हूँ इतना ही मापी हूँ मैं प्रिय की। भली भाँति जानती हूँ मेन के पिलौन उह रक्त तो भर लिए घुप में दौड़ कर के आते नहीं।’

दूसरी गोपिका मजुला के शब्द हैं—

जा शृंगार बना न किया था कुखक कुद और मूयिका के फूला में—हरि के अन्तर्गत वह परिम्पना हुआ। मैं भी कभी सज धज की लज्जा में।

विरह-गाधना के स्पर्शों के द्वारा इस प्रेम का रूप गम्भीर और गरिमापूर्ण हो गया है प्रेम की विवशता और गम्भीरता एक साथ इन पवित्रता में व्यक्त हुई है

‘श्विरा—यह क्या इन्दु? यह क्या? दूग क्या छल छल है? भूल मत अपना ही कहना—मैं उनमें नहीं हूँ जा राती हूँ। रोना जितना था रा चुकी हूँ मरी पूवजाग हो।’

मह नलिना एक यह मूयती है और दूसरी सन्निभ में सुरन्त पूट पड़ती है। यह साधना है जम जम की युगानुयुग बरूप की। मूयता है जिमम नवीन का विरन्तन का फिर फिर फूला मिला दग्यें—हम पा सकें।

गोपिका’ में व्यक्त अर्पायिव शृंगार का पदकर बापू (मियारामचरण जी गुप्त) का एक प्रश्न याद आ गया—“आपको भी शृंगार की रचनाएँ अच्छी लगती हैं? उम समय मैं अपने परम्पराभूत मन्वारा में प्राण शीत-मकोष और बापू के प्रति अमीम श्रद्धा के कारण ‘हाँ नहीं कर सकी और न कहने में मिथ्या भागन का भय था। आज उम प्रश्न का उत्तर मेरे पास है। बापू होने तो मैं कहती “शृंगार अच्छा लगता हो या नहीं, वाच्य यही है जो गोपिका में है।”

प्रेम का अलौकिक प्रभाव

यह तो हुआ गोपिका के प्रतिपाद्य का एक पक्ष। इस मधुर भाव के समकक्ष और विराम में दुजय और क्रूर नामक दस्युआ के अमानवीय काण्ड रस दिए गए हैं। दुजय स्विमणी से विवाह करने में असफल युवक है जो कृष्ण से प्रतिगोध लेने के लिए तत्पर है—इन्हीं में उस स्विमणी की छाया मिलती है और वह उस अपमान के प्रयत्न में लग जाता है। क्रूर नामक पात्र पिता द्वारा निर्वासित किए जाने पर दस्यु बन्धु अपना लेता है। कृष्ण के चले जाने के बाद ब्रज के सांस्कृतिक और नैतिक पतन के चित्र भी खींचे गए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि 'गोपिका' लिखते समय चम्बल घाटी के दस्युआ की समस्या तथा त्रिनोवा जी के हृदय परिवर्तन का प्रसंग उनके अचेतन में था। मधुर और कठोर का यह सघन नूतनता की दृष्टि में ही महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है, लेकिन व्यावहारिक यथाथ भूमि पर उसका अधिक अर्थ नहीं है। मधुर भाव अपने में चाहे जितना पवित्र गम्भीर और निमल हो परन्तु विश्व में प्रबल रूप से छाई हुई क्रूर प्रवृत्तियों का निराकरण करने में समय नहीं हो सकता—वह एक दो-मतिवियों का हृदय भक्त ही छू ले लेकिन समष्टि स्तर पर उसका समाधान ढूँढ़ना अव्यावहारिक और यथाथ से दूर है। प्रेम के आध्यात्मिक और अलौकिक प्रभाव से दुजय और क्रूर की बक्तियों को बदलना अब केवल पौराणिक विश्वासमान रह गया है।

कुशल प्रबंध योजना

'गोपिका' की प्रबंध-योजना में दूर है। अधिकतर कहानी पूर्वस्मृतियों के वर्णन तथा विभिन्न पात्रों के लिए हुए बक्तियों द्वारा आगे बढ़ती है। उसकी कथावस्तु घटित कम है वर्णित अधिक। कृष्ण की लीलाओं में अनेक काल्पनिक तत्वों का समावेश करके उन्हें मुग्ध स्वाभाविक और विश्वसनीय बनाया गया है। इन काल्पनिक और मौलिक उद्भावनाओं में कथा आकर्षक बन गई है। आख्यान की भाँति ही गोपिका में काल्पनिक पात्रों की सख्या प्रख्यात पात्रों से अधिक है। काल्पनिक तत्वों के योग के द्वारा हाँ मियारामकरण जी कृष्ण-कथा की बँधी-बँधाई सीमाओं से बाहर निकल सकने में समय हुए हैं।

'गोपिका' में ब्रह्म और जीव के अंग अंगी सम्बंध तथा अद्भुत की स्थापना भी की गई है।

दुजय चला जा रहा है स्विमणी के साथ राज रथ पर और ये हैं निम्बा य स्वस्ति और षट् जोड़ी एक साथ एक रूप गव के गव श्रीगोपाल ।'

व्यक्तिवत् नक्ति-साधना वा अन्तर्भाव ममष्टि-साधना म करके मद ने भन्द और प्रेम स घणा पर विजय प्राप्ति के सन्देश के साथ प्रथम समाप्त होता है। कृष्ण की उक्ति है

श्री मुरनि पथ पर मचय के गाय-माय त्याग का उपाजन करो, सप्रेम निस्मन्नाप जूनना है पथ प्रन्पित व ममस्त दुःखदा म—सभी नूरों से—विजय ममद्र पाया तव तव ।

अभिव्यजना पक्ष

मियारामगरण जी की भाषा गली हिंदी उगत के लिए नई वस्तु नहीं है परन्तु 'गापिका' म दो बानों विशेष रूप म द्रष्टव्य हैं। प्रथमतः उसमे ब्रजभाषा क गंगा का बहना म प्रयोग हुआ है जिसमे पात्रों के वात्तालाप के साथ ही साथ वातावरण म भी स्वाभाविकता आ गई है। घेनु श्री गुटार विनन डुलाती रही में नी सिमा लाऊ, अवनरल—जम प्रयोग म भाषा सहज स्वाभाविक बन गई है। दूसरी विशेषता अप्रस्तुत याजनाआ क नए और सजीव प्रयोगा मे है। गापिका म प्रयुक्त उपमान मधुर भाव क उपयुक्त बानि, कोमलता और दीप्ति क भाव जगान म समय हैं। उदाहरणतः—

(१) मधन द्रुमा की मधिया से फिर यह धूप पीठ पीछे के स चारु चुम्बन सी श्मम आ निपटी ।

(२) एक धूप गया वह धवन बटार-जैमी तापमी उमा क मृदु उत्पन पदा पर पडो है ।

(३) 'ननकी में नत हूँ—मुन का मुगर हास दीपक का बाता तुल्य धीमा करक बोनी ।

(४) एक शुद्ध स्वर म विलीयमान होत हैं जिस भांति मार स्वर यहाँ लममागर म नीन उसी भांति हुआ गापीप्राम गोतुल ममस्त धरानन हो ।'

(५) मुध मुध गिसक पटी है गीत पर के डुबूल तुय ।

योजनायुक्त प्रतीक रूपक

१७ खण्ड म विभक्त गोपिका का प्रथम-याजना म एक धार गोटवीय मत्त्वो का समावेश है और दूसरी धार उगम व्यक्त जावन दान प्रभाव याजना द्वारा व्यजित है। भिन्न भिन्न पात्रों द्वारा प्रस्तुत वस्तुतः और घटनाओं म कथा का विकास होता है। अधिब्रतर यह विभाग स्वगत-अथा। और कथोपपयना क द्वारा हुआ है। मद्य कथा म विगा हुआ पद्य गली की दृष्टि म एक नूतन आवरण है ।

इन सब विशेषताओं को देखते हुए गोपिका का काव्य रूप 'योगधरा के निवट पटता है, परन्तु 'उत्सुक की प्रतीक-याजना की भाँति ही इसके उद्देश्य की अभिव्यक्ति एक सागोपाग प्रतीक याजना द्वारा की गई है। श्री सुरभि पथ' उदात्त, नि स्वाध, सामजस्यमूत्रक जीवन-दगन का प्रतीक है जो इन्दु के चरित्र में साकार है। इन्दु की वृद्धवाटिका वृद्ध की है अर्थात् समष्टि-साधना ही मनुष्य का उदात्त लक्ष्य है। मकीण स्वार्थी और क्रूर वस्तियाँ के प्रबल प्रसार के कारण इस साधना पर व्याघात पहुँचता है दुजय और 'क्रूर' इन्हीं वस्तियों के प्रतीक हैं। उनकी आँखें वृद्ध वाटिका पर लगी है जिसके फलस्वरूप वह समूह न रहकर व्यक्ति की सम्पत्ति बन जाती है। उसकी रक्षा के लिए प्रहरी नियुक्त किए जाते हैं। इन्दु यदिनी-मो रह जाती है उदात्त भावना का माग दस्यु वस्तियाँ द्वारा भ्रवरद्ध हा जाता है। स्वस्तिग्राम पर आपत्ति के बादल छा जाते हैं अथवा लावहित वारी कृत्वा की हानि होती है परन्तु इन्दु की प्रेम भावना के अलौकिक प्रभाव से दुजय और क्रूर परास्त हो जाते हैं। इन विशेषताओं को देखते हुए गोपिका को एक उद्देश्य प्रधान प्रवृत्त धात्मन प्रतीक रूपक कहा जा सकता है जिसमें एक सत कवि की उदात्त विमल भावना और कल्पना की अभिव्यक्ति मिली है।



मृगनयनी : इतिहास की पुनः कल्पना

भारत के स्वतन्त्र्यात्तर हिन्दी प्रमाणों में श्री बालावनलाल वमा का ऐतिहासिक उपन्यास मृगनयनी उल्लेखनीय है। 'मृगनयनी' का महत्त्व उसमें निहित सजीव युग चित्रण, प्रेरक पात्रों के प्रतिष्ठापन सांस्कृतिक एवं लोक-तत्त्वों तथा स्फूर्तिमय जीवनांकन पर निर्भर है। वमा जी भारतीय सस्कृति के अनुरागाभास्यावान् कलाकार हैं। उनका दृष्टिकोण मतके और सतुलित है। अतीत उन्हें उत्तेजित नहीं करता बरन् गम्भीर चिन्तन की प्रेरणा देकर वर्तमान में उनका माग निर्देश करता है। यह तथ्य 'मृगनयनी' में मनी भीति द्रष्टव्य है।

'मृगनयनी' की मुख्य कथा मृगनयनी के व्यक्तित्व तथा राजा मानसिंह के मफन ववाहिक जीवा की है। प्रकृति की गोम म पत्नी यनिष्ठ निनी आनेट में पारगन है। ग्वालियर का राजा मानसिंह उसके मीत्य और आसट-योगल पर मुग्ध हो उसमें विवाह कर लेता है। निन्नी—मृगनयनी—को ग्वालियर पहुच कर पात होता है कि मानसिंह की पहले ही आठ पहलियां हैं। अत वह मानसिंह के हृदय में अपना स्थान अशुण्य बनाय रखन के निय जीवन में नियम-मयम की मापना कर विभिन्न कथाधा में गति लेती है।

मृगनयनी मानसिंह का गगन गगा के काय में निम्नतर तत्पर रखती है। होनी के हृदय में मिपाहिया द्वारा उपस्थित कथा के बोधमय रूप को नदय कर यह मानसिंह का उन्हें सबप्रथम गम्भ्र विद्या में निपुण बनान की प्रेरणा देती है। यह अत पुत्रा के स्वाध की चिन्ता न कर मपनी के ज्येष्ठ पुत्र का राज्य का उत्तराधिकार शिनाहर ओचित्य धरतनी है। वह अत में एक चित्र बसाकर मानसिंह को सिगाती है। दग चित्र में जीवन के आधारभूत धर्मों कथा धीर कसक्य के परम्पर सामजस्य पर बत दिया गया है।

उपन्यास की प्रागगिक कथा सागी और अटल की है। मृगनयनी के विवाह

के उपरांत गान्धियर चले जान पर उसका भाई अटल अहीर पुवती लाखी स विवाह बग्ने का निश्चय गाव बातो पर प्रबट करता हे । विवाह प्रस्ताव जाति विरुद्ध होने के कारण गाँव की पचायत दोना का 'बहिष्कार' कर दती है । अनेक कष्ट उठाकर उह मानसिंह का आश्रय मिलता है और दोना विवाह सूत्र मे बध जान हे । लाखी का आत्मबन्ध और शीघ्र तथा समाज स प्राप्त उसकी मानसिंह पीडा प्रस्तुत कथा के मूल विषय हैं । अन्न म निकालर लागी के आश्रमण के समय राई गढी की रक्षा करते हुए दोना प्राण त्यागत है ।

उपयास म मृगनयनी तथा लागी अटल की कथाका क अतिरिक्त कई कथा सूत्रा का स्थान मिला है । पहला सूत्र है मालवा क कामुक मुनतान गयामुद्दीन गिलजी का । उसका दो बाता की धुन है वासना नृप्ति और युद्ध । वह एक पडयत्र के फनस्वरूप विष पान द्वारा मौत क घाट उतार दिया जाता है । दूसरा सूत्र है गयामुद्दीन क कामाध पुत्र नमीरुद्दीन का । नसीर युवावस्था म मुत्नाआ के घोर नियन्त्रण-बन्ध स्त्री-संपर्क क लिए तरमते-तरमते हथम का साक्षात् पुनसा बन जाता है । उसका हरम म पूरी पद्मह हज़ार स्त्रियों का असाधारण संग्रह है और उही स्त्रिया स जल-बेलि करता हुआ नसीर सदा के लिए जलमग्न हो जाता है । तीसरा सूत्र है नरवर राय के बगल दावदार बछवाहा राजसिंह और उसकी प्रेमिका केना का । राजसिंह अदूरदर्शी मिथ्याभिमानो धर्मिया का प्रतीक है । बला उम समयन और सहयोग दती है किन्तु राजसिंह ने गहायन सिक्कर क नरवर के मूर्ति भजन के जघन्य बाण्ड पर हार्दिक 'गोक' व्यक्त करती है । उक्त तीना प्रकरण उपयास म मुख्य रूप स युग प्रवृत्तिया का चित्रण बरने क हेतु धाये हैं । युग प्रतीक पात्रा के चरित्र चित्रण क उद्देश्य म इन प्रकरणा म घटनाओं जुटायी गयी हैं । दमोनिये इन कथा-सूत्रा का यदि कथा की मना न देकर 'पात्र चित्र' कहा जाय तो भी आपत्ति नहीं होनी चाहिये । बर्मा जी ने मृगनयनी म युग परिभाषक बुतूहनप्र पात्रा की शृल्लभा म महमूत बघर्रा का भी प्रस्तुत किया है । गुजरात क मुनतान बघरा को अपन दत्याकार और राक्षसी भूय क कारण उपयास म स्थान मिल गया है । पचा-सगटन की दृष्टि स गया मुद्दीन तथा महमूत बघर्रा के प्रकरणा का मुख्य कथा म कबल इतना सम्भव है कि म दोना पात्र निम्नी तथा लागी की प्राप्ति के लिए जालायित यत्नाये गये हैं । राजसिंह मानसिंह का विरोधी है और बला मानसिंह क महन म पडयत्र रचने का प्रयत्न करता है, इन दृष्टि स राजसिंह और केना का प्रकरण मुख्य कथा का अंग बन जाता है । नसीरुद्दीन का कथा प्रसंग उपयास म सबका स्वतंत्र है । उपयास मे सिक्कर लागी क अमानुषिक अत्याकारा तथा गट-बन्ध के पात्रा क जो

प्रसंग है वे श्रमश मुख्य कथा तथा प्रासंगिक कथा के पूरक अंग हैं।

उप-यास की मुख्य कथा का पूर्वाद्ध प्रकृति तथा लोक-जीवन की रगस्थली में घटित होने तथा घटनाओं में साहम-तत्त्व निहित रहने के कारण अधिक रोचक बन पड़ा है। उसका उत्तराद्ध बला तथा जीवन सम्बन्धी गम्भीर प्रश्नों पर विद्वत हान के कारण घटना विम्बा द्वारा व्यक्त न होकर सवादाश्रित तथा अमूर्त अधिक हो गया है। लागी और अटल की प्रासंगिक कथा मुख्य कथा की अपेक्षा ज्यादा प्रवाहमय तथा रोचक है। यह कथा बमा जी की कथा सृष्टि की मूल प्रवृत्ति में अधिक मत पाती है। उसके मायम से उहाने जन जीवन की सामाजिक परिस्थितियों का कुशलता से उभारा है। मृगनयनी के विवाहित होकर खालियर चल जान पर उसकी कथा सरिता का प्रवाह त्याग कर मथर गति ग्रहण कर लेती है। उसमें बवल विचारा और भावों की मद तरंगें उठती गिरती हैं। दूसरी ओर लाखी और अटल की कथा मुख्य कथा से पृथक् होने ही गति पकड़ती है। उनके बहिष्कार का प्रसंग नटा क कुचक्र में पढ़कर उनकी मगरोनी तथा नरवर की यात्रा नरवर रक्षा में लाखी का असाधारण पराक्रम आदि घटनाओं में सामाजिक मनात्रति और लागी अटल क चरित्र के सहज मानव-मुनम पक्ष को प्रत्यक्ष करने की क्षमता है। मानसिंह का आश्रय पाने पर यह कथा मुख्य कथा से पुनः आ मिलती है। लाखा तथा अटल का सम्बन्ध जाति सम्मत न होने के कारण राजमहन में जो प्रतिप्रिया होती है वह मुख्य कथा का भी उद्धलित करता है। अतः में भी लागी अटल क सधप और बलिदान की घटनाएँ इस कथा के प्रवाह को सुरक्षित रखती हैं।

मृगनयनी की कथावस्तु क विरलेपण के उपरांत स्पष्ट है कि यह उप-यास एक युग विगप की विराट दृश्यमाला उपस्थित करता है। इस संज्ञान के लिये उप-यासकार न मुख्य कथा प्रवाह से स्वतंत्र होकर अनकानक घटनाओं, कथा सूत्रों तथा पात्रों को ग्रहण किया है। उसके विभिन्न परिच्छेदों में पारस्परिक अटूट क्रम का प्रायः अभाव है जिसके फलस्वरूप उप-यास का कथानक गिथिल हो गया है और कथ्य को सुस्पष्ट करने के प्रयास में लेखक न कथा के विभिन्न अंगों के परस्पर अनुपात समाजन की विनोप चिन्ता नहीं की है। उदाहरण के लिये उप-यास क प्रारम्भ में ही होलिकात्सव, प्रकृति खेती आयेट आदि के दृश्य और वणन विचित्र चले गये हैं—मानो लेखक का मन उन चित्रों का चित्रित करते-करते भरा नहीं है और वह बारम्बार जल की प्याली में अपनी कूची डुबो देता कर उन पर फर जा रहा है। उप-यास के परिच्छेद तथा उनके अलग-अलग विभिन्न प्रकरण भाँति भाँति के पौधा से जुगाय गये फूल-पत्तों के समान हैं। इन्हें परस्पर

पूर्ति के लिये उसने जन परंपरा का आश्रय लिया है। उसे परंपरा अतिशयता की गाद में खेलती हुई भी सत्य की ओर मुक्त करती जान पड़ती है। इस प्रकार 'मृगनयनी' में वमा जी ने इतिहास में खाज बीन कर तथ्य जुटाए हैं और उन्हें विचार-विवेचन-कल्पना-तत्त्वों से काय-वारण श्रुत खला प्रदान की है।

वमा जी के उप-यासा में नारी पात्र प्रबल और प्रधान है। वमा जी अपने प्रिय नारी-पाना के बाह्य आकर्षण में निहित उनकी आंतरिक विभूति को प्रत्यक्ष करते हैं। उनकी दृष्टि में पुरुष शक्ति है तो नारा उमकी संचालक प्रेरणा। मृगनयनी तथा साप्ती उनका एक ही नारी पान हैं।

मृगनयनी प्रकृति की गाद में पली हानहार युवती है। उसकी काया अत्यंत पुष्ट और मन निर्भोक् है। कामुक आततायी पुरुषों के प्रति उस में अप्रवृत्तता है। साधती है— मुनती तो यही आई हूँ परंतु क्या उनको (जोहर करने वाली स्त्रियाँ के) हाथ-पैर इतने निबन्ध हात हाग कि अपने ऊपर आस और हाथ डालने वाले पुरुषों का घूस से धरती न मुधा सकें? कौसी स्त्रियाँ हागीय! खान को इतना और ऐसा अन्धता मिलत हुए भी मन उनके एक मरियल! चित्ता में जनकर मरें स्त्रियाँ पर हाथ डालने वाले! मैं तो कभी इस तरह नहीं मरने की। वह ऐसा साधती ही नहीं गयासुदान के भेजे हुए घुडसवारा के प्रसंग में कर भी दिखाती है।

प्रचंड निन्नी में कामलता और रसिकता भी है। उस राई की प्रवृत्ति स्थली अत्यंत प्रिय है। वहा की नदी की दमकता हुई बल्लोलिनी धार ऊँघती लहराती वाल पबता की ऊँचाइयाँ पठ और डालियाँ पत्ते आदि उसका जीवन सहचर हैं। खेत के मचान में उँह जी भर दखता है और उँह एक जगह सँजा लेने की कामना करती है। खालियर के बभ्रवमय किले में पहुँचकर भी वह राई को नहीं भूलती। गाना उम भला लगता है— जाग परी मैं पिय के जगाय, उस का प्रिय गीत है। खालियर पहुँचकर वह सगीत व नृत्य सीखती है। वास्तुबला और चित्रकारी में भी उसका मन रमता है।

निन्नी हानहार है परंतु है साधारण कृपक बालिका। वह लाहे के तीर जसी तुच्छ वस्तु के लिये अपनी सटला लापी में भगड पडती है। उम चिढ़ाना और उमे नगे परा दणकर अपने जूता पर अभिमान करना मृगनयनी का सामान्य बालिका के स्तर पर ले आता है। नगी प्रकार महल के वातावरण में पहुँच कर वह कभी-कभी स्वयं में हीनता का अनुभव करती है। पतस्वरूप वह वहाँ अपनी मर्यादा रक्षा के लिए पग पग पर चौकन्ना रहता है।

निन्नी अपने ग्राम्य जीवन की अवोधप्राय अवस्था में भी नारी की पुरुष सापेक्ष मर्यादा भावना से भर्त्सना-शक्ति परिचित है। राजा मानसिंह के विवाह-

प्रस्ताव पर वह सतक हा जाती है। उम आगका है कि वहाँ भविष्य म सम्मान न खाना पडे। 'मानसिह म उसन धीरे म कहा 'शरीबो और बडा का जम मग कैसा—बडे लाग कहत कुछ और है बरत कुछ और है एसा मुना है कथा कहानिया म। यदि उमे नात हाना कि मानसिह की पढेने मे आठ रातियाँ हैं तो क्वाचिन् वह विवाह की स्वीकृति नही दनी। वह जाननी है कि मयम और गम्भीरता द्वारा ही नारी पुण्य क, मानसिह जैम पुण्य क, हृदय म अशुण्ण अधि कार रख सकती है। उम मानसिह का प्रेमालाप और बेष्टायें माती हैं, किन्तु नारीत्व की मया अशुण्ण बनाय रखन के लिय वह अद्रिय नियंत्रण की इच्छुक है। मानसिह म कहती है 'और निवट आय ता मैं बन्त छाटी रह जाऊंगी।'

नारी पुण्य की प्रेरणा है पुण्य को मही माग पर चलन के लिए प्रेरित करना उसका क्तव्य है, मृगनयनी यह भूलती नहा। मानसिह मृगनयनी क ग्वालयर आन पर मनोरजन और ला प्रेम की आर अधिक भुज जाता है। मृगनयनी उम सजग कर उसम नवीन चेतना भर देती है। उसका आधारभूत विचार इन पक्षिया म आ जाता है— क्ता क्तव्य का सजग किय रह भावना विवक का सम्बल दिय रह मनावल और धारणा एक-दूसर का हाय पकडे रह।

मृगनयनी का चरित्र असाधारण है। उमक पूव तथा उत्तर जीवन म मगति विठान के लिय बमा की विशप सतक रह हैं। उन्होंने रानी मृगनयनी क प्रबुद्ध रूप के मूल मूना को बालिका नित्रा म मावधानी स लित्त किया है। उमकी वाद की भावनाआ और चितना म परिस्थिति की त्रिया प्रतिक्रिया क तत्व का वर्मा जी ने अपरिहाय अग के रूप म ग्रहण किया है। मृगनयनी का व्यक्तित्व चितन प्रधान हान तथा अभिज्ञान जीवन म धिर जाने क कारण पाठक को प्रभा वित ता करता है, किन्तु अपन म तमय नही कर पाना। उमकी अपना लावी अपनी सहज साधारण गति क कारण पाठक का विगेष आकृष्ट करती है। उपयास म लावी का चितन पन मुगर नही ह उसका व्यक्तित्व मना विकारा और प्रवर्तिया क भाष्यम स विरमित हुआ है। लावी उपयास म मृगनयनी क साथ उसरे आनुपगित्त पान अथवा उमकी उपमृष्टि के रूप म पदा पण करता है। आग चलकर उपयासकार जब मृगनयनी की प्रतिमा को मजान सँवारने म प्रयत्नरत हो जाता है उस ममय लावी माना उसकी दृष्टि बचाकर स्वशत्रु, परिपूण नारी-पात्र का रूप धारण कर लेनी है। मृगनयनी यदि उपयास कार की सतकता सजगता की प्रतिपन है ता लावी उमकी हृत्पानुभूति की सहज देन है।

राजा मानसिह उपयास क प्रतिपाद्य पात्रा म प्रमुख है। वह क्तव्यनिष्ठ

शासक है। उसकी श्रमप्रियता और कलाप्रियता न उस लान्प्रिय बना दिया है। गृहपत्नियाँ क मय स्वयं धिर जाने पर वह मन ही मन स्वीकार करता है कि एक स्त्री का शासन पुरुष के लिए कठिन है, आठ ता आठ ग्वालियर राज्यों की समस्या के समान हैं। अतः वह विनय और गालभे वाम लेने और योग्य व कटूक्ति सहने में अपना कल्याण समझता है। मृगनयनी कथा की केंद्र बिंदु होने के कारण उपन्यास में प्रकाश विरणों मानसिंह पर सीधी बम पड़ती हैं। कुछ स्थलों को छोड़कर शेष में प्रायः मानसिंह मृगनयनी के स्वरूप को उभारने के लिए ही उपस्थित होता है। वह मृगनयनी के रूप निर्माण में पूरक चित्रण के समान है।

‘मृगनयनी’ में वर्मा जी की दृष्टि जीवन (इतिहास) के ग्राह्य और अग्राह्य का पृथक् कर देना में व्यस्त रहने के कारण उपन्यास के अधिकांश पात्र भले भयवा बुरे के विपरीत वर्गों में बँट गये हैं। बोधन मिश्र इस प्रसंग में उल्लेखनीय है। वह पाठक की सहानुभूति अर्जित न कर पाने पर भी भला नहीं ता बुरा भी नहीं है। वाचन ग्राह्यण समाज की कट्टरता का जाता जागता प्रतीक है परन्तु है ईमानदार। जा ठीक जेंचता है उसे अपनाता है। उसका अपने विश्वास के विपरीत जाना असम्भव है भले ही राजा युद्ध हा या विधर्मी बंधन डालें। उपन्यास का पट विगद हाने के कारण पात्रों की बड़ी मस्या में सृष्टि हुई है किन्तु उनकी पृथक् विशिष्टता का निर्वाह हुआ है। उनके चित्रण में प्रत्यक्ष विधि की अपना नाटकीय शक्ती का अधिक आश्रय लिया गया है।

चर्चा की जा चुकी है कि मृगनयनी में नाटकीयता का तत्त्व है। यह तत्त्व मुख्य रूप से इसकी संवाद-कला से प्रादुर्भूत हुआ है। नाटकीयता में यहाँ तात्पर्य है वास्तविकता के आभास में। नाटकीय स्थल वह है जहाँ घटना का वर्णन मात्र न होकर घटना स्वयं घटित होती जान पड़े बातलाप तथा वाय में गति का सजीवता का वाध हो। मृगनयनी के संवादों में वक्ता के हाव भाव का सूक्ष्म निरीक्षण भी साय-साय चलता है। विशेषता यह है कि उपन्यासकार संवाद से इतर पात्रों के हाव भाव का निर्णय न कर उन्हें संवादों में ही व्यक्त करता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है। मुल्नाया तथा मुनतान के धार निदर्शन में बंध हुए नोपुष साहजाला नसीरद्दीन तथा चलते पुर्जा दरवारी स्वाजा मटरू की एकांत चर्चा अपने विषय और गरीब कारण नाटकीय दृश्य उपस्थित करती है। संवादों का एक एक वाक्य चुना हुआ और वक्ता की प्रवृत्ति का साक्ष्य है।

— साहजाला नमार न दगनें भाँकत हुए मटरू में पूछा— सराव ता घुरी चीज वही जाता है फिर लाग क्या पाल है।

‘जान आतम’, मटरू ने पूछकर उदम रता— बुजुर्गों न जमान में दम

की बुरा बहा है, मगर लोग नहीं मानते हैं इसलिये पी लेते हैं।

‘बुरी कहते हैं तो पीन म भी बुरी होनी होगी ?’

जान आलम, बुरी चीजें जब बादशाह के हाथ छू लेती हैं तब उतनी बुरी नहीं रहती। बदा ता गुलाम है वह ही क्या सकता है ? लेकिन हाँ सुना है कि बाज़ लोग दवा के तौर पर कभी-कभी पी लेते हैं।

‘तुमने कभी पी ?’

जान आलम क मामन बयान करन म गुस्ताखी होगी।

(नसीर) ‘जी चाहता है कि मैं भी कुछ दुनिया दखू। कितने तो बहुत-सी पद लीं, मगर दुनिया समझ म नहीं आ रही है।’

‘जान आलम जिंदावाद। मैं कुरबान जाऊँ। हुजूर ता इतना देखेंगे कि न छद् अघायेंगे न दुनिया अघायेंगे।’

(नसीर) सखी अभी क्या कम है—मर जान को भी जी चाहता है। मगर तुम ठीक कहते हो। यही त रहा। तो फिर मच सच बतलाया कि बुरी कहीं जान वाली उम चीज म कुछ मजा भी है या वाकई बुरी है ?’

जान आलम, अगर उसम मजा न होता ता बादशाह क मुह क्या लगती ?’

तब—फिर एक तो यह। पर थोड़ी-सी ही बहुत ही थोड़ी बरना पकड़ म आ जान का अन्धा है। और दूसरी—तुम खुद समझ लो।

‘कुछ भी मुश्किल नहीं जान आलम।’—

अपने भावन वाले नसीर क प्रश्न म कोरी जिज्ञासा नहीं बरत तीव्र लालसा है। उसकी अनुभवशून्य लालुपता अपनी उत्सुकता का समाधान ही नहीं उस दिशा म प्रोत्साहन भी चाहती है। उसक इस वाक्य म—‘बुरी कहते हैं ता पीन म भी बुरी हाती होगी ?’—मटरू को रहस्यमय संकेत है कि वह अपने अनुभव की छाप उगाकर शराब को श्राद्ध घोषित कर दे। फिर वह जिज्ञासु भोले बालक की भाँति बिलकुल स्वाभाविक प्रश्न कर बैठा है—‘तुमने कभी पी ?’ डरता भी है। उसकी सहम, सतकता और पिपासा केवल इस दबी ज़बान म साक्षात् प्रकट हो जाती है—‘पर थोड़ी-सी ही, बहुत ही थोड़ी।’ और भिचे गने से कह ही बठता है—‘और दूसरी—तुम खुद समझ लो।’ इन वयोपक्वना क साथ वक्ता के हाव भावा का संकेत नहीं दिया गया है। भावा को व्यक्त करने वाले कथना को कुछ ऐसे सधे हुए मनोवैज्ञानिक ढग स रखा गया है कि वक्ता की भाव भंगिमा पाठक की कल्पना म स्वतः साकार हो उठती है। उल्लिखित संवाद पढ़कर हमारी कल्पना म एक चित्र बनता है जिसम एक भारमपीडित दाहजादा है, घबराया-सा, भरनाया हुआ, डरा हुआ चौकन्ना,

ललचाया और सक्पकाया सा, इधर उधर भाककर धीरे धीरे बात करता हुआ, बैतारी उसकी आग्या म भक्ति रही है। दूदय मे दूमरा व्यक्ति है सीखा सिसाम्या, मजा हुआ दरबारी मटरू—पूणतया सनक और बात बात पर शतरज क खिलाडी जैसी चाले चलने वाला। वह शिकार को मुट्टी म आमा समभता है किंतु उसे तनिक खिलाकर पजा म दवाचना चाहता है। खुगामद स भरपूर दरबारी शिष्टाचार का पुतला। शाहजादे की लालसा को चरम बिन्दु पर लाकर गालमाल ढग से शराव के विषय म अपना स्पष्ट नियम देता है— अगर उसम मजान होता ता बादशाहा क मुह क्या गती? यह सवाद चरित्र चित्रण क्या विकास तथा नाटकीय सजीवता प्रस्तुत करन म समय है।

मृगनयनी मे जो जीवन दान प्रस्तुत किया गया है उषक दो पक्ष है—एक जीवन का अग्रगण्य और दूसरा ग्राह्य। अग्रगण्य क बीज तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक स्थिति म छिपे हुए है। पंद्रहवीं शताब्दी क अंत म उस युग म दश मे केन्द्रीय सत्ता न थी। चारा और अराजकता तथा जनपीडन का बालवाला था। विदशी शक्तिशाली जन स्वण-सचय की कामना, मारकाट की आकाशा और स्त्रियो के अपहरण की वासना म आकठ मगन थे। हिन्दू परतोक भय, निराशावाद तथा पारस्परिक मगडा क कारण लडखडा उठे थे। ऐसी स्थिति म शासन काय शासक की व्यक्तिगत आकाशाया व वासनाया का साधन मात्र रह गया था। नित्य कुटन पिसन वाल उपक्षित प्रजाजन की यही भावना रही होगी— 'कोउ नुप होइ हमहि का हागी।' मानसिंह और मृगनयनी की प्रजा वत्सल दृष्टि और गतिविधि उस युग की तिमिराच्छन्न दगा म प्रकाश रेखायें हैं।

हिन्दू समाज की वण-व्यवस्था न जटिल भेदभाव का रूप धारण कर गया था जिसका उग्र प्रभाव आज भी किसी स छिपा नहा है। मृगनयनी म गुजर अटल और अहीर क्या लाली एक दूसरे का अपना जेत है। पुग्ग-स्त्री क इस सहज स्वामाविक सन्ध का तत्कालीन समाज हाम के सन काम धध छाडकर तोडने के लिय उद्यत हो जाता है। लाली अग्रज अविचलित रहकर स्थिति का सामना करत हैं। फिर भी 'गामी जमी बीरागना क हृदय क किसी कोन म जानि वा' क प्रति निष्ठा बनी रहती है। मरन समय अटल ग टटे स्वर म कह दती है—'व्याह कर सना। अपनी जात पात म । दूसरी आर गुजर जानि की मृगनयनी और तामर मानसिंह का विवाह हा जाता है। मानसिंह राजा है वह सभ बुछ कर सजता है। वाइ उम पर उगली तक नहीं उटाता। उपयास कार का तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था पर यह मामिक व्यग्य है। जातिगत भेद भाव की निस्सारता पर मानसिंह का टिप्पणी उल्लेखनीय है। वह कहता है—

“रक्षा के लिए ढाल और तलवार दोनों अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं। जात पात ढाल का काम तो कर सकती है और कर रही है परन्तु तलवार का काम न तो ढाल के युग में उसने कर पाया है और न कभी कर पायगी।”

वर्मा जी ने उपन्यास में जीवन का जो ग्राह्य स्वरूप प्रस्तुत किया है उसकी संचालक उनकी रोमांस प्रवृत्ति है। रोमांस गद्य का यही विशिष्ट अर्थों में प्रयोग किया जा रहा है। रोमांस अंगरेजी साहित्य में उपन्यास की पूर्वज विधा के रूप में था। यह एक विलक्षण कथा थी। प्रस्तुत प्रकरण में रोमांस एक प्रवृत्ति जीवन दृष्टि है। इसकी एक शब्द में व्याख्या की जाये तो इसका अर्थ है ‘स्फूर्ति’। वर्मा जी का रोमांस साधारण जीवन में ही है अपनी मिट्टी, अपने चारों ओर की प्रकृति अपने समाज में है। उन्होंने विवेक मनुलन और कमठता से रोमांस के तत्त्व जुटाये हैं।

मृगनयनी का मन्देश है कि मनुष्य का जन्म साभिप्राय है। उसे जीवन में जसा जो कुछ मिला है उसी में सतुष्ट रहकर यथाशक्ति कुछ जोड़ने का प्रयत्न करते रहना चाहिये। अचरित प्रयत्न का दूसरा नाम जीवन है। उपन्यास में मृगनयनी और मानसिंह के माध्यम में सतुलित मानव जीवन की भाँकी प्रस्तुत करने का प्रयास है। शारीरिक स्वास्थ्य मानवता के निर्वाह की पहली अनिवार्य सीढ़ी है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क रह सकता है। मस्तिष्क से उत्पन्न होता है तर्क और तर्क का प्रसाद है कर्तव्य। हृदय कोमल भावनाओं वला प्रेम आदि को जन्म देता है। जीवन में कर्तव्य और भावना के बीच प्रायः संघर्ष के अवसर आते हैं। इन दोनों के सतुलन समन्वय में ही मनुष्य की क्षेम है। तभी उसकी शारीरिक शक्ति अनुचित मांग ग्रहण नहीं कर पाती। इस प्रकार शारीरिक शक्ति, मस्तिष्क और हृदय के उपयुक्त समन्वय में जीवन की ‘स्फूर्ति’ अर्थात् वर्मा जी का ‘रोमांस’ निहित है। इस रोमांस की अभिव्यक्ति उपन्यास कालीन जीवन तथा प्रकृति चित्रण में भलीभाँति हुई है। प्रणय प्रसंगों तथा कला के उदात्त स्पर्शों में यह प्रवृत्ति तिल उठी है।

‘मृगनयनी’ में ग्वालियर किले के अभिजान जीवन में ‘रोमांस’ की उपन्यासि हुई है किन्तु बुंदेलखंडी जन जीवन में इसकी छटा देखते बनती है। उस युग की प्राणातक परिस्थितियों का उल्लेख किया जा चुका है। उपन्यास का जजर बुंदेलखंडी जन कठोर प्रकृति और विषम परिस्थितियों की गोद में पलते रहने के कारण अपने अन्तर में एक और व्यक्तित्व छिपाये हुए है। वह व्यक्तित्व निर्भीक है घोर कठिनाइयों में जूझने वाला और मौजूद का एक क्षण मिलने पर मस्ती से झूम उठने वाला है। मस्ती का एक क्षण ही उसे सजीव बनाय रखना

है और शक्ति देता है भविष्य की बाधाओं में भरपूर टक्कर लेने की। उसके त्यौहार और उत्सव ऐसी ही सुखद क्षणों की अमूल्य निधि हैं। नवीन रूप धारण करती प्रकृति उसमें उमंगों की हिलोरा पर हिलोरें उठा देती है। उसका वृत्तज्ञ मन परमेश्वर के आगे नत हो जाता है। वह उन अवसरों पर भजन पूजन करता है, उसमें चरणों में अपना श्रद्धाजलि अर्पित करता है। फिर बारी आती है हृदय में नये हुए उन्नाम की दुगुने बग में बाहर फूट पड़ने की। बुढ़े-नखड़ी नर-नारी फाँसों और राखरों गाने हैं और नाचने-कूदने मग्न हो जाते हैं। उपवास के प्रारम्भ में ही हालिकोत्सव का चित्रण इस तथ्य का साक्षी है।

भारतीय मध्यकालीन इतिहास के आधार पर हिन्दी में अनेक उपवासों की रचना हुई है। स्वयं श्री कृष्णचरणदास वर्मा के अग्र तक प्रकाशित चारह ऐतिहासिक उपवासों में भी ग्यारह इसी युग के चित्रण में सलग्न हैं। उस काल की अवसरों राशि से नव चेतना और अदम्य स्फूर्ति के कण जुग कर वतमान को उल्लसित और प्रेरित करने वाली कृति के रूप में मृगनयनी' अपूर्व और अविस्मरणीय है।

झूठा सच · भारत-विभाजन का औपन्यासिक महाकाव्य

यशपाल की वृत्ति 'झूठा सच' निश्चित रूप से एक राजनतिक उपन्यास है। कुछ लोगों के अनुसार ऐसा कहना किसी हद तक उपन्यास के स्तर का घटा देना है पर यह एक बहुत ही सकुचित धारणा है जिसका कोई आधार नहीं। यदि 'झूठा सच' एक राजनतिक उपन्यास है तो तात्सताय का युद्ध और 'गति' भी एक राजनतिक उपन्यास है, पर वह उपन्यास लगभग सबममति से ससार का श्रेष्ठ उपन्यास माना जाता है। अथ अनेक महान् उपन्यासकारों ने जैसे रम्यारली भानातोल फ्राम, सिक्लेयर लिबिस अष्टन विकनयर तथा हमार रवीन्द्र, शरत्, प्रेमचन्द ममसायिक या अभी अभी जा समय भूतकाल बना उस पर उपन्यास लिख चुके हैं। इसलिए 'झूठा सच' को राजनतिक उपन्यास करार देने में किसी भी प्रकार उसके स्तर को निम्न नहीं बताया जा सकता।

आधुनिक उपन्यास साहित्य का जब जन्म हुआ था तो वह निश्चय ही पड़े-लिखे वग के लिए हुआ था जिसे मनोरजन और समय वाटन के लिए साधन चाहिए था। प्रास में उपन्यास का पहने पहल अच्छी तरह आरम्भ हुआ और वहाँ यह पुनर्र कहा गया कि उपन्यास का उद्देश्य मनोरजन है। पर धीरे धीरे लोगों का दृष्टिकोण प्रसारित होता चला गया और अब कोई यह नहीं कहता कि उपन्यास का उद्देश्य मनोरजन या पाठक का समय वाटन में मग्न करना है। साथ ही यह भी सही है कि लाला लाग उपन्यास केवल मनोरजा के लिए ही पत्न है पर जैसा कि था गहराई में जाने पर ही जान होगा, मनोरजन के भी स्तर होते हैं। कोई पाठक त्रिभुल उदपटाग क्यानक से ही अपना मनोरजन कर सकता है जबकि प्रबुद्ध पाठक के लिए और भी सामग्री चाहिए। शक्य अर्थ यह नहीं है

कि उप-यास के आदि लक्ष्य मनोरजन में किसी प्रकार का हेरफेर हुआ है। केवल यही कहा जा सकता है कि मनोरजन के स्तर के सम्बन्ध में चेतना पैदा हो गई है। अवश्य ही उप-यास में यह गुण होना चाहिए कि वह नीरस न बना दे, पाठक उसे पढ़ता ही चला जाए और उस आनंद आए।

इस बीच में पुल के नीचे काफी पानी बह चुका है यानी जब उप-यास साहित्य का आरम्भ हुआ था तब में लेकर आज तक स्थिति बहुत बगल चुकी है पर यह कोई नहीं कह सकता कि मनोरजन का तत्त्व उसमें नहीं होना चाहिए सिवा उन लोगों के जो हर विधा का गणित के एक सूत्र में परिणत करके कुछ थोड़े में लोगों की चर्चा का विषय बनाना चाहते हैं। युग तो इस बात का है कि अधिक से अधिक लोगों को साहित्य की ओर विनोदकर क्या साहित्य का विधाया की ओर, गीचा जाए। मनोरजन के अभाव में यह आशा की जाती है कि वे और भी कुछ करें। पाठक की मानसिक परिधि और विस्तार के अनुसार पाठकों को कई तरह के उप-यास दिए जा सकते हैं। उप-यास के जरिये पाठक को हर तरह का पान दिया जा सकता है। उसे जागरूक और चिन्तन के लिए उमूल बनाया जा सकता है। उप-यासकार कई बार पाठक के सामने व पटल प्रस्तुत करता है जो चिन्तन में भी प्रस्तुत नहीं किए थे। फामिली लख बाल्य में लेकर हिंदी के प्रमत्त तक अधिकांश लेखकों ने क्या साहित्य को विचारों और चिन्तन का माध्यम बनाया है। इसीलिए आज सभी तरह के प्रचारण उप-यास कहानी तथा दूर-दूरों में क्या साहित्य का पल्ला पकड़ते हैं। हम चीन आदि समाजवादी देशों के क्या-साहित्य के सम्बन्ध में कुछ लोगों ने यह प्रचार कर रखा है कि वहां का समाज प्रचारण रह गया है और साहित्य बगल राजनीति का पुच्छना मात्र है। पर अभी हाल ही में गार्कोफ को नोबल पुरस्कार मिलने से यह प्रमाणित हो गया कि यद्यपि समाजवादी देशों में घटिया साहित्य भी है जो दल का झण्डा लेकर चलता जाता है पर इन देशों में भी ऐसी साहित्य-माधक की कमी नहीं है जो साहित्य को साहित्य के रूप में लाते हैं।

गोपाल की इस दृष्टि के सम्बन्ध में कुछ कहना ही भूमिगत रूप में इन बातों का कहना जरूरी था। मैं पहले ही बता चुका हूँ कि गोपाल का यह उप-यास एक राजनितिक उप-यास है पर जता कि मैं दिग्गज चुका हूँ उप-यास अब केवल क्या कहानी के अतिरिक्त कुछ और भी होता है और यदि कोई उप-यास राजनितिक पहलुओं का लेने हुए चलता है तो इतने सारे आश्चर्य की बात नहीं है बल्कि यह एक ही तरह स्वाभाविक है। पर साथ ही यह ध्यान दिया जाए कि अगमण समसामयिक दृष्टिकोण पर उप-यास या क्या साहित्य प्रस्तुत करना बेगव

क लिए बहुत जोखिम का काय है। साधारण उप-यास की रचना में, जिसमें एक व्यक्ति या परिवार या गहर या गाव की स्थिति का चित्रण रहता है उप-यासकार को अपनी गुत्थिया नहीं सुलभानी पडती जितनी कि एक राजनतिक उप-यास में सुलभानी पडती हैं। राजनतिक उप-यास के लेखक में यह आगा की जाता है कि वह जड तड जाकर सार ग्रन्ना पर विवेचन करे, काय-कारण की शृंगला को स्पष्ट कर, भूनवान से आई हुई परम्परा में म्यितिया का सयुक्त करक दिखाय और भविष्य का भी सकेत द।

वस भी इस प्रकार में लिखा हुआ उप-यास, जिसका मुख्य विषय सामाजिक राजनतिक स्थिति और उसमें आन वाल परिवर्तन हा बहुत आसानी से महज रिपोर्ताज में परिणत हो सकता था। उस हालत में वह कता की दष्टि से निम्न कोटि का हो जाता है। पर यशपाल की सतक लेखनी न घटनाया के माय-याय करत हुए भी और उनका मिलमिना या काय-कारण विमी प्रकार में न बिगाडते हुए भी कथानक का ताना-बाना इस प्रकार से फलाया विस्तार किया और उममे इस प्रकार से रग भर कि कही भी पाठक को यह महसूस नहीं होना कि वह कहानी की अपेक्षा कुछ और पड रहा है। या ता ससार क कई मूधय लेखका न सामाजिक राजनतिक घटनाया को और लगभग समसामयिक इतिहास को अपना उपजीव्य बनाया है पर इस मिलसिले में अपटन मिक्लयर का उल्लेख विशेष उपयुक्त हागा जिमने दूसरे महायुद्ध का साग इतिहास एक उप-यास माला क जरिये लिखा है, बरिक् या कहना चाहिए कि दूसरे महायुद्ध की पृष्ठभूमि पर एक विराट उप-यास लिखा है।

लेखक क लिए इस प्रकार यह एक कमीटी है कि जरा चूका कि कताकार की मर्यादा से बिचनित हाकर एकलम अयाह खाई के अन्दर गिरा।

मैंने पहले यह बतलाया है कि राजनतिक सामाजिक घटनाया का पृष्ठभूमि में रखकर उप-यास लेखन बहुत कठिन है पर माय ही यह भी बहुत सही है कि अति साधारण पात्र राजनतिक सामाजिक घटनाया की 'फुटलाईट' की चौंध से खडे हाकर बहुत महत्त्वपूण बन जात हैं और वह एक साधारण व्यक्ति न रहकर इतिहास का एक प्रतीक बन जाता है। इस नाने उप-यास क पात्र का स्तर अनायास ही ऊपर उठ जाता है। पर एम उप-यासामा में एक टर यह भी रहता है कि कही व्यक्ति प्रतीक बन कर मास लेता चलना फिरता और जीवन क अय लक्ष्या नमुमाजित रहता है पर उमका व्यक्तित्व न उभरे और वह एक 'राबोट' मात्र बन कर रह जाय। मफन कलाकृति क लिए यह जरूरी है कि उसका प्रत्यक पात्र अपना जीवन जीय जो मात्र समसामयिक प्रतीक या कठपुतल का जीवन न हा।

हृदय का विषय है कि यशपाल इन सारा दृष्टियाँ से सपन हुए है और उनका प्रत्येक पात्र बिल्कुल अपना ही जीवन जीता है। जितने हिन्दू चरित्र हैं हाँ सक्ता था कि एक ऐसे समय जब सभी हिन्दुओं के सामने एक ही प्रश्न और एक ही सबूत मुहूँ वा कर सजा था एक ही जिन्दगी जीने और एक ही तरह से बातचीत करत, पर यशपाल के इस उपन्यास में प्रत्येक पात्र अपना अलग अलग जीवन जीता है। उसकी अलग अलग बुद्धि है अलग अलग कमजोरियाँ और सहजारियाँ हैं इस प्रकार से वही भी पाठक को यह अनुभव नहीं होता कि दो पात्र एक दूसरे की कौबन प्रतियाँ है।

या हम इस मन्व ध में बहुत कुछ वह सबत हैं पर तबत एक जाड को लें— जयदेव और उसका बहन ताग। दोनों एक परिवार के ह। एक ही प्रकार की आर्थिक समस्याएँ उनके सामने है। विभाजन की विपत्ति का पहाड उनके सिर पर एक ही तरह से टूट पडता है पर सारे मामला में उन पर असर अलग अलग होता है। बबल गहराई में देयन पर ही पला लगता है कि एक घटना का इतना पृथक असर दोनों पर हुआ है। इन्हे में कलाकार की बहुत बड़ी सफाई मानता हैं और यह रचना की श्रेष्ठता का एक प्रमाण है। यही बाल माद पात्रा के विषय में कही जा सकती है।

यशपाल ने 'भूटा सब' उपन्यास में आधुनिक इतिहास की बहुत बड़ी घटना को उपजीव्य बनाया है। लगभग १२०० पृष्ठ के इस उपन्यास में दण्ड विभाजन में उत्पन्न स्थितियों का निपा गया है। स्वतंत्रता के साथ साथ देश का विभाजन हुआ। वह क्या हुआ और कम हुआ इस पर यशपाल नहीं जात, यद्यपि पुराने वक्ता में जो विचार तथा भावनाएँ चली आ रही है और जिनके कारण देश का विभाजन हुआ वे काफी हद तक कथानक के दौरान खुलकर सामने आ जाती हैं यदि भारत के आधुनिक इतिहास को देखा जाए तो जो समय अधिन रोमांचकारी घटना इस दौरान घटित हुईं वह है भारतीय स्वतंत्रता का प्राप्ति। लगभग एक गताशी का निरन्तर सशाम इस घटना के पीछे है। या पाठक-पुस्तक में निराय के नायक यह लिखना है कि कांग्रेस ने ही देश का स्वतंत्रता लिये पर असर में स्वतंत्रता सशाम का प्रारम्भ किसी न किसी रूप में १८५७ से माना जा सकता है। १८५७ में १९१६ तक, जब गांधी जी नेता के रूप में सामने आए स्वतंत्रता सशाम एम सागा तक सीमित था जिन्हें हम प्रांतिकारी कह सकते हैं। इस बीच के सभी स्वतंत्रता-मन्त्रिक जैसे सावरकर वारींद्र कुमार घोष आदि व्यक्ति, तथा पार्सी पर चढ़ने वाले सफूट 'गहो' और बाल पानी जान आते हजारों देशभक्त कांग्रेस के बाहर के लोग थे। १९१६ के बाद स्वतंत्रता-सशाम के दो विभाग हो

गए—एक कांग्रेस और दूसरा प्रांतिकारी। कभी ये दोनों आंदोलन साथ साथ चलते कभी अलग अलग। १९३५ तक दोनों आंदोलन एक साथ चले और समाप्त इस अर्थ में हो गए कि दोनों आंदोलन सामयिक रूप से दब गये यानी जनता के अन्तमन की गहराई में उतर कर बठ गये। पर १९३६ में जो महामुद गुरु हुआ उसके फलस्वरूप स्वतंत्रता आन्दोलन फिर उभरा। यह कहना बडा मुश्किल है कि यदि यह लड़ाई न छिडती तो कांग्रेस फिर से आन्दोलन छेती या नहीं। श्रान्तिकारी छुटपुट ढंग से तो काम कर रहे थे, लेकिन कांग्रेस में फिर से आंदोलन उभरता या नहीं यह प्रश्न है। गायद न उभरता शायद उभरता। जो कुछ भी हो, लड़ाई के बाद जब १९४२ में आंदोलन चलाया गया, उसमें बहुत पहले से ही श्रान्तिकारी तत्व कायगील थे। यद्यपि १९४२ में आंदोलन का सूत्रपात कांग्रेस के द्वारा ही हुआ था, पर उसमें एस श्रान्तिकारी तत्व आ गए कि उस किसी भी प्रकार एक कांग्रेसी आंदोलन कहना सम्भव नहीं है, यहां तक कि गांधी जी ने भी उस आंदोलन के सिलसिले में, नज़रबंद रहने के बाद छूटकर यही बयान दिया था। जो कुछ भी हो, तथ्य है कि १९४२-४३ में दोनों आंदोलन घुल मिलकर अतप्रविष्ट होकर चले। फिर अन्तिम धक्का आजाद हिंद फौज ने लगा दिया, जिसके कारण ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई कि अग्रजों का अपनी भारतीय फौजा पर भरोसा नहीं रहा। इसके साथ अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का दबाव भी आया और हम स्वतंत्र हुए—पर साथ ही दुर्भाग्य यह रहा कि भारत को दो हिस्सा में बाट दिया गया।

यही वह परिस्थिति है जहां में 'भूटा सच' के कथानक का आरम्भ होता है। लोग लाहौर में बहुत आनंद से थे। यद्यपि हिंदुओं की समस्या बहा आधे से कुछ ही कम थी पर उनके हाथ में ८० प्रतिशत सम्पत्ति थी। हिंदू मध्यवर्ग बहुत सुखी था। यशपाल ने कथानक का आरम्भ सग सियापा या शोक-समारोह से किया है। यद्यपि मौका शोक का है पर यशपाल ने उसका जो वर्णन प्रस्तुत किया है उससे कुछ हास्य रस ही उत्पन्न होता है। बुढिया के मरने पर कोला नाइन बुलाई गई जो सियापा विशारद समझी जाती थी यानी गाँव कैसे मनाना चाहिए इस सम्बन्ध में वह विगपन थी। सभी स्थिया सियापा और सोग के परपरागत पहनावे में थी काल लहंग और राख घालकर रंगी हुई मोटी मलमल की खूब बडी बडी चादरें। नाइन निवगत भागवान बुढिया की दाना बहुआ क साथ बीच में बठी। फिर जिन स्थिया का जितना निकट का सम्बन्ध था व उतनी ही निकट एक के पश्चात एक वृत्ता में बठ गई।

काना नाइन ने पहली उलाहती (विलाप का बोल) दी 'बोल मरिय

रागिये रामजी का नाम ।

स्त्रियो ने समवेत स्वर में उसका अनुकरण किया ।

पजाविया और मिथियो के शोक समारोह का यह सामाजी रूप गायन अब समाप्त हो गया है इसलिए यशपाल ने इसकी जो अमर कहानी प्रस्तुत की है, वह मज्जेदार कहानी के अतिरिक्त एक युग का पूरा चित्र प्रस्तुत करती है । इसी शोक सभा में हम तारा का परिचय मिलता है, जो अभी छात्रा है । उनका भाई जय देव और वह स्वयं इस उपवास के प्रधान पात्र है और उन्हीं के अरिथे से विभाजन का समय का बाह्य और आंतरिक स्थिति का पदा हुइ उनका उदघाटन किया गया है । जयदेव १९४३ में एम० ए० का पढाई कर रहा था कि तभी युद्ध विराधी आन्दोलन में गिरफ्तार कर लिया गया था और जल भेज दिया गया था । जल में उसने समय का अच्छा उपयोग किया था । पहले ही वह लेख कहानी आदि लिखता था और इस नाते उसने कुछ प्रसिद्धि भी पाई थी । १९४५ की मई में वह जेल से छूटा तो उसने घर में आकर देखा कि पिताजी का स्वास्थ्य बिगड़ चुका है और घर मुश्किल से चल रहा है । जेल में जसा भी भोजन-वस्त्र था मिल जाता था कोई चिन्ता नहीं थी पर बाहर निकलते हैं राजनाति की तो नहीं दूसरी तरह का चिन्ताघ्न न उस पर लिमा । महंगाई बढ़ती जा रही थी, यहाँ तक कि योग पुराने युग की याद बड़ चाव से किया करने से और अपने जमाने को बुरा बताने से । जयदेव ने सुना—

खुशालसिंह की सरदारनी कर्तारो अपनी खिचकी से बोल उठी— धी सानं क दिन गए । अब तो वामारी सामारा में डाक्टर बटगा ता बातल में ही धी आया करेगा । बहिन हम लोग अब धी की मुग्ध से ही सन्तोष कर लते हैं ।

बचपन से जयदेव ने गरीबी ही देखा थी, परन्तु जन के यौन दोष उनसे स्वाय की चिन्ता न करने वाले त्यागी बीर की भावना से बाटे थे और भविष्य में योग्यता के धन पर निरंतर सफल जीवन के स्वप्न बाँधता रहा था । वहाँ से लौट कर घर में दारिद्र्य का यह उत्कट रूप उम्र अधिव असह्य लगा । जयदेव ने पिता के सामने बड़ किया कि वह घर बाँडेज में नहीं पंग्या ।

यद्यपि अभी पाकिस्तान बहुत दूर था यहाँ तक कि प्रान्तीय स्वराज्य के सिना में पजाब में लीगी मन्त्रिमण्डल कायम नहीं आ सता था फिर भी हिन्दुओं के लिए परिस्थिति खराब हो चुकी थी । एक हिन्दू न गिनायत की और जयदेव ने सुना, — 'यूनियनिस्ट मिनिस्टरी में हम लोग के लिए नीरनिया कहाँ ? मुत्तरमान और जाट का सक्किण्ड डिबीजन बी० ए० पाम पर नीकरी मिल सक्ता है । हिन्दू के लिए एम० ए० फस्ट डिबीजन करी भी जगह नहा ।' दूसरे मित्रों में भी

आर्थिक कठिनाई की बानें सुवन को मिली ।

जयदेव ने जेल म कुछ कहानिया लिखी थी, उही का इधर उधर छपवाना शुरू किया, जिसम उस जमान के अनुमार कुछ-कुछ पारिश्रमिक भी मिलता चला गया । स्मरण रहे कि उसका यह लेखन-काय सय उदू म हा रहा था । अपनी कहानिया के सिलसिले म उसका परिचय एक प्रकाशक पण्डित गिरधारी लाल की मभनी लडकी बनक से हुआ था । बनक का उदू पगई गई थी, उसन अपन आप हिंदी पढी थी पर बाप का अगवार उदू म निकलता था, इसलिए उदू के प्रति उसका भुकाव ज्यादा था । जय जयदेव न दगा कि परिवार की हालत अच्छी नही है तो उसन कही नौकरी करन की साची ता वह एक प्रकाशक के यहा गया जहा उसकी बहुत आवभगत हुई, पर ज्या ही मालूम हुआ कि वह एक कहानी लेखक के रूप म नही आया है बल्कि नौकरी मागन आया है, त्याही उसकी हालत अजीब हो गई । कुर्मी पर बठाय जाने समय वह सम्मानित कलाकार अतिथि था, उठत समय कणिग साहब के अधीन पन का एक नौकर । अनुभूति बहुत बटु थी, परतु जीविका का अवलम्ब हाथ म आ जान की सात्वना न उसे सह्य बना दिया ।

जयदेव और बनक म प्रेम सम्बन्ध हो गया ता भीतर ही भीतर के लोग मिलते मिलात रह । जयदेव न उदू अगवार म नौकरी कर ली थी और बीच-बीच मे बनक स मिला करता था । जयदेव के विचार कुछ आतिकारी नही ता गम अवश्य थ । उसने १९४६ की नाविक नाति पर एक टिप्पणी दे दी जो बहुत गम समझी गई और उस टिप्पणी के कारण कई लाग उसके साथ आ गए जिनमे स्टेट पेत्रगन और कम्युनिस्ट पार्टी के लाग असद प्रद्युम्न आदि थे । एक मभा हुई जिसम जयदेव का भाषण हुआ पर जयदेव कम्युनिस्टा म मिल न सका क्याकि उस समय कम्युनिस्टा की नीति पाकिस्तान बनान की थी । जयदेव कम्युनिस्ट दल के जातिया के आत्म निणय क अधिकार की मांग का अर्थ यह समझता था कि हिंदुआ और मुसलमाना का दो पृथक जातिया मान कर देग का पाकिस्तान और हिंदुस्तान म बटवारा हा । जयदेव देग का बटवारे मे बचान का उपाय समझता था । इस विक्ट समस्या पर बहम करन क निय स्न्डी सकल (विचार सभायें) हाने दे ।

तारा की सहानुभूति कम्युनिस्टा क दृष्टिकाण क साथ थी यह जयदेव का अच्छा नहा नगा ।

पाकिस्तान निमाण क मसल को लेकर लाहौर गहर क अन्दर काफी चखचल मची हुई थी और राजनतिक पहनु के अतिरिक्त बहुत तरह की बानें भीतर ही

भीतर चल रहा थी और परिस्थिति का बिगाड़ रही थी, जस एब नमूना नीजिए

नवयुवनी न उत्तर दिया—“बहनो हिन्दू फेरी वाल आयेग क्या नही ? तुम जानती नही मवा भण्डी पर तो मुसलमानो का कच्चा है। हिन्दू माल खरीदत है ता मुसलमान दाम चढा दते है। अपन भाई को दो पसे जगाना भी न्यि तो क्या। हम इन मुसलो का पेट पात्रेगे ता य एक दिन हमारे हा पेट म छुरा भोवने भी तो आयेग। हमारे मुहल्ल म तो सब बहनो ने कमम खा ली है कि बिना मुसलमान मे सौदा नही खरीदगी।’

यही घाड़ी तर रक कर यह बता दिया जाए कि हमारी राष्ट्रीयता के उदय का न स ही उसमे शक़ीब तत्त्व शामिल थ। एस बिन्द्य प्रतीक और सदभ थ, जिह मुसलमानी आने पचा नही सकती थी साथही एन हन तब अग्रज क इशार पर और एक हद तक अय धर्मों की तरह इस्लामी कट्टरता क कारण स्वय मुसलमाना म मर मयद म नेकर हानी आदि बबिया के जरिये मुसलमाना म एक अलगव की भावना पदा की जा रही थी। यहा इमके ब्योरे म जान की आवश्यकता नही है पर स्वतंत्रता क कुछ पहन जा गडगडाहटें मुनाई द रहा था उनका चित्रण यशपाल न किया है। जसे—

जानदेवी कहती गई— बम्बई म मुस्लिम लीग ने १६ अगस्त १९४६ स हिन्दुओं स लडाई छेड़ दी है। मर गम कहत है हम पाकिस्तान बनायेंगे। हम आधा हिन्दुस्तान लेंगे। पंजाब पाकिस्तान म लेंगे। हिन्दुओं को यहा स निवाल देंगे ।

बसन्त कौर बाल उठी— ‘ए है निवाल देंगे। पंजाब उनके बाप का है। पंजाब ता सदा हिन्दू सिक्का का ग्हा है। इन मरे मुसलमाना का राज दिल्ली, आगरा, लखनऊ म रहा होगा। पंजाब तो हमारा है।’

पर तारा जसी कुछ स्त्रिया भी थी जो यह कहती रहती थी कि अग्रज हा यह लडाई कराते रहत हैं

तारा न बात बदलने के निय जानदेवी का गम्बाधन किया “बहिन जी, हिन्दू मुसलमान का भगडा ता ब्यभ का शूलता है। भगड कर जायेग क्या ? यही तो दाना का घर है। असली लडाई तो अग्रज से है जिसा मुल्क पर कच्चा जिमा हुआ है।’

धीर धीर परिस्थिति बदलता चली गई। राज तरह-तरह की सभायें हाता धीर उनम तरह-तरह क नार गगन

रस भीड़ म से प्रति सध्या घुल्लाहा अन्धर ! मुस्लिम-लीग जिंदाबाद !

कदेम्राजम जिंदावाद ! खिजर मिनिस्ट्री मुर्दावाद ! लीग मिनिस्ट्री कायम हा ! हिंदू मुस्लिम इत्तहाद जिंदावाद ! पाकिस्तान लक रहंगे के नारे लगात हुए जुलूस निकलते । इन जुलूसों का आकार बहुत बड़ा न होता । कुछ मुस्लिम लीग के स्वयंसेवक, कुछ विद्यार्थी या मध्यम श्रेणी के मुसलमान युवक ही हर भण्डे लिय इन जुलूसों में रहत थे ।

यंगपाल ने अपनी पुस्तक में उन दिनों का लगभग तारीखवार इतिहास प्रस्तुत किया है । पर यह इतिहास इस तरह प्रस्तुत किया गया है कि उपर्यास के प्रवाह में कोई रुकावट नहीं आती । जेम्स जायस के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि उन्होंने अपनी पुस्तक में डवलिन गहर का एना चित्र जगह जगह प्रस्तुत किया है कि यदि किसी कारण से डवलिन गहर समाप्त हो जाए तो जेम्स जायस की कितनी स उसका पुनर्निर्माण सम्भव होगा । इसी प्रकार से यंगपाल ने लाहौर का न केवल भूगोल बल्कि उन दिनों का इतिहास भी प्रस्तुत किया है ।

लीग का आयोलन बहुत बढ़ता जाता देखकर खिजर मिनिस्ट्री ने अनेक नगरों में दफा १४४ लगा कर जुलूसों और सभाओं पर रोक लगा दी थी । लाहौर में मुस्लिम लीग ने दफा १४४ के विरोध में अहिंसात्मक सत्याग्रह आरम्भ कर दिया । आंगा नहीं थी कि लीग भी कांग्रेस की भांति अहिंसात्मक रह कर आन्दोलन जारी रख सकेगी । आशा थी कि लीग के स्वयंसेवक उत्तेजित होकर मार पीट बरेगे और सरकार की सत्तन शक्ति के सामने दब जायेंगे । मुस्लिम लीग के बड़े-बड़े नेता, फिरोज खा नून इफतखारुद्दीन, गजनफरअली खा सत्याग्रह बरके जेल चले गये थे परन्तु प्रति दिन लीग के स्वयंसेवकों का अहिंसात्मक जुलूस निकलते । पुलिस उन पर लाठी चलाती । स्वयंसेवक अहिंसात्मक रह कर 'अल्ला हो अकबर ! मुस्लिम लीग जिंदावाद ! खिजर मिनिस्ट्री मुर्दावाद ! पाकिस्तान ले के रहेंगे ! लीग मिनिस्ट्री कायम हो ! हिंदू मुस्लिम एक हो !' के नारे लगाते रहते और गिरफ्तार हो जाते ।

इन जुलूसों में रलवे मजदूर और स्टूडेंट फेडरेशन के लोग भाग नहीं ले रहे थे । परीक्षार्थी समीप आ रही थी । तारा अधिक से अधिक समय पढाई में लगाने लगी थी पर कभी स्टडी-सकल की खबर पाती तो चली भी जाती । असद प्राय मिल जाता, परन्तु अकेल में दर तब बात कर सकने का अवसर नहीं आया ।

तारा के साथ असद की दोस्ती बढ़ती जा रही थी । पर साथ ही देश का नाटक दूसरे ही ढंग से परिपक्व होता जा रहा था और वह तारा और असद के मिलने के बिल्कुल विपरीत जा रहा था । यंगपाल ने उस दृश्य का भी बर्णन किया है जब मास्टर तारासिंह ने मुसलमानों का धमकाया था और उसके कारण स्थिति

मुघरन के बजाय विगडती चली गई थी ।

मास्टर तारासिंह न प्रधान की अनुमति की प्रतीक्षा न कर अपना भाषण आरम्भ कर दिया— हम पंजाब में मुसलमानों की हुकूमत हर्गिज बरदास्त नहीं करेंगे । आप लोग तबारीक़ को मत भूलिये । सिक्खों की मुसलमानों के खिलाफ़ लड़ लड़ कर ही इतनी बड़ी हुई है । अगर हम मुसलमानों की हुकूमत बर्दास्त करनी है तो श्री दसभंग (गुरु गाविर्दासिंह) ने ओतार किसलिए धारण किया था ?”

फिर तो हत्यायें आदि गुरू हो गई । पहले दोलू मामा की हत्या का दृश्य दिखाताया गया है जिस मुसलमानों ने मारा था । वह एक बहुत ही साधारण और निर्दोष व्यक्ति था जिसे हिन्दू और मुसलमान सभी पसन्द करते थे और पीढ़ी दर पीढ़ी सभी उसे मामा कहते थे ।

इसी के साथ तारा के विवाह की बात भी चल रही थी । असली बात तो यह थी कि तारा का विवाह उसी समय सामदेव नामक एक व्यक्ति से तय हुआ था जिस तारा नहीं चाहती थी । तारा तो असद के साथ विवाह करना चाहती थी । उधर बनक का भी बुरा हात था क्योंकि बनक के पिता बड़ आदमी थे और उन्हें मालूम हो चुका था कि वह जयदेव से प्रेम करती है । हद तो यह है कि उसका पत्र भी छिप कर पढ़े जाते थे । फिर भी बनक पुरी से उस समय हवालात में मिल आई जब कि वह हिन्दू मुस्लिम भगड के गव में गिरफ्तार होकर बाँध था । बनक के बहनोई ने बनक को तरह-तरह से समझाया कि प्रेम करना और बात है और शादी करना और इत्यादि इत्यादि । इस तरह उसने ब्रह्मास्त्र के रूप में बनक से यह कहा कि जयदेव या तो प्रेम का बड़ा प्रतिपादक बनता है पर तारा का विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध कर रहा है । बाद में जब जयदेव से बनक ने इस सम्बन्ध में पूछा तो जयदेव साफ़ झूठ बोल गया । उसने यह कहा कि तारा की सगाई पहले ही चुकी थी और तारा ने कभी झुल कर विराप नहीं किया, इत्यादि इत्यादि । तारा को गादी हा गई और उसके पति को मालूम हो गया कि तारा उस से शादी नहीं करना चाहती थी । इसलिए उसने एक दिन उसकी बहुत मारपीट की जिससे वह लग आवर भागी और एक मुसलमान के हाथ लग गई जिसने उस पर बलात्कार किया । उस बलात्कार में उसका परिवार और पत्नी से क्या परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई यह स्पष्ट न निष्पक्ष होकर दिखाया है । उसका बाद मुहल्ले वाली मुसलमानियाँ ने उसका किम प्रचार मन्त्र का यह भी दिखाया गया है । तारा की हालत ऐसी हो गई जो इन सब में यत्न है

‘तारा बार सुनी हुई बात बाद बाद—मनुष्य के चाहने में कुछ नहीं जाना

होता वही है जो भगवान् चाहता है। भगवान् अभी मेरा और क्या करना चाहता है ? मुझ और क्या दण्ड देना चाहता है ? पिछले जन्म के एम क्या पाप है ? कौन से पाप ? इस जन्म के किन कर्मों का दण्ड है ? मोमराज से विवाह न करने की इच्छा का ? या असद के साथ चल जाने की इच्छा का ? सामराज से तो विवाह कर ही लिया। अब मेरा और क्या हान का पाप है ? मरने की भी स्वतन्त्रता नहीं। गामद नरक का यातना से नरक की नट्टी में जाकर जताय जाना, गरम तल में खोलाय जाना, आर से सिर चोरा जाना बाकी है जो होता है जल्दी ही ।

यह स्थिति कुछ-कुछ अस्तित्ववादो परिस्थिति से मिलती है। पुरी की भी ऐसा हालत हो चुकी थी जिसका वर्णन यों किया गया है —

‘वसी चिन्ता अब उस (पुरी का) व्यथ जान पड़ता थी। लाखा आदमिया का ममाज उसके विचार से नहीं चल सकता था। मानव मधुमखिलया का छत्ता जान किस सामूहिक प्रेरणा में चल रहा था। उस सामूहिक भाग में अज्ञान भाग किमी व्यक्ति के लिए अपना लेना सम्भव न था। इस समूह में सभी की अपनी अपनी विन्ताएँ भी थी।’

तारा और कनक की परिस्थितियाँ में हम हिन्दू ममाज में स्त्रियाँ की हानन को अच्छी तरह देख सकते हैं। साथ ही, विभाजन से किस प्रकार तारा और कनक पर प्रभाव पड़ा और किस प्रकार वे अपने प्रेमिया से मिल नहीं सकी, इसका पूरा ध्यान आ जाता है। गंगपाल ने न केवल यह दिखलाया है कि हिन्दुओं ने मुमन माना पर अत्याचार किए और मुसलमानों ने हिन्दुओं पर अत्याचार किए, बल्कि वह स्थिति भी दिखाई जब हिन्दुओं ने हिन्दुओं को नूटा—

पुरी की गदग पर कोई मजबूत पजा बस गया था और नाक के मामन पना छुरा था। उस का मिर चकरा गया। सुनाई दिया—

‘घड़ी उतार दे ! खबरदार ! मुह से आवाज नहीं निकल !’

सोचन का समय न था। पुरी की सौस धोवनी की तरह चल रही थी। उसका दाहिना हाथ बाइ कलाई पर से घड़ी उतारने लगा। सामने खड़े आदमी ने छुरा एक हाथ में थामे उसकी जेब में बलम खींच लिया और फिर उसका कमीज की जेब टटोल कर पतलन की जेबें भी टटोली। संझम रुपये और छ आने पाच पस के साथ हाँ बकम की बची रह गई चाबी भी जेब से निकल गई।

घड़ी उतारते-उतारते पुरी कुछ साच सकने की अवस्था में हो गया था, साहम कर बोला—‘भई, मैं तो मुहाग हिन्दू भाई ही हूँ।’

वही परिस्थितियाँ में भारत और पाकिस्तान दो गन बन गये और ‘भूटा

मच के इस पहल भाग का अंत ड्राइवर के इन अत्यन्त मामिक शब्दों से होता है

“ड्राइवर ऊँचे स्वर में बोला

रब्ब न जिह एक बनाया था, रब्ब न बाद ने अपने वहम और जुल्म से उस दा कर दिया।’

इसके बाद दूसरा भाग शुरू होता है जो पहले भाग से भी बड़ा है।

डिमाई आकार के ७१० पृष्ठों में यह भाग समाप्त हुआ है। पर यद्यपि यशपाल ने क्या प्रमाणित किया है इस यदि हम देखें तो हम कुछ आश्चर्य होगा। इसमें मुख्यतः दो पात्र हैं—एक पुरी और एक सूद साहब। पुरी अब नाहौर में भागा हुआ एक शरणार्थी है। उस रूप में यशपाल ने शरणार्थियों की सारी समस्याएँ उन पर आन वाली सारी विपत्तियाँ और किस प्रकार से इन शरणार्थियों ने अपने पुरपाय से मिर ऊँचा करके फिर एक बार धरती पर पग जमा लिए महँ दिलाया है। सूद का जीवन एक कांग्रेसी नेता का जीवन है वह सत्य व बहुत पास रहने की चेष्टा करता है वह जान बूझ कर कोई बड़ी बर्झमानी नहीं करता फिर भी बहुत सी छोटो छोटो बर्झमानियाँ हाँ ही जाती हैं। वह अपने दल के प्रभुत्व तथा नेतागिरी का कायम रखने के लिए अधिक तो नहीं, पर कुछ न कुछ जाल फरेक रचता हाँ रहता है। वह बल बढ़ते भन्नी तक हो जाता है पर अंत में हम यह देखते हैं कि वह अपनी सारी चानाकियाँ व बावजद सनह सी बाटा से हार जाता है। इस पर एक पात्र कहता है और यही उपन्यास के अन्तिम शब्द हैं— गिल अब तो बिनाम कराम जनता निर्जीव नहीं है। जनता सदा सूब भी नहीं रहता। देश का भविष्य नताया और मंत्रियाँ की मुठ्ठी में नहीं है देश की जनता के ही हाथ में है।

इन शब्दों से क्या ध्वनि निकलती है? क्या यह ध्वनि नहीं निकलती कि लोकतंत्र में ही सारी समस्या सुलभ सकती है और भ्रान्ति की कोई आवश्यकता नहीं है जब कि समाजवादी विचारधारा का यह एक तरह से मौलिक उपपाद्य है कि लोकतंत्र से भले ही किसी क्षेप में कुछ हो जाए पर लोकतंत्र असल में यह भ्रम जीर का पत्ता है जिनमें पूँजीवादी बग का मुखारपण तथा उसकी नग्नता डबी रहता है।

इस प्रकार आधारभूत रूप में यशपाल ने एक पुस्तक लिखी है जो लोकतंत्र की वास्तविक चर्चा सकती है और जो कट्टर समाजवादी विचारधारा के विरुद्ध जा सकती है। दूसरे उत्तर में यह कहा जा सकता है कि यशपाल ने यह जा कहा है कि देश का भविष्य जनता के ही हाथ में है ता जनता बाट भी द सकती है और भ्रान्ति भी कर सकती है। हम उपन्यास में केवल बाट दन का हाँ पहलें लिखा गया

है। पर इस कारण जनता के हाथों से शान्ति का अस्त्र छीना तो नहीं गया है। इस पुस्तक में यत्र-तत्र काग्रस तथा काग्रसिया पर मन्व्य तथा टिप्पणियाँ की गई हैं जो यह व्यक्त करती हैं कि काग्रसी कितने गिरे हुए है। एक जगह लेखक एक पात्र से कहलवान हैं— भूखा मरत के जल बाटत थे तभी तक भल थे। क्या कहत है कुर्सी पर बैठत ही निमाग विगड गए। कुत्त को घी घाड ही पचता ह।'

एक और अर्थ पात्रा नस मर्ती कहती है— इन काग्रसिया का तो सभी जगह यही हाल है। अस्पताल में जिम देला मिनिस्टरा और पार्लियामण्ट के मेम्बरा की चिट्ठी लिए चला आ रहा है। जुकाम हो जाएता बाड म जा लटतेह और सब कुछ मा करवा लेत ह। जो गरीब हैं उनके लिए जगह नहीं है। डाक्टर अन्न ऊपर के लोगो को यह करत देखत हंता जहा मौका दलत हैं वह भी हाथ मार लत है।

लेखक ने विशेषकर पंजाब धारा सभा की भीतरी दलबन्दी और काग्रस का गुटबन्दी के विरुद्ध किसी पात्र के मुँह से नहीं, बल्कि अपनी तरफ से कुछ बातें कही हैं जो ध्यान देने योग्य हैं— अग्रजी सरकार के पुराने रायबहादुर और खरख्वाह अन्न सभाइ और सरकारी अमलदारी से लाभ उठाने वाले लोग काग्रस के मन्बर बन कर सफ़ेद नोकिली टोपी पहनने लग थे। अर्थ काग्रस का चूना चार चार अन्ने और रुपए रुपए का रसीदा से इकट्ठा नहा किया जाता था। चुनाव पण्ड में चूना मिलो और कम्पनिया से बीस चालीस हजार और लाख दो लाख रुपए के चूना से आता था। काग्रस से सम्बन्ध रखने वाले जो लोग चार साल पटल सी सवा सी की नौकरियों से निर्वाह कर रहे थे अर्थ अन्न सम्बन्धी के मन्त्री बन जाने या किसी महत्त्वपूर्ण कमटी के मेम्बर बन जाने पर जहा-तहा हजार बारह सौ पाने लगे हैं। मन्त्रियाँ के मन्त्रिक भी पास न कर सकने वाले सुपून सरकारी विभागा के अध्यक्ष बन कर हजार रुपए मासिक से भी असन्तुष्ट थे। मन्त्रियाँ के दामादा के लिए मन्त्रिग डायरेक्टर से नम कोई पद सोचा ही नहीं जा सकता था।

मुनाफे को ही धर्म समझने वाले बड़-बड़े पूजीपति काग्रसी लोग के प्रति अर्थात् और उदारता घाटा उठा कर नहीं दिखा रहे थे। ऐसे मामलों की अफवाह और सवाद सब लोगो की जवाना पर थे। लोग धारा-सभा के सदस्या (मन्बर आफ लेजिस्लेटिव असेम्बली) को एम० एल० ए० न कह कर घृणा से मल लोग कहने लगे थे। काग्रस के मुकाबल में कोई दूसरा सदावन राजनतिक सगठन नहीं था। नए उठते सगठना में से राष्ट्रीय-सर्वक सध और कम्युनिस्ट पार्टी न विद्रोह खडा करने काग्रस सरकार को उह कुचल डालने का कानूनी अवसर द दिया था। लोग जानते थे कि चुनाव में काग्रस ही विजयी होगी। निराशा की उपशमा में लाग वह दत थे—देह ही राज करसन दा यह पाच बरस में ला रह

है इनका पट कुछ ता भरा हागा इनका पट थोड़े म पूरा हो जाएगा । दूसरा कोई भाएगा तो जितना यह खा खुब है उतना खा कर फिर और खाएगा ।

कांग्रेस सत्ता स एसी निराशा और अविश्वास म ऐसे भी कांग्रेसी नेता और मंत्री थ जा अफवाहा के अपवात् थ । सूद जी क लिए न जमीन जाबदाद बंदोर लेने की निंदा थी न मकान सडा कर लन और बक बलन्स जमा करने का अफ वाह थी । सूद जी के विरोधी भी उ ह जर जन-जमीन क मोह स मुक्त मानते थे । उनके हजारों ममथका न लाभ उठाया था । हजारो लाभ उठान की आशा म थे । व सब लोग तन-मन से सूद जा क समर्थक थे । उनकी सहायता के लिए तत्पर थे ।

सचक न यह भी दिखनाया है कि जिन लोगो न जेल नही काटी उन लोगो का भी राजनैतिक पीडित करार अने हुए सर्टिफिकेट दिए गए । तारा न यह भी देखा कि उसक किसो समय क पति पर अब अपनी भाभी क साथ रहन वाले सोमराज को राज्य कांग्रेस कमेटी के कागज पर राज्य कांग्रेस कमेटी की मुहर सहित यह सर्टिफिकेट दिया गया था कि उसन राजनैतिक कारणो म दो बर जेल काटी ।

कांग्रेसियो क अतिरिक्त और भी गहराई म जाकर गणपाल यह भी दिख लाने हैं कि बनमान समाज मे वकील और कानून नाय क लिए नही हैं, बलिन नाय को गुमराह करन वाल हैं । वह कहन हैं— वकील कानून क दाव-बैचा स नाप पर सक्ता कितना कठिन बना सकन हैं । वकील सभा विवांग म दोना ही पंगो के समथन म कानून और युक्तिया पेश कर सकत है दोना ही पंगो क समथन म कानून की व्याख्या कर सकन हैं । दो बहून अमीर पंगो म मुकदमा हाने पर दाना ही आर स बहुत कानूनग वकील सडे होते हैं । अदालत वास्तविकता स अनजान बन कर दोना पंगो की गवाहिया और तकों के आधार पर निणय द दती है । लोग तथ्य को जात हुए भी उस निणय का स्वीकार करन क लिए विवग हो जात हैं क्याकि उस निणय क पीछे नासन की शक्ति रहनी है ।

मैंन सवम पहन इस उपयास क राजनतिक पक्ष का निमा । इससे यह नही समझना चाहिए कि इस उपयास म केवल राजनीति ही राजनीति है । नही, यह उपयास बहुत विस्तृत अर्थ म जावन क सभो पटलुआ का प्रतिनिधित्व करता है । बनी क जीवन म हम यह दगन हैं कि हिन्दू समाज किनना गुमराह और बेग हा सकता है । बनी बडी मुर्तिना म दू-डाइ कर अपन पति क घर पटुकी को उम उमर पर बाना ने निवान लिया । कहा गया कि तुम्हारा धम नष्ट हा

गया है। इस पर एक नौजवान ने प्राथमिक विवाह पर धक्का देकर कहा—
 बसों! बसूर तुम्हारा नहीं तो किसका है? पर उसका कोई असर नहीं हुआ।
 पता को घर में घुसना नहीं दिया गया। फट्टे से आवाज हुई। बत्ती ने अपना
 माथा दहलीज पर पटक दिया था। पांच दम प्रीम बार बत्ती दहलीज पर माथा
 पटकती गई। उसका गला रूब गया परन्तु वह दहलीज पर अपना सिर मारती
 ही जा रही थी। अन्त में बन्ती वहीं मरी मित्री। जब वह मर गई तो उम मनी
 बना लिया गया। इस घटना में श्रीरामदास, तागा के पूरे जीवन में अणुपाल न
 भारतीय हिन्दू नारी की दुखभरी कहानी लिखी है जो अविस्मरणीय है और
 जिसके लिए हमारा घम जिम्मेदार है।

उपयाम में अणुपाल परिवार का चित्रण श्री बट्टन मुत्तूर रूप में हुआ है।
 काप्रस का भक्ति और माय ही माय सब तरह के नतिक मित्रता को तिनार्जित
 देना मिमज अणुपाल का यह कहना कि मैं तब तक जरा मुह धोकर म मरी
 पहर की साडी बदल लू कमर पर मूज की तरह गड रही है बहुत ही मामिक
 है। इही मिमज अणुपालान आ गाधा जी की मृत्यु का समाचार सुन कर
 जल्दी से पहर की साडी पहन ली थी। वह गाधी जी के सब के साथ जुलूस में जाने
 के पहले शिवनी को बुलाकर बोली— 'मा जी को कह कर हमारे और साहब के
 नाशने के लिए पराठ बनवा दो। हम दोपहर में खान के लिए नहीं आएंगे।'

अणुपाल परिवार के चित्रण में अणुपाल शायद उन पूजापति परिवारों का
 चित्रण करना चाहते हैं जो काप्रस के बहुत निकट थे और युद्ध कोप में लाखा और
 काप्रस को हज़ारा रुपए का चंदा देते थे। इन चित्रणों के अनावा लेफ्ट ने यश
 तत्र काप्रमिया के विरुद्ध बहुत तरह के विद्रूप किए हैं जैसे लीजिए— 'काप्रमिया
 न गाधा जी से एक हाँ बात मांग ली है कि चाहे जिस तडकी या स्त्री के कपड़े
 पर हाथ रख लें। सभी अपने को राष्ट्रपिता समझने लग है।'

एक जगह एक पात्र उतेजित होकर कह रहा है— दो हो सान में 'गाधी की
 जय खोलती पड गई है। सब शासन पुरान आई० सी० एस० लोग चला रहे हैं।
 उन लोग न सेवा करना नहीं शासन करना सीखा है। उन्हें डमोने सी नहीं, ब्यूरा
 त्रभी चाहिए। वही कानून है वही पुलिस का राज। अब भी बिना मुकदमा चलाए
 कल, बन्कि 'डिपेंस आफ इंडिया ऐक्ट' में पुलिस के हाथ लम्बे हो गए हैं। पुलिस
 रिमकुल निरकुल हो गई है। आईकोन लोग को छुडवा देती है पुलिस दूसरी दफा
 ल्या कर पकट लती है। हम तो शरम खाती है कि अंग्रेज सरकार न अणुपाल में
 दिए भगवतसिंह के बयान का ज्वन नहीं किया था, पर इस सरकार ने गोष्ठी का बयान
 ज्वन कर लिया है। क्या इनके पास गोष्ठी के लिए जवाब नहीं है? मुह बंद कर

दना डेमोक्रसी है ? वृपलानी ठीक कहते हैं रेवोल्यूशन म यह कभी नहीं होता कि पुरान ही शासक बने रह ? रेवोल्यूशन इज चेंज आफ एलस (शासित म शासक बदल जाते हैं) । रेवोल्यूशन हुआ कहा आप ही बताइए ?”

इस उप-यास क मुरय पात्रा के जीवन पर यदि दृष्टिपात किया जाय ता ऐसा पान होगा कि उनके जरिय युग सम्पूर्ण रूप से अपन पूर वैविध्य म प्रतिफलित हो रहा है । इस उप-यास म सबसे मुख्य पात्र जयन्त है । यदि दश का विभाजन न होता ता हम आगा करते है कि वह अपनी लेखन प्रतिभा की दलीलत किसी पत्र का सम्पादक हा जाता या जसा कि उस युग म होता था, वह स्वय किसी मित्र की महायता म एक पत्र निवालता और उसका सम्पादक और प्रकाशक हो जाता और समाज पर अपनी छाप छोड जाता । जयन्त पहले से एक साधारण भद्र युवक के रूप म विवसित हो रहा था कि तभी १९४२ के आन्दोलन म वह जेल गया । वही से उसन माना अपने जावन का मूल स्रोत दूसरा को अपित कर दिया और वह मूल स्रोत से बहका तो नहीं पर किसी न किसी रूप म स्रोत का गिवार होता चला गया । यदि वह जेल न जाता तो वह एम० ए० पास कर लेता और लेखक के साथ साथ डिग्रीधारी होने के कारण वह एक सफल नागरिक बन सकता था, पर जेल जान के कारण वह बराबर विरोधी परिस्थितिया मे जूझता रहा और अत म हम उस एक बेमान छोटे मोटे नेता के रूप म देखत हैं ।

यही बात उसकी बहन तारा के सम्बन्ध म भी कही जा सकती है कि उसका जीवन म युग का प्रतिफलन भरपूर है पर बिल्कुल दूसरे ही आयाम म । जिस मोमराज क साथ उसकी गानी हुई थी वह गानी तो हर हालत म होती, चाहे देश का विभाजन होता, यह भी कम कहा जा सकता है ? यदि उसका भाई जेल जा कर न आता और उसका पिता की आर्थिक हालत न बिगडती और वह हालत सिगडा क कारण उसके भाई की बचन घर म न घट जाती, क्याकि वह राटिया क लिए पिता परनिभर था ता गायद भाइ उसकी मदद करता और सगार्द क बावजूद वह यह गानी न हान दता । तब तारा क लिए असम म गानी करना मुश्किल न होता और असम उन आसानी न स्वीकार भी कर लता । असम न ता उस इमलिए स्वीकार नहीं किया था कि कही इममे हिन्दू मुस्लिम कमाम्य और न बण जाण और लाग यह न समझे कि असद क दल का काम हा यह है कि लकिया का गला रास्ते पर न जाना । फिर भी यन्ति मान लिया जाय कि तारा की गानी जग हुई एम हा हानी और यह उगी तरह म पति क हाथ मार ताकर घर म नागता तो विभाजन हान पर वह नम्बू क न हाथ न पडती और इग प्रकार वह, जो कहा की न रहा, बगी न हानी ।

इसी प्रकार प्रमुख पात्र सूद साहब व विषय म हम दम चुक हैं कि किम प्रकार वह शरणार्थी बन कर आए और धीरे धीरे एक टांगी नेता बन । जसा कि हम पहले बता चुके हैं, उपचार्य की मफनना उसी म है कि पात्र मुख्य हा या गौण उनके जरिये स युग प्रतिफलित हा पर साथ ही सभी लोग अपना अपना जीवन जीत हैं, सभी राजनैतिक उपचार्य कलाकृति बन सकता है ।

इस प्रकार हम पुस्तक म अभी हान के मात्रा का बहुत विस्तार क साथ वणन और चित्रण है । सम्भव है कहीं-कहीं अक्षरसय और अनिरजन हो, लेखक के श्रांतिकारी संस्कार उनम प्रतिफलित है, पर लेखन न जो कुछ भी कहा है वह बहुत जबरदस्त तरीके से कहा है और अवसर उम कना का नामा पहचान म सफलता प्राप्त की है । वह वनमान शासक म बहुत अमृतुष्ट हैं पर उनकी इतनी बड़ी पुस्तक म वैकल्पिक नामका की कोई अपरेखा हमार सामन नही आती जिमम मान लिया जाए कि लोग गए गुजरे हैं उनकी जगह म लें । पता नही लेखक अपन पाठक से क्या और किन लागे की सिफारिश करता है ? उहान यह ता लिखा है— 'एक महात्मा क पीछे हजारों पायण्डी होने हैं । भगतसिंह या रेवायूनारिया का अनुकरण पाखण्ट म नही किया जा सकता । वहा तो जान की बाजी ही सब कुछ हाती है ।' पर वतमान समय म भगतसिंह और श्रांतिकारिया का क्या रूप हागा और क्या रूप है, इसना लेखक न स्पष्ट नही किया । हम इसक लिए लेखक का दोष नही देने क्याकि जो लोग आज अमृतुष्ट हैं उन सबकी विचारधारा म यही सामा है । व वनमान की बुराई करत हैं और बहुत कुछ सही बुराई करत हैं पर अवसर काई विकल्प सामन नही रगत । उस प्रमाण्ड उपचार्य म भी काई वैकल्पिक द्दगित या दल या व्यक्ति सामन नही आता जिमक सम्बंध म पाठक यह वह मके कि भई, य लोग तो खराब हैं य अन्द्रे हैं ।

फिर भी यह मानना पडेगा कि यह उपचार्य एक बहुत ही महत्वपूर्ण अभिनेत्र है जिमस हमार समाज क हर पहलू और हर हिस्म पर तज रोगनी पडती है । हम किमी उपचार्यकार म यह आगा करें कि वह हम रास्ता भी दिनाएगा ता यह शायद बहुत अधिन आगा करना हागा । लेखक इस उपचार्य म यह माफ कर दना है कि वनमान समाज म बहुत-कुछ सडा हुआ, गला हुआ काडा लगा हुआ जहरीला है और उसे सुधारन ताडकर बनान की जरूरत है । पर यह कम हागा उनके लिए क्या क्या साधन काम म जाए जाएग, इस पर पाठक स्वय सोचें ।

अत म हम लेखक की तकनीक क सम्बन्ध म एक मौखिक प्रश्न उठाना चाहते हैं । क्या उपचार्य लेखक को यह आज्ञादी है कि वह इतिहास प्रसिद्ध

ना डमात्रेमी है ? वृषनाजी टीक कहते हैं खो-पूगन म यह कभी नहीं होना कि पुरान ही गामक बने रह ' रेवो-पूगन इज बेंत भौंइ एतम (शानि म गामर एतन जान है) । रेवान्पूगन हुआ कहा आप ही बनाए ।

उस उप-याम के मुख्य पात्रों का जीवन पर यदि दृष्टिपात किया जाय तो एना पान हागा कि उनके जरिये युग सम्पूर्ण रूप में अपने पूरे वैविध्य में प्रतिफलित हो रहा है। इस उप-याम का सत्रम मुख्य पात्र जयदेव है। यन्त्रि दंग का विभाजन न होना तो हम आगा करते हैं कि वह अपनी लगन प्रतिभा की दशैलत किमी पत्र का संपादक हो जाता था जमा कि उम युग में होता था वह स्वयं किमी मित्र की सहायता में एक पत्र निकालता और उसका सम्पादन और प्रकाशन हो जाता और समाज पर अपनी छाप छोड़ जाता। जयदेव पहले ' एक साधारण' भद्र युवक का रूप में विकसित हो रहा था कि तभी १९४२ के आन्दोलन में वह जेल गया। वहीं में उमन मानो अपने जीवन का मूल खान दूसरा को भपिन कर दिया और वह मूल खान ने वहका तो नहीं पर किमी न किता रूप में खोत का गिकार होना चला गया। यदि वह जेल न जाता तो वह एम० ए० पास कर लेता और लेखक के साथ साथ डिप्रीघारी होने के कारण वह एक सफन नागरिक बन सकता था पर जेल जान के कारण वह बराबर विरोधी परिस्थितिया में जूझता रहा और धन में हम उम एक बईमान छाट-मोट नता का रूप में दखत हैं।

यही बात उमकी वहन तारा के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है कि उनका जीवन में युग का प्रतिफलन भरपूर है पर बिल्कुल दूसरे ही आयाम में। ब्रित्त साम्राज के साथ उमकी गादी हुई थी वह गाती तो हर हालत में होती, चाहे दंग का विभाजन होता यह भी कैन कहा जा सकता है ' यन्त्रि उमका भाई जेल बाट कर न आता और उमका पिता की आर्थिक हालत न बिगडती और वह हालत बिगडने के कारण उसके भाई की बचन घर में न पट जानी क्पाकि वह रोटिया ब लिए पिता पर निर्भर था ता गायद भाइ उमकी मदद करता और मगाइ क वाबजूद वह यह गादी न हान दता। तब तारा के लिए असद में गादी करना मुश्किल न होता और असद उम आसानी न स्वीकार भी कर लेता। असद न ता उसे इसलिए स्वीकार नहीं किया था कि कहीं इसने हिन्दू मुस्लिम बमनस्य और न बड जाए मार लाए यह न समझे कि असद क दल का काम ही यह है कि लडकिया का गुलत रास पर न जाना। फिर भी यदि मान लिया जाय कि तारा की गादी जस हुई एम हीं हानी और यह उमो तरह से पति क हाथ मार खाकर घर स नागती ता विभाजन होने पर वह न बू के न हाथ न पडती और इस प्रकार वह जो कही की न रही बमी न होती।

इसी प्रकार प्रमुख पात्र सूद साहब व विपय म हम दम चुके हैं कि किस प्रकार वह शरणार्थी बन कर आए और धीरे धीरे एक डोगी नेता बन । जसा कि हम पहले बता चुके हैं, उपयास की सफलता इसी में है कि पात्र मुख्य हो या गौण उसके जरिये से युग प्रतिफलित हो, पर साथ ही सभी लोग अपना अपना जीवन जीते हैं तभी राजनैतिक उपयास कलाकृति बन सकता है ।

इस प्रकार इस पुस्तक में अभी हाल के सालों का बहुत विस्तार के साथ वर्णन और चित्रण है । सम्भव है कहीं कहीं अद्वयसत्य और अतिरंजन हो, लेखक व श्रान्तिकारी संस्कार उनमें प्रतिफलित है, पर लेखक ने जो कुछ भी कहा है वह बहुत जवदस्त तरीके से कहा है और अक्सर उमे कला का जामा पहनान में सफलता प्राप्त की है । वह वर्तमान शासकों से बहुत असंतुष्ट हैं पर उनकी इतनी बड़ी पुस्तक में कल्पित शासकों की कोई रूपरेखा हमारे सामने नहीं आती जिससे मान लिया जाए कि लोग गए गुजरे हैं इनकी जगह ये लें । पता नहीं लेखक अपने पाठकों से क्या और किन लोगों की सिफारिश करता है ? उन्होंने यह तो लिखा है—“एक महारमा के पीछे हजारों पाखण्डी होने ह । भगतसिंह या रेवोल्यूशनरिया का अनुकरण पाखण्ड से नहीं किया जा सकता । वहा तो जान की बाजी ही सब कुछ होती है ।” पर वर्तमान समय में भगतसिंह और श्रान्तिकारिया का क्या रूप होगा और क्या रूप है, इसका लेखक ने स्पष्ट नहीं किया । हम इसके लिए लेखक का दोष नहीं दते, क्योंकि जो लोग आज असंतुष्ट हैं उन सबकी विचारधारा में यही खामी है । वे वर्तमान की बुराई करते हैं और बहुत कुछ सही बुराई करते हैं, पर अक्सर कोई विकल्प सामने नहीं रखते । इस प्रकार उपयास में भी कोई कल्पित इतिहास या दल या व्यक्ति सामने नहीं आता जिसके सम्बंध में पाठक यह कह सकें कि भई य लोग तो खराब हैं य अच्छे हैं ।

फिर भी यह मानना पड़ेगा कि यह उपयास एक बहुत ही महत्वपूर्ण अभिलेख है जिससे हमारे समाज के हर पहलू और हर हिस्से पर तज्ज रोशनी पड़ती है । हम किसी उपयासकार से यह आशा करें कि वह हम रास्ता भी दिखाएगा तो यह शायद बहुत अधिक आगा करना होगा । लेखक इस उपयास में यह साफ कर देना है कि वर्तमान समाज में बहुत कुछ सडा हुआ गला हुआ कीड़ा लगा हुआ जहरीला है और उस सुधारने ताड़कर बनाने की जरूरत है । पर यह कम होगा उसके लिए क्या क्या साधन काम में लाए जाएंगे, इस पर पाठक स्वयं सोचें ।

अंत में हम लेखक की तकनीक के सम्बंध में एक मौलिक प्रश्न उठाना चाहते हैं । क्या उपयास लेखक को यह आजादी है कि वह इतिहास प्रति-

व्यक्तियाँ व मुह म जा चाह सा कहलवाए जा चाह बयान दिलवाए । मैं भी अपने ढंग म इस निगा म अपनी शुद्ध गति व साथ कुछ काय किया है पर मैं यह समझता हूँ कि यदि उपन्यासकार या कहानाकार हाल के इतिहास के किसी व्यक्ति का अपनी रचना म घसीटता है तो उसके लिए यही उचित है कि वह उन ऐतिहासिक व्यक्तियों व वस्तुओं प्रामाणिक ढंग म पण कर यानी केवल उही वस्तुओं का पण करे जा उहान वाकई दिए । मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि यशपाल ने इस पुस्तक म महात्मा गांधी जवाहरलाल आदि व मुह म एसी बातें कहलवाई हैं जो गायद ऐतिहासिक नहीं है यानी वस्तुतः उन लोगों ने उम अक्षर पर, उम दिन और उम घड़ी के बयान नहीं दिए । पर यशपाल का कहना है कि उहान सन्तारीख ही नहीं वस्तुओं भी मही सही उद्धृत किये हैं । इस सन्देह व अलावा मैं यह मानता हूँ कि इस उपन्यास म यशपाल ने हिन्दी उपन्यासकार तथा कहानीकारों व लिए तकनाक की दृष्टि म भी एक घुनौनी प्रस्तुत कर दी है जिसे निभान तथा अनुकरण करने म ही अर्थ लेना का गौरव बढ़गा । भूया सच हिन्दी का एक अमर उपन्यास और कलाकृति है ।



मूले-विसरे चित्र · संक्राति-युग की प्राणवान् धरती का इतिहास

प्रेमचंद ने उप-यास-कला व जिस पुष्पा किंतु सीधे माते भवन का निर्माण किया था उसमें ममकालीन मुक्क लेखको ने उनके जीवन काल ही में न सिर्फ नय कगूरे और अलकरण जोड़ने गुफ कर शिथे थे वरन् उसमें से अपनी पसंद व अनुसार अग विभेप को चुन कर उहे विस्तृत करके उनमें कश, अलिद गिखर व्यादि का समारोपण करना भी प्रारंभ कर लिया था । मूल भवन व तीत अगा को विंगे पल उठान मिला । प्रथम तो गोदान' में शोपित वग का व्यया और उनके मौन अभिशाप को प्रगांतगील उप-यासकारो ने आश्रोशपूर्ण धनुष की टकार बना दिया । यगपाल की वाद की रचनाओ में सत्ताधारिया व प्रति प्रमचद का हल्का व्यग्र्य एक उग्र प्रहाग बन गया । दूसरे दाम्पत्य जावन की जिन अतमताआ की भलक निमला तथा कुउ छोणे कहानिया म नीख कर लुप्त हो गई तथा व्यक्तिगत भूत्या व विवचन की जो भाकिया प्रेमचद के स्फुट वाक्या में इगित की भाति दीयो उन पर आधुनिक मनाविधान का कौमियागीरी द्वारा जन-द्रजुमार ने व्यक्तिकर्क द्रत और समस्यामूलर उप-यास का चमत्कारगृह प्रस्तुत किया । तीसरे रगभूमि में घटनाचक्र और पात्रा में युग के प्रतिबिब स्वरूप उप-यास को भगवतीचरण वमा ने अपना सूदम दृष्टि और नाटयबोय की सहायता से युगसाक्ष के रूप में विकसित किया ।

या भगवतीचरण वमा हि दी उप-यास क्षेत्र में पहले पहल चिन्क व रूप में उतर उनमें सर्वाधिक लोकप्रिय उप-यास 'चित्रलेखा' में कथा का उत्तम समस्या है । किंतु वस्तुतः समस्या न ता 'चित्रलेखा' की लोकप्रियता और न वर्माजी व कौशल का कुजी है । 'चित्रलेखा' व पात्र सजाव हैं कथागुम्पन आकषक है, सवाद

व्यक्तियाँ व मुह म जा चाह सा कहलवाण, जा चाह वयात दिनवाण । मैं भी अपने ढग म इस णिगा म अपनी क्षुद्र गति व साथ कुछ काव किया है पर मैं यह समझता हूँ कि यदि उपयासकार या कहानीकार हाल के इतिहास के किसी व्यक्ति को अपनी रचना म घसीटता है तो उसके लिए यही उचित है कि वह उन ऐतिहासिक व्यक्तियों के वन्द्य प्रामाणिक ढग स पेश कर यानी वव उहा वक्तव्या को पेश करे जो उहा न बावई दिए । मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि यशपाल न इस पुस्तक म महात्मा गांधी जवाहरलाल आदि व मुह म ऐसी घानेँ कहलवाई हैं जा शायद ऐतिहासिक नहीं है यानी वस्तुतः उन लोगों न उम अवसर पर, उम दिन और उस घडी व बमान नहीं दिए । पर यशपाल का कहना है कि उन्होंने सदा तारीख ही नहीं, वक्तव्य भी सही सही उद्धृत किये हैं । इस सत्ह व अतावा मैं यह मानता हूँ कि इस उपयास म यशपाल न हिंदा उपयासकार तथा कहानीकारा व लिए तकनीक की दृष्टि म भी एक चुनौती प्रस्तुत कर दी है जिम निभाने तथा अनुकरण करने म ही अर्थ लखवा का गौरव बढ़ेगा । भूठा सच हिन्दी का एक अमर उपयास और कलाकृति है ।



मूले-बिसरे चित्र सक्राति-युग की प्राणवान् धरती का इतिहास

प्रेमचंद ने उप-यास-कला के जिस पुष्पा किंतु मीरे-सादे भवन का निमाण किया था उसमें समकालीन युवक लेखकों ने उनके जीवन काल ही में न सिर्फ नय कगूरे और अलंकरण जोड़ने शुरू कर दिये थे वरन् उसमें से अपनी पसंद के अनुसार अंग विशेष को चुन कर उन्हें विस्तृत करके, उनमें कदा अलिप्त गिखर इत्यादि का समारोपण करना भी प्रारंभ कर दिया था। मूल भवन के तीन अंगों को विशेष पन उठाने मिला। प्रथम तो 'गान्धिन' में गणित वय की व्यथा और उनके मौन अभिगाप को प्रगतिशील उप-यासकारा ने आश्रीशपूर्ण धनुष की टकार बना दिया। यगपान की वाद की रचनाओं में सत्ताधारिया के प्रति प्रेमचंद का हल्का व्यंग्य एक उग्र प्रहार बन गया। दूसरे, दाम्पत्य जीवन की जिन असमताओं की भलक 'निमला' तथा कुछ छोटी कहानियां में गीब कर लुप्त हो गईं तथा व्यक्तिगत मूल्या के विवचन की जो भाकियां प्रेमचंद के स्फुट वाक्यांश में इंगित की भांति दींगी उन पर आधुनिक मनोविज्ञान की बीमियागीरी द्वारा जन-द्रकुमार ने 'यदिनके' द्रत और समस्यामूलक उप-यास का चमत्कारगृह प्रस्तुत किया। तीसरे 'रगभूमि' में घटनाचक्र और पात्रा में युग के प्रतिजिब स्वरूप उप-यास को भगवतीचरण वर्मा ने अपनी मूक्षम दृष्टि और नाटयभाव की सहायता से युगसाध्य के रूप में विकसित किया।

या भगवतीचरण वर्मा हिंदी उप-यास क्षेत्र में पहले पहल चित्रक के रूप में उतरे उनके सर्वाधिक लोकप्रिय उप-यास 'चित्रलेखा' में कथा का उत्सव समस्या है। किंतु वस्तुतः समस्या न तो 'चित्रलेखा' की लोकप्रियता और नवमाजी के कौराल की कुजी है। 'चित्रलेखा' के पात्र सजीव हैं, कथागुम्फन आकषक है सवाद

इस निरंतर प्रवाह का बोध कमे होता है ? क्यानक से तो नहीं । सच ता यह है कि इस उपयास की कथा क एक सूत्र या दो या अधिक् क्यानका के सबद सूत्रा का स्पष्टत पहचाना भी नहीं जा सकता । एक क्यानक के स्थान पर लखक न अनक प्रसगा और उपाख्याना का ताता सा जाडा है । सामायत उपयामा म क्यावस्तु की दो या तीन धाराआ को समानांतर और एक-दूसर म गुथी हुई दिवाया जाना है । वर्मा जी न यहा दूसरी पद्धति अपनायी है जिम अग्रजी म एपिसोडिक टोटमट कहा जा सकता है । इस 'प्रसग पद्धति' के कारण लेखक को पात्रा क शीलनिरूपण के लिए विविध उपकरण मिल जाने हैं मानो रगमच पर अनक दिशाआ मे आन वाले प्रकाश को क्रमानुगत फेंका जा रहा हो । इसके अतिरिक्त पचाम वर्षों की युगान्तरकारिणी अवधि म भारतवष का जो भाग्यनिमाण हो रहा था उसके इतिहास का सिहावलोकन इस पद्धति से कराना मम्भव हा सता । वरना एक ही ग्रंथ के परिवर्ण म उस विगाल, विविध और कौतुकपूण प्रका का प्रत्यक्षीकरण कैस हो पाता जिसम नय लखपती सठ पुरान राजे-महाराजा और रईमा के साथ कधे ने कथा भिडाकर रगरलिया मनात हैं पुरान और नय किस्म क अपमर और मातहत अपन ह्यकडे दिखत हैं दहात का महाजन किसान की निस्सहाय जिदगी पर अपना पजा जकडता जाता है, वह मयुक्त परिवार जो उपयास के प्रारम्भिक चरण म मजबूत और स्थायी बचन जान पडता था वाद म तडकता सा दीख पडता है । हिन्दू समाज म मुधार क आदोलन का जागत करन वाला आयसमाज भारतीय इस्लाम की कट्ट रता क मुकाविले म नई कट्टरताआ क नारे लगाता है हिदुआ और मुसलमाना की आध्यात्मिक धराहरा की विभिन्नताए राजनीतिक और आर्थिक स्वार्थों की स्पर्धा का तीव्र कर देती हैं । इस अपूर्ण दिग्गन म दहत कुछ है और जो भी है उसका क्षत्र विगान है नारी के विविध रूपा की भाकिया हैं—परित्यक्ता पत्नी, कामोद्वलित भामिनी, व्यथा की मौन चिरसगिनी गहिणी परम्परा और पं के विरुद्ध विद्राह करन वाली आधुनिक महिला असृश्यता की विकृतिया भी दीख पडती हैं जिनम आश्रोग का वेग समानता के वायण स जल्दी ही गान्त नहीं होता भारत म औद्योगीकरण के प्रारम्भिक परिणाम और नये उद्योग पतिया की स्वन्नता सग्राम क प्रति दोरुखी चाल भी प्रदर्शित है, सआट् पचम जाज की भारत यात्रा क समय त्रिटिंग सत्ता की गति और सामथ्य का अवलोकन हाता है ता उसा सत्ता को गाधी जी द्वारा दी गई चुनौती का अभिनन्दन भी हम दखत हैं कि सरकारी कर्मचारिया म रिन्वत और बईमानी का बाजार कस गरम होता रहा है और यह कि बीसिया वर्षों म कवल उसका चोला बदला है

करतव्य नहीं।

उप-यास में जितनी सामाजिक और राजनीतिक प्रवृत्तियाँ समायी हुई हैं यदि उनकी पहचान ही बनायी जाय तो अच्छी-भासी रोज़ वही बन जायगा जिसमें मन ऊँच भा जाय। किन्तु वर्मा जी उनकी व्याख्या या विश्लेषण नहीं करते। यथा कथाकार है और जानते हैं कि इनमें से हर एक सामाजिक और राजनीतिक प्रवृत्ति का घरातल एक उबरा भूमि है जिसमें अगणित सजीव पात्र, अगणित मानवीय और कौतूहलपूर्ण परिस्थितियाँ और आख्याना का प्रचुर गल्प पदा होता है। कतक विस्मृत इतिहास के गुल्फ पृष्ठा में स्फुरण और संचरण हा उठता है और यथा एम रश्चिर प्रसंग का ताता मा बंध जाता है जिनमें नाटकीय काय-यापार आप ही प्रस्फुटित हो जाता है। जहाँ तक दृष्टि जाता है यह भाषा यात्रा अपना रंग विरगा छटा अपने असह्य जीवन-व्यापी दण्ड विविध भावनाओं का आमंत्रित करने वाले अगणित स्वरो का अदृश्य श्रृंखला में बाँडे निरंतर अग्रसर प्रतीत होती है।

महत्वी सदा के अन्त में इंग्लैण्ड और यूरोप के कुछ अर्थदण्डों में विकार स्वभाव नाम से अभिहित उप-यासों की रचना हुई वर्मा जी के इस उप-यास में कुछ-कुछ पिचारेस्क परिपाटी का आभास हाता है। किन्तु यह आभास मात्र ही है क्योंकि घटनाओं का रोचक प्रम प्रस्तुत करना ही वर्मा जी को अभीष्ट नहीं है। उनका नाटकीय सवदा सजग और प्रखर रहा है। इसलिए वे घटनाओं का विवरण (नरेगन) करके सतुष्ट नहीं हो सकते थे उन्होंने तो लगभग प्रत्येक घटना को अपने में सम्पूर्ण, नाटकीय-सवदना समर्चित रूपके-वण्ड बनाया है। हर एक प्रसंग एक नग है और लेखक ने जीहरी की भाँति सन्तुलित बारीक और गनिपूण नक्काशी की है। कुछ पात्र जो प्रधान नहीं हैं जो माना कथा विकास की बाँडे में अनायास उपर आ जाते हैं इतने हृदयग्राही हैं कि तबियत करती है कि लेखक उन्हें कुछ और समय के लिए हमारा साथ छाँडे देता। लेकिन लेखक है कि मोह को पास नहीं पटकने देता। हर प्रसंग और पात्र का अपना नाटकीय महत्त्व है। जैसे अधिक एक्सपोज़ करने में फोटो विवृत हो जाता है, ऐसे ही रश्चिर पात्रों का भी अतिगय प्रदर्शन अथवा माहक प्रसंग का पुनरावृत्ति नाटकीय मघनता को छितरा देती है। इसलिए वर्मा जी उस प्रलोभन के शिकार नहीं बन हैं जिसमें पडकर अनेक उप-यासकार या तो कविमुलभ भावावग की अभिव्यक्ति या नग्न वासना का बाग्विस्तार करने लगते हैं। सतवती, जिस उवालाप्रसाद का कामासक्ति ने विषयविलास के पथ पर अग्रसर कर दिया है बलकता के बभवाली अभिजातवग में पहुँच कर जदन और भोगविलास में

सराबोर हा जाती है। उसने कारनामा और जिस हेतु और अनैतिक समाज में वह रम गई उसे अनावृत्त करने में लेखक कुछ पान रग देता तो इसमें किसी को आश्चर्य नहीं होता। ऐसा ही तो दस्तूर है। आखिर एक ऐसी मजेदार और बचल कथा के लिए पूरी सामग्री यहाँ मौजूद थी जिसका उन लोग पर जादू नुरत चल जाता है जो विकृत मनोवृत्तियाँ की सरेधाम छीछालेदार में रस लेते हैं। किन्तु वर्मा जी सतवती के प्रसंग को उन्हीं क्षण तिलाजलि दे देते हैं जब कथा की प्रधान और मौलिक शोभा-यात्रा की विंगल प्रगति में उसका कोई तारतम्य नहीं रह जाता।

लेखक यह समय इस ग्रंथ में प्रायः सबकुछ निभाता है। अपने निजी जीवन में, और विद्यार्थी मित्रों के बीच, वर्मा जी मताग्रही माने जाते हैं और अपने मत की घोषणा जोरदार और उग्र शब्दों में भी कर देते हैं। जिन प्रेमबन्धुओं में वर्मा जी ने अपने गिल्फ की सर्वाधिक घराहरी पायी के प्रायः इतने आदर्शप्रिय रहे और अपनी जीवनसंध्या में शोषितवश से इनके तदात्म्य ही गये कि अपनी रचनाओं में उनके लिए निरपेक्ष रहना सम्भव ही न था। किन्तु वर्मा जी उपन्यास लेखक ही नहीं नाटककार भी हैं। प्रमोद ने एकान्त नाटक लिखा था परन्तु वह अपवाद (कवला) भी उपन्यास की श्रेणी ही का था। वर्मा जी जो नाटककार हैं वह उह निरपेक्ष होकर मंच के एक बाने पर खड़े हान को मजबूर करता है ताकि वे अपने पात्रों को अठखेलियाँ करते देख सकें, उह आज़ादी दें, जो चाहते हैं—कपटी या भावुक, तुच्छ या महत, आदर्शप्रिय अथवा दाम्भिक, प्रयोगालि अथवा जड़। उनमें से किसी के भी भाव तदात्म्य स्थापित करने के प्रयास में वर्मा जी नहीं पडते, चाहे वह पात्र कितना ही उदात्त कथा न हो। इस निरपेक्षता से प्रभूत उनका व्यंग्य कहीं-कहीं बसा ही सस्पेंसों वैसे ही सावे-तिक और प्रभावोत्पादक है जैसा अंग्रेजी में भारतीय उपन्यासकार आर० के० नारायण का। उदाहरणतः कट्टर आध्यात्मिक स्वामी जदिलानन्द और उन्हीं के तुल्य हास्याम्पद और वाग्जाल विशारद मौलवी अल्लामा बहदुरी के बीच शास्त्रार्थ में पाटन रस इसलिये पाता है कि लेखक अलग सडा होकर मानो अपनी हँसी का देवाता हुआ चूठकिया ले रहा है। आर० के० नारायण का व्यंग्य इसी भाँति उपहासोत्सुक होत हुआ भी उतनी गहराई तक नहीं जा पाता जितना वर्मा जी का क्योंकि जिन समस्याओं में वर्मा जी उतरे हैं वे नारायण की कुल भडिया से कहीं अधिक गम्भीर और चुनियादी हैं।

वर्मा जी गभीर निस्संदेह हैं, किन्तु उनकी गरिमा आडंबरयुक्त नहीं है। मानवीय संवेदना से संपृक्त प्रवर्धक हैं वे, किन्तु सहजावेशी नहीं हैं। वस्तुतः 'भूले-

विसरे चित्र का एक विनोद उल्लसनीय गुण है उसमें सस्ती भावुकता और प्रबल पक्षधरता का अभाव। प्रेमचदाक्षर हिंदी उपन्यास—विशेषतः 'प्रगतिवादी लेखक' का हाथ—अत्यंत पक्षधर ही चलता था। इस तरह की अस्थिर मनावृत्ति का चक्कर में भगवताचरण वर्मा व भी नहीं पड़े। किंतु आत्रोत्पन्न प्रतिश्रियाओं से अटूट रहने का कारण ही शायद वह प्रहार जो उन्होंने अत्यंत शोषण पर किया है उसमें वही अधिक ताखा और ममवधक है जो प्रायः प्रगतिशील लेखकों द्वारा हुआ है। गठ लक्ष्मीचन्द्र जिसने पहल तो गंगाप्रसाद और उसके पिता का घुरी तरह अपमानित किया था यह जानने पर कि गंगाप्रसाद उसी के नगर में सिटी मजिस्ट्रेट नियुक्त हो गया है भट से उसके साथ मित्रता का दम भरने लगता है। कुछ एम डग में इस घटना का उल्लेख होता है कि उस सामाजिक परिस्थिति का प्रतिपाठक के मन में जुगुप्सा पैदा हो जाता है जिसने लक्ष्मीचन्द्र जैसे व्यक्तियों को ऊँचे आसन पर बिठा रखा है। समाज की वह आलाचना वही अधिक प्रभावोत्पादक है जो दलील नहीं बरने परिस्थिति और व्यवहार का मायम का प्रयोग करती है।

परिस्थिति और व्यवहार के दृष्टि में इस उपन्यास के अर्थ में इतनी प्रचुरता से जड़ हुए हैं कि कभी कभी उन अंधेरी काठरिया, उन तंग तहखानों की कमी महसूस होने लगती है जिनमें अलक्षित और अनजानी व शकिए वे आत्रोत्पन्न, व शृंखलाबद्ध उच्छृंखलताएँ घुटी घुटी सिसकती रहती हैं जिनका उद्गम मानव का अचेतन में है। आधुनिक व्यक्ति-की द्रव्य उपन्यास में अचेतन की गहराई का चिरंतन बाध मिलता है। यह सही है कि इसका अभाव वर्मा जी की कथा को एक तरह की मुक्त साधकता प्रदान करता है और कथा के परिवेश का अधिक व्यापक, उसके प्रभाव का अधिक सघन कर देता है। किंतु यह भी मानना होगा कि व्यक्ति के बहिरंग से वमा जी इतने अधिक बाँधे हैं राजनीतिक और सामाजिक उथल-पुथल उनका लेखनी का इतना सहज विलास है कि इस उपन्यास में युग की उस अतममनकारी गाथा का अभाव खलता है जो इन बाहरी व्यापारों के उथल-धरातल के नीचे व्यक्ति के भीतरी मानस की वेबस, गुमराह और अनवरत खोजों में स्पष्ट है। बंगला लेखक बिभलमित्र के उपन्यास साहेब बीबी गुलाम से भूल विसरे चित्र की तुलना कर तो यह बात साफ हो जाती है। जिन ध्वस्त सामाजिक परिस्थितियों का मिन का उपन्यास में प्रत्यक्षीकरण हुआ है व वस्तुतः उन दुर्दृष्ट हृदयद्रावक और सूनी श्यामा की प्रतिबिम्ब है जो छोटी बहू के अंत में बसती है। पाठक की स्मृतियों की होमाग्नि के लिए वर्मा जी इस तरह की कोई समिधा प्रस्तुत नहीं करते। भगवताचरण वर्मा और विमलमित्र में बहुत

कुछ बसा ही व्यतिरेक है जसा प्रेमचंद और शरतचंद्र की कृतियों में प्रकट होता है।

हा सकता है कि कुछ पाठक इस भ्रम में पड़ जायें कि स्थूल नाट्य व्यापार और घटनाचक्र तथा औत्सुक्य का घटाटाप 'भूले विसरे चित्र' में इतना बहुल है कि ममस्पर्शी प्रमग लुप्तप्राय हो जाने है और सुकोमल एवं गहन भाव शृंखलाएं प्रदीप्त नहीं हो पाती। किंतु यदि पाठक कथा की तियक और चक्करदार धारा के पथ का पुनरवलोकन करे तो यह भाति दूर हो जायगी। इस धारा में अनेक भवर, अनेक जलावस्त मिलेंगे जयदेई की वह अंतिम घड़ी जब अपने स्वार्थी बेटे की निमम और हृदयहीन उपक्षा की काली छाया में वह अपने पुराने अवध अनुराग के आश्वस्त सौंदर्य में विभोर होती है गंगाप्रसाद की पार्श्विक चेट्टाग्रा का सता द्वारा पहली बार प्रवल विराध किंतु वरसो बाद कलकत्ते के पापपक्विल और भावगूय वातावरण में अपने भोगासक्त किंतु चिर नस्त जीवन पर पदचात्ताप नवल के हृदय में उपा क प्रति मधुर प्रेम के वारण पदा हुआ असह्य सपथ, जा इसलिए पाठक को विगेष द्रवित कर देता है कि नवल उपा स उत्कट प्रेम करत हुए भी उसे पा नहीं सकता—माना कोई नूर नियति प्राप्ति के क्षण में उम निम्पाय बना देती है।

नियति! आधुनिक जीवन पर महाकाव्य (उपयास को वनमान साहित्य में महाकाव्य की सजा देना अनुचित नहीं है) के रचयिता के लिए भी अलक्ष्य गक्तिया के उस पुजीभूत महाकार दत्य की कराल छाया से बचना कितना कठिन है जिसे नियति कहा जाता है। 'भूले विसरे चित्र' में भी दा विपरीत प्रवृत्तिया अन्तर्धाराग्रा की भाति बराबर प्रवहमान है एक तो है पूर्वनिश्चित भाग्य लेखा की सी स्वीकृति जिसमें मानो लेखक करणोत्पादक निरुपायता और आश्वस्त आत्मसतोप का मिथित वातावरण प्रस्तुत करता है। दूसरी प्रवृत्ति है आशा और विद्रोह की जिसकी प्रेरणा से सचालित अग्रगामी चरण बार बार कठोर वास्तविक परिस्थितिया से ठोकरें खाते हैं और क्षत विक्षत होने पर भी आगे बढ़ने को तत्पर हो जाते हैं।

आश्चर्य यह है कि लेखक कटु ययाय की ओर अपने रमान और स्वाय-परता एवं कामादिक दोषा की व्यापकता पर जोर देने के बावजूद आगा और साथक विद्राट की प्रवृत्ति को विश्वास के साथ चित्रित करता है। वस्तुतः हम इस उपयास में चाहे कथा का सिलसिलेवार भ्रम न मिले तथापि विचारधारा का एक बुनियादी भ्रम अवश्य देख पड़ता है। लेखक सतही नैतिकता और भावुक आदर्ग प्रियता की कमजोर जडा का कठोर वास्तविकता के प्रहार से हिला देता है। जीवन की नग्नता हम अस्थिर कर देती है। लेकिन उसक

विशेषताएँ हैं, ताँकुँठ म दूसरी कोटि की। प्रमचन्द का समाज व सस्थाबद्ध जीवन से जितना घना परिचय है उतना असाधारण सवेदना वाले व्यक्तियाँ का चेतना स नही, जनेन्द्र और अनेय म असाधारण चेतनाओ व विश्लेषण की क्षमता है पर उह अपक्षित मूल रूप देन मूल घटनाओ स सम्बद्ध करन की शक्ति कम है। फलत यह कहना कठिन हो जाता है कि उक्त लेखका म कौन सबश्रेष्ठ है। दार्शनिक प्रजाशीलता की दृष्टि से इन तीनों म प्रेमचन्द का स्थान सबसे नीचे और जनेन्द्र का सबसे उपर है सवेदना व सूक्ष्म अवन म, और कही कही भावनात्मक प्रवण म (यह विशेषता गेखर म अधिक प्रतिफलित हो सकी है) अनेय उक्त दोनों लेखका स बाजी ल जात हैं। प्रमचन्द की सबसे बड़ी विशेषताएँ हैं—मूल श्रुति और प्रवाह। अपन एक उपयास 'दिव्या' म यशपाल जीवन दृष्टि एव जीवन स्थितियाँ म सामजस्य का पूण निर्वाह कर सके हैं इस दृष्टि स उनका यह उपयास प्रौढ बन सका है।

महमा विश्वास नही होता कि हमारी भाषा म उसक विकास की इस अवस्था म, नली व द्वीप जसी रचना प्रस्तुत की जा सकती है। नदी के द्वीप' एक ऐसी भाषा की वृत्ति मालूम नही होता जिसका छाटा-सा इतिहास है और जो अभी निर्माण की अवस्था मे है। अनेय के उपयास म हमारी भाषा एक अनोखी सादगी, स्वाभाविकता एव स्वच्छता आति और परिपूर्णता लिए हुए दिखाई पता है। उसका प्रत्येक शब्द मानो हाल ही मे टकसाल से ढल कर नई चमक नया व्यजकता लेकर, आगत हुआ है। वे शब्द जो सुपरिचित हैं और व जा अन्य परिचित हैं मभी वहा निराली साधकता स दोप्त और मुपर हैं। उप यास को पढ़ते हुए हम विभिन्न पदा की इस आभासयो अथवता से अनवरत विस्मित एव पुलकित होते चलत है और हम आश्चर्य करते है कि क्या ये उसी परिचित भाषा व परिचित शब्द हैं जिन्हें हम सबडो पुस्तकों म प्रयुक्त होते देखते है। संस्कृत तथा हिन्दी के कोशकार अभी तक पर्यायवाची शब्दो से परिचित रहे हैं, समानार्थक दीखने वाले शब्दो के अर्थों म छायागत' कितन अन्तर हो सकते है—कितन अन्तरो को देता और प्रेषित किया जा सकता है—यह अनुभूति 'नदी के द्वीप' के परिश्रमी पाठका की विशेष उपलब्ध होगी। उक्त उपयासवार द्वारा प्रत्येक पृष्ठ प्रत्येक वाक्य और पक्ति इतनी शालीन सावधानी से लिखी गई है कि आलोचक के लिए निणय करना कठिन हो जाता है कि वह उक्त विशेषता व निदान व लिए कहां से, कौन सा उद्धरण ल

यह पत्र समाप्त करवें जब वह उठा तब भोर का आकारहीन फीकापन क्षितिज पर छा गया था। डाकघर का गजर खडकता रहा कि नही, चंद्रमाधव

ने नहीं मुना। (पृ० ६८) और दा तीन मिनट के बाद ही उसकी साँस नियमित चलने लगी—उस नियम से जो हमारी मकल्पना का नहीं, उससे निराश प्रकृति का अनुशासित है और उसके आँधे शरीर की सब रेखाएँ म एक बंधस गिदिलता आ गई। (पृ० ६९)

अज्ञेय के शब्द प्रयोग की विशेषता वस्तुतः उनका व्यक्तित्व की अथवा अनुभूति की क्योंकि व्यक्तित्व अनुभूतियाँ का पुत्र मात्र है—विशेषता है। वण जगत् परिवेण अथवा मात्र की प्रत्येक विशेषता का यह बलाकार भिन्न विशिष्ट रूप में देखता है उसकी प्रत्येक अनुभूति, प्रत्येक प्रेक्षण व्यक्तित्व सम्पन्न है। फलतः उसका द्वारा प्रयुक्त प्रत्येक शब्द अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व रखता प्रतीत होता है। शब्दों की पनी सीमाएँ और तीखी भिन्नताएँ लेखक की देखने, अनुभव करने की उन विशेषताओं को प्रतिफलित करती है। परिपाश्य की प्रत्येक विशेषता को अज्ञेय मानो एक स्वतंत्र दृष्टिकोण से देखते और आकते हैं। सन्धेप में अज्ञेय की दृष्टि प्रखर रूप में विश्लेषणशील है।

इसके साथ ही यह दृष्टि संस्कृत एवं गालीन भी है। उक्त उपयास के प्रमुख पात्र—भुवन रेखा गौरा—अपने स्रष्टा की इन विशेषताओं से सम्पन्न हैं। उनका रहन सहन बातचीत एवं भावनाओं, सब पर एक गोभन, शिष्ट शालीनता की छाप है। वे उस संस्कृत मुग्ध जीवन के प्रतीक हैं जिनमें शिक्षा एवं सौजन्य का सहज सामंजस्य रहता है यह जीवन ही, अपनी समग्रता में लेखक का आदर्श है। चन्द्रमाधव के स्वभाव की जिह्मताओं एवं स्थूल वृत्तियाँ के बपम्प द्वारा उक्त आदर्श को परिस्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। चन्द्रमाधव भुवन आदि की सूक्ष्मतरंग भिन्नताओं को पकड़ने एवं प्रकाशित करने की चेष्टा की गई है।

'मन्दीक द्वीप' की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है उसका प्रकृति चित्र। इस चित्र विधान में अज्ञेय की शब्द गिल्पता चरम सीमा पर पहुँची दिखाई देती है। शायद ही हिन्दी के किसी दूसरे लेखक ने सौन्दर्य के इतने बारीक, विभिन्न गुणों, चित्र, प्रकृत, किये हैं, एक उदाहरण, पर्याप्त होगा—

'कुदसिया बाग में उन दिनों फूल लगभग नहीं होते—कोई फूल ही उन दिनों में नहीं होता, सिवा बजयन्ती के जो चटक रंगीली चूनर ओठे बीबी गटल्लो बनी धूप में सजी रहती है। लेकिन खण्डहर पर चढ़ी हुई बेगम बैरिया लता की छाँह मुहाबनी थी—फूल इसमें कई तेज रंग के भी हाते हैं पर इसकी लम्बी पतली बाहों में हवा में भूमन गुच्छा गुच्छा फलों में, एक अलहडपन होता है जो बैजयन्ती के भू निष्ठ आत्म सत्तोप में सबया भिन्न होता है और फिर'

विशेष लता व फूल भी तैयार नही थे एक धूमिल गुलाबी रंग ही उनमें था जो पत्तियां व गहर हरे रंग की उदासी कुछ कम कर देता था।' (पृष्ठ १३४)।

अब हम नदी के द्वीप की कुछ कमियां का सबत करेंगे। एक शब्द में कह तो यह उपन्यास एक अशक्त कृति है। नीचे हम इस शक्ति के उपादानों का कारण की खोज करेंगे।

नदी व द्वीप' में किसी स्पष्ट प्रयत्न प्राप्त अथवा जीवन दान को अभिव्यक्ति देने की कोशिश नहीं की गई है। वहीं-वहीं अस्तित्ववादी जीवन दृष्टि व सबत हैं पर व विरल तथा निबल हैं। वही-वही नितांत साधारण भले गिनिशत वग के विचार अनावश्यक आडम्बर से व्यक्त किये गए हैं—जैसे जापान के युद्ध में आन की छबर से भुवन का विशेष विचलित होना (पृ० ३७०-७१)। भुवन द्वारा गारा का लिखे हुए इस पत्र में किसी ऐसी समस्या से उलझने का प्रयत्न नहीं है जिसका विचारगीता के लिए भी महत्त्व हो। रेखा और गौरा के सारे आदर व बावजूद हम यह महसूस नहीं होता कि भुवन व विचारों एक सक्लपा का स्तर विशेष ऊंचा है वह एक खास शिक्षित शिष्ट वग व सदस्या व सामाज्य चिन्ता धरातल से अधिक ऊंचे उठत नहीं दीखता। वही भी भुवन के विचारों अथवा सक्लपा में ऐसी शक्ति नहीं है जो विचारवादी पाठकों को बरबस बहा ले जाए। भुवन का कास्मिक रश्मियां सम्बंधी आवरण पाठकों का कुछ दूर की चीज जान पड़ता है। उसके महत्त्व को व साक्षात् अनुभव नहीं करते और उसके दूसरे विचार किसी भी अर्थ में असाधारण अथवा शान्तिकारी नहीं हैं। इस दृष्टि से रेखा तथा गौरा के चरित्र भी शक्त नहीं मन सके हैं।

यहाँ एक बात कह दी जाए—'नदी के द्वीप' का पाठक अपने तथा उपन्यास के पात्रों के बीच गहरे तादात्म्य का अनुभव कम कर पाता है। लखक ने पात्रों के सतही भाव मनस से सम्बंधित 'पात्रों तथा भावनाओं का जितना सतक चित्रण किया है, उतना उनकी मूल वासनाओं तथा उससे सम्बद्ध प्रियानों का नहीं। यहाँ कारण है कि हम व पात्र कुछ दूर दूर से जान पड़त हैं और हम उन्हें अपनी आंतरिक रस वृत्ति द्वारा पूरा पूरा नहीं पकड़ पाते। ऊपर हमने जो प्रवृत्ति चित्र उद्धृत किया है उसमें भी यही बात है—उसके नय निराले नाम हमारी रसात्मक वृत्ति के जमेप में बाधक हात है। साहित्य किसी भी प्रकार की विशिष्ट (Specialised) जानकारी व प्रशसन का माध्यम नहीं है उसमें उतना ही बोध आना चाहिए जितना कलाकार या पात्रों की भाव चेतना में गहरा सम्बंध हो।

'नयी के द्वीप' का कोई भी पात्र सशक्त रूप में हमारे सामने खड़ा नहीं होता चन्द्रमाधव भी नहीं। किसी भी पात्र में हमारा बहुत गाना परिचय नहीं हो पाता। हम किसी पात्र का प्रगाढ़ परिचय दा तरह में पाते हैं—उमकी विभिन्न प्रेरणाओं को सम्बद्ध रूप में ग्रहण करके और उसे विभिन्न परिस्थितियों में उन प्रेरणाओं के अनुसार प्रतिप्रिया करने देखकर। हमने ऊपर कहा कि नदी के द्वीप में किसी पात्र को जीवन शक्ति का सबल स्रोत नहीं है—गरत वायु के 'गप प्रश्न में नायिका कमल के विविष्ट दृष्टिकोण का दर्जना सदस्यों में शक्तिपूर्ण प्रतिपादन एवं प्रकाशन कराया गया है। बसा-कुछ नयी के द्वीप' में नहीं मिलता उमकी कथा का उद्देश्य भी किसी स्वाम शक्ति या सिद्धान्त का संचय नहीं जान पड़ता। लेकिन पद्यात्मिक विवायत की बात दूसरी है—वहाँ विभिन्न पात्रों को जीवन प्रेरणाएँ मूल रूप में प्रकाशित नहीं हो सकी हैं। वस्तुतः जीवन के लम्बे चौड़े सन्ध के अभाव में ऐसा प्रकाशन कठिन हो जाता है। रेखा क्या चाहती है, कसा मायी चाहती है, किस शिवा में अपने जीवन का वे जाना चाहती है—इसका सफ़्त निर्योश नहीं मिलता। रेखा और भुवन के व्यक्तित्वों में कितने स्वभाव पर कितना भेद है, यह हम नहीं समझ पाते। कारण यह है कि हम दोनों के अनेक प्रेरणा-स्रोतों का परिचय नहीं होता। बाद में जब वे अलग होते हैं तो यह समझना कठिन हो जाता है कि दोनों को कितनी 'यया हुई या होनी चाहिए।' गौरा तथा रेखा के व्यक्तित्वों में क्या कौन-सा मौलिक अन्तर है क्या भुवन दोनों को ध्यान करते हुए भी बाद में गौरा के पास चला जाता है—एक प्रश्न का उप-पास में कही समुचित समाधान नहीं है।

उप-पास में भुवन और रेखा जगह-जगह दूसरों के विषय में उद्धरण प्रयुक्त करते पाए जाते हैं, जिन में स्वयं अपनी प्रेरणाओं में न जीते हुए विभिन्न कवियों के भाव-सफ़टन में अपने खोले जीवन का भरने की सामग्री खोज रहे हैं। उद्धरणों द्वारा वे जिन मना-साधना का भावना करते हैं उनका श्रोत स्वयं उनका सामाजिक सम्बन्धों एवं वैयक्तिक आशा-संघों में होना चाहिए। सामान्य नर-नारियों की भाँति व्यवहार में करके जिन वे कविताएँ उद्धृत करने लगते हैं ता पाठकों को धीरे-धीरे रचना कठिन हो जाता है। स्वयं भुवन ने एक बार 'कुछ शिवायत के स्वर से कहा, तुम सिर्फ 'काण्ड' बोल रहा है—अपना कुछ न कहोगी?' (पृ० २०५)। जिन क्षणों में नर-नारी स्वयं जीवन्त होते हैं—और

- १ रेखा और भुवन के बाद के अलग-अलग से पाठकों को विराप क-ट नडा होता, यह हमका सफ़ेक है। उन दोनों का लगाव, उपन्यास की परिधि में, गहरा चिन्तन नहीं हो सका है।

यदि प्रेम के क्षणों में जीवित न होंगे तो कब होंगे ? उस समय के स्वयं अपने उमड़ते हुए आकाश का प्रकट करत हैं पड़ी या सुनी हुई वाता का नहीं । और उन क्षणों में परम्परागत सस्कार उस जीवित भाव-स्पर्शन का अग्रण्ड अंग बनकर प्रकट होते हैं, पृथक उद्धरणों के रूप में नहीं ।

हमने ऊपर कहा कि नगी के द्वीप में मुन्दर प्रकृति चित्र है । दुर्भाग्यवश ये चित्र भी उप-यास की अग्रवत बनाने का हेतु बन गए हैं । शायद उप-यास में प्रकृति के वही चित्र स्यान् पा सकत है जा पाया की भावनाओं में रग हा, अथवा उन भावनाओं का सबल बनात या अभिव्यक्त करत हा । नदी के द्वीप के प्रकृति चित्रों में वैज्ञानिकता अधिक है, भाव शक्तता कम । व अक्सर रेखा और भुवन के बीच व्यवधान खडा कर देत हैं जिससे उनके पारस्परिक सम्बन्ध की रसात्मकता कम हो जाती है । अस्वी जीवन की अपेक्षा उप-यास में पात्र एक दूसरे के प्रति अधिक संबन्धित होते हैं । विशेषतः प्रेमी और प्रेमिका एक दूसरे के साथ होने हुए सम्भवतः किसी तीसरी आर ध्यान नहीं ले जा सकते—कम-से-कम साहित्य में ऐसा ही होता है । नगी के द्वीप में इस नियम का विषय है जो उसके प्रभाव के लिए घातक है ।

नदी के द्वीप एक शक्तिपूर्ण उप-यास नहीं है इस तथ्य का एक पहलू यह है कि उसमें गहरा रसोद्रेक कर सकत वाले प्रसंगों की विरलता है । या उक्त उप-यास का प्रत्येक अंग किसी न किसी प्रकार की अथवती चेतना जगाता है किन्तु ये विशिष्ट चेतनाएँ समन्वित होकर बडा प्रभाव कम पदा कर पाती हैं ।

इस सामान्य नियम के अपवाद भी हैं । अवश्य ही नदी के द्वीप में कुछ प्रसंग हैं जो रसोद्रेक करने में अपेक्षाकृत अधिक समर्थ हात हैं । उप-यास का प्रारम्भिक परिच्छेद जहाँ भुवन गई हुई रेखा की याद कर रहा है, जयादा प्रभाव शाली होता यदि उसमें विखरी हुई अनुभूति अधिक पुजीभूत हो सकती । चन्द्रमाधव में मर्वा वन दो एक प्रसंग मार्मिक है, जैसे उसकी पत्नी कोपल्या के साथ की घटना । हमें द्र, रेखा के पूर्व पति का प्रसंग भी तीखे रूप में याद रहता है । चन्द्रमाधव का जगह जगह रेखा तथा गौरा को एक साथ पत्र लिखना तथा दोनों को ही 'कोट करत का प्रयत्न करना और फिर दोनों और स हमें उत्तर पाना हमारी विनोदवृत्ति को खाल देता है । काश्मीर में रेखा और भुवन का पहला मिलन भी एक प्रभविष्णु प्रसंग बन सका है ।

नदी के द्वीप का सबसे गतिपूर्ण अंग वहाँ स गुरु होता है जहाँ श्रीनगर में रेखा ने अपने कोय के शिशु को नष्ट करके शरीर को मकट में डाल लिया है । उसके बाद प्रायः अत तक उप-यास की कथा विगुड मानवीय धरातल पर चलती

है—अनावश्यक उद्धरणा तथा अत्य विवरणों से मुक्त रहकर, यद्यपि वहाँ भी इन तत्वों का एकांत अभाव नहीं है। अंतराल खण्ड में केवल विभिन्न पात्रों के पत्र हा पत्र हैं। ये पत्र अज्ञेय के सचेत निर्माण शिल्प के प्रतीक हैं। गौरा के कक्ष में जलती हुई अग्नीठी के सामने बैठे भुवन का आवेग आवेश उपन्यास का अपथाकृत सदान्त एक महत्त्वपूर्ण स्थल है। आपरेशन के बाद पीडित, बलान और मृदुल स्निग्ध रेखा तथा भुवन का मिलन प्रसंग भी वरुण तथा मार्मिक है। मृत शिशु की चेतना से आक्रांत भुवन अग्नीठी की आग को देख रहा है उसका वणन भुवन की भावनाओं का मार्मिक प्रतिफलन करता है—

आग लपकती और गिरती, कभी एक अधजली लकड़ी बीच में टूटकर गिरती और आग का एक भाग दबकर अंधेरा या नीनाम हो जाता फिर फुर फुराकर एक छोटी सी शिखा उमम से उमंग आती और बढ जाती। उसी प्रकार भुवन का स्वर कभी मद्धम पड जाता, कभी धीरे धीरे ऊँचा उठ जाता, कभी उसकी वाणी क्षण-भर अटककर फिर कई एक द्रुत चिनगारियाँ फेंक देती।'

(पृ० ३८६)

किंतु यह प्रसंग भी अब तक ज्ञान भुवन के नतिव व्यक्तित्व से ठीक ठीक मेल नहीं खाता। इसलिए वह उसके रेखा के प्रति विरक्ति महसूस करने का पर्याप्त कारण नहीं जान पड़ता। लगता है जने भुवन गौरा के पास जाने का बहाना खोज रहा है।

इन सीमाओं के बावजूद, विशेषतः भाषा प्रयोग की दृष्टि से, 'नन्दी के द्वीप' एक ऐतिहासिक महत्त्व की कृति है।



चारु चन्द्रलेख : रंगीन इतिहास-खंड का दर्पण

यह आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का दूसरा उपन्यास है जो उपन्यास की दृष्टि से एक नया प्रयोग जरूर कहा जाएगा—बहुत कुछ एटी नावेल' जसा प्रयोग। इस प्रयोग को चाहे अमपल कह या सफ़्त, लेकिन प्रयोग जरूर है। यदि हम 'वाणभट्ट की आत्मकथा' को हपकालीन सस्कृति के परिप्रेक्ष्य म कला का भ्रमूर कह सकते हैं तो चारु चन्द्रलेख को भी पृथ्वीराज जयचन्द्र के परवर्ती काल के परिप्रेक्ष्य म तत्कालीन समाज चिंतन की भूल भुलयाँ। 'वाणभट्ट की आत्मकथा' म कला और धम की नीरक्षीर मत्री है, तो 'चारु चन्द्रलेख' मे धम और इतिहास का भ्रमर चपक कुयोग। सारे उपन्यास म आधुनिक शिक्षित सस्कारो से समावृत बण्णव दष्टि स जडीभूत मध्यकालीन धार्मिक और सामाजिक सस्कृति की विवचना की गई है। इस बण्णव दष्टि म एक साधारण समाज [महम्म्य जन]की भाँति एक आर ता सामाजिक मथायता है दूसरी आर विवक शीलता तथा परम्परा। उपन्यास म नय्य कल्पना, यथायता और अवेपण का जा इतना अद्वितीय और किंचित् अगलपात्मक सयोग हुआ है उसने पूरा तरह से उस युग के समाज तथा लोकचित्त को साक्षात् कर लिया है जिसके विषय म या तो इतिहास मौन है या इतिहास कुछ महान् पुरुषा के रूप म पुष्पित नहीं हो पाया या फिर इतिहास ने उस युग की विशाल जनता को अपना उपजीव्य नहीं बनाया। इसलिए इस उपन्यास की महत्ता [गायद यूनता भी] स बात म है कि उपन्यास कला पर बल देने की अपेक्षा इसने महान् नायक और महान् घटनाओ मे विहीन अघोमुती 'मयकाल के इतिहास की पुनरचना' की है। इस लिए लेखक को एक काल्पनिक घुडसवार राजा सातवाहन को नायक मानना

पडा और एक कल्पित रानी चन्द्रलेखा का नायिका । किन्तु उस काल के इतिहास की पुनरचना में 'पृथ्वीराज रामो' को उपजीव्य बनाकर लेखक न विद्याधर [विज्जाहर] धर्मायण [बाघा प्रधान के पिता], नाटी माना [कनवज्ज समय की करनाटी] मुत्ताग दरी [मूहव दवी] जल्हन चद्रवलिद्वय [चदवरदाई] हाट्टलीराय, धीर गर्मा, सीटी मौला जम राज एव जन जीवन के अल्पस्थान पात्रों द्वारा ऐतिहासिक रामास को ऐतिहासिक उपयास तथा ऐतिहासिक अनुसंधान के स्तर पर उद्धारित किया है । इसके अलावा एक बात और भी प्रमाणित की गई है पुरातन प्रबंध संग्रह तथा 'पृथ्वीराज रासा की तुलना में रासा का इतिहास तथा ऐतिहासिकता की स्थापना । इस प्रकार परोक्ष रूप से यह उपयास पृथ्वीराज रामा की उपयामात्मक छानबीन भी है । साराण यही है कि राजा रानी नागनाथ आदि की आधिकारिक कथा का ता मेरुतुग के जन प्रबंध ('प्रबंध चिंतामणि') से गृहीत किया गया है [जो काल्पनिक है], और प्रामाणिक कथाओं को 'पृथ्वीराज रासा 'पुरातन प्रबंध संग्रह', 'तवकाने नासिरी' आदि में ग्रहण किया गया है [जो ऐतिहासिक है] । इस तरह यहा एक निजधर [सोजेड] की वृत्ति पर एक इतिहास का आच्छादन ही उस युग के समाज और युगबोध को उदघाटित कर सका है, यह स्वयं में लेखक के इतिहास लेखन—उपयाम को निमित्त बनाकर इतिहास-लेखन—के क्षेत्र में राहुल की तरह एक साहमपूर्ण प्रयास है और काफी उत्तम है । चूकि समय पृथ्वीराज जयचद के बाद का है इसलिये यूना जगनिक आता है । चदवरदाई का बटा जल्हन आता है नालदा के [बल्लियार की ध्वसलीला के बाद] राहुल भद्र और अक्षेय्य भैरव आते हैं जयचद का बटा हरिरचद्र आता है सीदी मौला आते हैं । सीदी मौला मध्य एशिया का काफी प्रामाणिक इतिहास भी बताते हैं दो बार । यहा राहुल साहित्यायन कृत 'मध्य एशिया का इतिहास' में सामग्री ली गई है । यू तो पूर उपयास में लेखक न स्वयं अपनी पुस्तक मध्यकालीन धमसाधना से भी सामग्री ली है ।

उपयास में कथन रानी की दृष्टि में 'बाणभट्ट की आत्मकथा वाली पहली ही चली आई है । सारा उपयास चद्रगुहा पर अंकित शिलालेख का भाषांतर है जिस अघोरनाथ न व्योमकेग शास्त्री को संपादित करने का दिया । हजारी प्रसाद द्विवेदी अर्थात् व्योमकेग शास्त्री न इस पर टिप्पणियां लिखीं । यू भूल कथा अनदिनी गली में है । यहा आत्मकथा शली कम जीवनी गली ही प्रधान है । इसके अलावा दसम बाणा के विभिन्न प्रकारों का उपयोग किया गया है । रानी चन्द्रलेखा प्रथम पुरुष में बात कहती है । नागनाथ ने मध्यम पुरुष में कहना शुरू

किया था, किन्तु नहीं कह पाये। राजा उत्तम पुरप भ कहते हैं। इस तरह गुप्त म प्रथम पुरप मध्यम पुरप और अग्र्य पुरप की साधना को उदघाटित करने की याचना भी रही थी, जो बाद में त्याग दी गई। कला रूपा की दृष्टि से यहाँ लेखो, पत्रा और सबोधनात्मक भाषाणा की भरमार है, पत्रा के अनूठे रंग चित्र यत्र तत्र छिटके हैं श्लोक, उनके अर्थ, उनकी व्याख्याएँ टिप्पणियाँ भी वहीं-वहीं मिल जाती हैं। इस तरह उपयास में एक ओर तो ऐतिहासिक तथ्यों [घटनाओं को भी] को सोच विचार कर परोया गया है तो दूसरी ओर चित्रों के खण्ड-खण्ड खिचे-सं सजे हैं जिनके बीच में काय-व्यापार का तीर लडखडाता हुआ निकलता चलता है। लखा और पत्रा की—विशेषतः चद्रलेखा के चारलेखा की—बहुतायत से ही कृति का नाम 'चार चद्रलेख' पडा है। नाम के अर्थ हेतु भी है जैसे, चद्रगुहा का लेख या जिसमें चारचद्रलेखा (त्रायिका) हो।

पहले हम घटनात्मक इतिहास में जो इस उपयास में आया है। यहाँ घटनाएँ दा ही केन्द्रों में अभिमुख हैं—धर्मसाधनाएँ तथा युद्ध। घटनाओं का बहुमत धार्मिक साधनाओं से जुड़ा है। इस प्रकार कृति में मध्यकालीन साधनाओं का तथा सामंतयुग के समाज एवं राजनीति का इतिहास जुड़ जाता है। लेकिन जहाँ तक राजा राज्य राजनीति का सम्बन्ध है वहाँ काल्पनिक राजा सातवाहन एवं रानी (बाद में सिद्धयोगिन) चद्रलेखा के कई ऐतिहासिक पात्र एवं घटनाएँ गुथी हैं। इसकी वजह से कृति में मध्यकालीन सामंतीय सेना संगठन अथवा समाज आदि का अनुभूत भी जुड़ जाता है। 'वाणभट्ट' को आत्मकथा में लेखक ने अपने कला-दर्शन और मर्यादा के आदर्श को प्रस्तुत करना लक्ष्य बनाया था। इसमें लेखक ने सामाजिक दर्शन और धार्मिक साधनाओं के सर्वेक्षण विश्लेषण का अपना आदर्श बनाया है। यद्यपि साधनाओं की भरमार के कारण कथातंत्र बहुत ज्यादा ढीला हो गया है किन्तु दिल्ली के सुल्तान को छोड़ कर सभी पात्र राजा और रानी की धुरी में बंधे हैं। इस प्रकार राजा तत्कालीन नान और समाजचित्र का एक रानी तत्कालीन यष्टिमूलक सिद्धिया की खोज और व्यक्ति के असंतुलित व्यक्तित्व का प्रतिनिधि हो जाती है। इस पृष्ठभूमि के द्वारा कृति के दो पक्षों को बताने के बाद हम अगले घटनात्मक इतिहास का उदघाटन करेंगे जो कथातंत्र में विन्यस्त है। पहले परिच्छेद में सीदी मौला से परिचय होता है जो हिन्दू मुसलिम (सिद्ध-मौला) संस्कृति के सगम हैं। वे बिल्कुल फक्कड़ हैं किसी में विश्वास नहीं करते। बिल्कुल कवीर जैसे हैं। दूसरे परिच्छेद में हम पुरातन प्रबंध संग्रह के विद्याधर मंत्री को पाते हैं जो अब राजा सातवाहन के मंत्री हैं। व महाराज जयिनचंद्र की डोम रानी सूहव दबी की बीती

एतिहासिक कथा का आख्यान करते हैं तथा सस्कृत कविश्रीरूप के अपमान की कथा भी गूथत हैं। चौथे परिच्छेद में लेखक एक आर तो चद्रलेखा को परमाल की दौहित्री बनाकर उह ऐतिहासिक गनि देता है ता दूसरी ओर जयचद्र परमाल के विग्रह के कारण की स्वयमेव व्याख्या करता है (इम विषय म इतिहास चुप है)। छठे परिच्छेद म राजा सातवाहन के महा वृद्ध जगनिक को ला कर लेखक वीरगाथा काल का वृत्त पूरा करता है। सातवें परिच्छेद म उज्जयिनी के गर्भयाताल की दन्तकथा के पीछे लेखक वास्तविक इतिहास का उदघाटन करता है। यहा सरस्वती, विन्मादित्य अडोलिया की ऐतिहासिक गुत्थी सुनभनी है और कालिदास के 'शाकुंतल की कथा म इसका मूल मस्कार उदघाटित होना है। इस व्याख्या के द्वारा लेखक ने लोक-कथाआ म से ऐतिहासिक तथ्य दूँ निकालन की वैज्ञानिक पद्धति का भी अनुमरण किया है। दसवें परिच्छेद म नाना गोमाइ के माध्यम म दक्षिण म गव जना क द्वन्द्व के ऐतिहासिक तथ्य को प्रकट किया गया है। बारहवें परिच्छेद म ऐतिहासिक धर्मायन कायस्थ के काल्पनिक पुन बोधा प्रधान का प्रवण हुआ है। तरहवें परिच्छेद में कह चाचा की कथा द्वारा ढांगी सामतीय दप की खिल्ली उडाई गइ है। दसक बाद वादसवें परिच्छेद में बोधा राष्ट्र कूट, चालुक्य, हायगल वग के इतिहास म धम की पहल का विवचन करन हैं। तेइसवें परिच्छेद म मूहव दधी के पुत्र हरिश्चद्र का अनुसंधान होता है जो तुकों की सहायता किया करता था। दसी म ऋमल के द्वारा कारनटा के अयतास्विक (सीमटिक) इतिहास की व्याख्या हाती है। ऋमल ही नाटी माता और कदववाम मनी क सम्बधो की कथा कहकर कर्नाटी (नाटी माता) का पूरा इतिहास खोल दता है जिसस 'रासो' क एक समय पर पूरा प्रकाश पड सकता है। चौबीसवें परिच्छेद म कागी के हरिश्चद्र घाट की ऐतिहासिक छानबीन है। पच्चासवें परिच्छेद में अशोक चल्ल नाम के ऐतिहासिक पात्र का आगमन हाता है जिससे कि नालदा का भी पूरा इतिहास खुल जाता है (सत्ताइसवें परिच्छेद म)। अट्ठाइसवें परिच्छेद में ऐतिहासिक जलहन क प्रवण ने 'रासो' म वर्णित कई ऐतिहासिक तथ्या का उपयोग करान म मन्द की। जलहन अपने पिता चदवरदाई का पूरा चरित्र प्रकाशित करता है पथ्वीराज द्वारा कदववास मत्री की हत्या का भेद खोलता है हाडुली राय प्रसंग को गूथता है कर्नाटी (नाटी माता) के प्रति पृथ्वीराज की आसक्ति की बात भी बनाता है। इस तरह यह पूरा परिच्छेद 'रासो' पर आधारित है। उतीसवें परिच्छेद स दिल्ली के सुल्तान का नपथ्य आभाम चलता है। इस प्रकार हम देखत हैं कि यहा इतिहास सस्मरण क रूप म आया है। इन तथ्या म लेखक न जा प्रचुर कल्पना का है वही तत्कालीन समाज का यथाय चित्र

रचती है।

इतिहास-परिचर्चा में आग भावात्मक इतिहास लिया जा सकता है। यहाँ राज्य, युद्ध, राजा इतिहास, क्षण, काल, समय, घटना आदि जो अवधारणाओं के रूप में आए हैं वे एक धार तो लेकर वे इतिहास-द्वान को समर्थ सर्वांगीणता में प्रस्तुत करते हैं तथा दूसरी ओर उसका सामाजिक आलोचनागील का प्रतिपादन।

इस सदन में लेकर न पहला सवाल किया है कि इतिहास क्या है? इतिहास काल प्रवाह (जिस वह 'कालदेवता' का आधिभौतिक प्रतीक मानता है) है या क्षण-क्षण? इतिहास अतमुरी (एक ब्रह्माण्ड व्यापी समोष्टि में) है या बाहरी क्रियाओं प्रतिक्रियाओं का पुञ्ज? इतिहास हम बनाता है या हम इतिहास को बनाने हैं? क्या इतिहास की आवृत्ति होती है? क्या इतिहास से सीखा जा सकता है? क्या इतिहास में समय, जिस लेकर हमारा देवसमाग में रूपान्तरित कर देता है, अपनी व्यवस्था को अस्त-वस्त कर देते हैं?

लेखक का इतिहास दान अतविरोधी से भरा है क्योंकि उसमें रहस्यवाद एक मानवतावाद का द्वंद्व है। एक ओर तो वह इतिहास प्रवाह तथा क्षण या काल-खंड का सामजस्य करता है जहाँ अनेक विराधी शक्तियाँ एक के महान् मन्त्र में दीक्षित हो जाती हैं (पृ० ३४३) ता दूसरी ओर इतिहास में क्षण की कोई सत्ता ही नहीं मानता (पृ० ४१०)। एक ओर वह मानव चेतना से परे ब्रह्माण्ड चेतना मानता है तो दूसरी ओर ब्रह्माण्ड चेतना को मानव चेतना का ही समष्टि रूप मानता है। हाँ दो बातें पूणत सुदृढ़ हैं—पहली, इतिहास महान् सन्नाटो और महान् युद्ध का लेखा-जोखा नहीं है बल्कि लाञ्छित का आत्मबल और जन जावन है दूसरी इतिहास से साखा जा सकता है भविष्य की दिशाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। इन्हीं दो मजबूत नीवा पर लेकर न चारु चद्रलेख में अपना इतिहास-दान और इतिहास विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

लेखक इतिहास और देवसमाग का अतसम्बन्ध बताता है। इतिहास और देवसमाग से घटने वाले जागतिक व्यापार में अंतर है। इतिहास मानवीय सकल्पा से बनता है। य कामल मानवीय सकल्प बाहरा कठोर परिस्थितियाँ से टकराकर परिवर्तित होते हैं अत इतिहास बसा ही नहीं होता जसा हम चाहते हैं (पृ० ३०५)। अत इतिहास हम बनाता भी है और हम इतिहास का निर्माण भी करते हैं। इस निर्माण में अनुकूल मंगल है और प्रतिकूल अमंगल। यह द्वैतात्मक स्रष्ट स्वीकार करन पर लेखक देव-समाग का जरा अलग हटा देता है। इतिहास का आदोलक शक्ति क्या है—मूल है— धरती और साना। यही इतिहास के अद्वैत

का मूल है। धरती का मतलब केवल इस मिट्टी से नहीं किन्तु किसानों और साधारण प्रजा वर्ग से है जिनकी अप्रबुद्ध निष्ठा कठोर परिस्थितियों को जीत लेती है। यह धरती उन असह्य गृहस्था के बलिदान की कथा है जो परंपरा के रूप में अनुभव होकर समष्टि चित्त हो जाती है और जो भविष्य को दिगाएँ बताती है। गरीब देशों और सामंत-व्यवस्था में अथ व्यवस्था (सोना) और युद्ध (सेना) साथ साथ रहते हैं। जिसके हाथ में सोना होगा, उसके कब्जे में सेना। उस युग की चेतना बेतनभोगी लोगों के ऊपरी युद्धास चला करती थी किन्तु बाहरी चेतना किसानों, गृहस्था साधारण प्रजा के आपसी सम्बंधों में।

इसी क्रम में लेखक ने इतिहास के सामंत युग (भारत में विशेषकर) पर एक आलोचना गिला रखी है। इस युग में जन और प्रजा का राज्य में सहकर्म नहीं होता, इसलिये अथ-व्यवस्था (राज्यलक्ष्मी) लड विधत हो जाती है। फलस्वरूप छोटे छोटे राज्यों की स्वार्थी राजनीति विच्छेदकारिणी ही होती है। सामंतयुग में वशानुक्रम से राजा, माडलिक, नृपति आदि चलते आते हैं जो लगातार कृषकों का शोषण करते हैं। फलतः सारी व्यवस्था बिखर जाती है। यह पहला दोष है। दूसरे, भूमि-व्यवस्था का बटवारा होता जाता है और सारी संपत्ति टूटती जाती है। तीसरे सीधे जनसंपर्क रखन वाले राज-नेता नहीं होते। ऐसी राजनीति और ऐसी रणनीति भयकर अत्याचार तथा आतंक फलाती है। इस तरह लेखक ने अपने इतिहास चिंतन में क्रम में मध्यकालीन सामंतीय भारत की राज्य, युद्ध, राजनीति और अर्थनीति की भी मीमांसा की है। राजनैतिक आर्थिक निष्कर्षों को प्राप्त करने में यह कृति सामंतवाद का एक समाज-दपण हो जाती है।

इस ऐतिहासिक एवं राजनैतिक आलोचना शील के साथ साथ लेखक ने भारत के उस सामंत युग की सामाजिक चेतना का भी सधान किया है। लेखक ने पहले परिच्छेद में ही सार दे दिया है कि लोगों को बाहुबल की अपेक्षा तंत्र मंत्र पर अधिक विश्वास था। प्रजा सिद्धांत-योगियों के प्रति श्रद्धा नहीं रखती थी, बल्कि उनसे डरती थी। सारे समाज में नाना भावों की तंत्र-मंत्र-जंत्र मूलक साधनाएँ फैली थी जो व्यक्ति-स्वयं या व्यक्तिगत मोक्ष को ही बल देती थी। अतः समष्टिगत चित्त और स्वस्थ मन का अभाव हो गया था। हम देखते हैं कि जनता का तंत्र मंत्र में, शकुनाभ, रानी की सिद्धियाँ और नारियों पर दबी आने में (वज्रेश्वरी मंदिर की सेविका का प्रसंग, पृ० ३८२), अलौकिक चमत्कारों और अंधा भाग्यवाद में घोर विश्वास था। मन्त्री और पुरोहित, और कवि भी ज्योतिष-शकुन, वण, साधु आदि के प्रति गहरी आस्था रखने थे (विद्याधर ज्योतिष में विश्वास रखते हैं, प्रसंग चर्च और जल्हन शकुनों में)। गृहस्थ धर्म और सती नारी की

महत्ता का सिद्धा ने समाप्त-सा कर दिया था। अतः इनकी प्रतिष्ठा के लिये आंदोलन चल पड़े थे। लोगों के विचारा बायो और कथनी में खाई बन चुकी थी। सभी जगह से सहज जीवन, समष्टि चिन्त और सांस्कृतिक गौरव लुप्त हो गया था। इसलिए सामाजिक दान की दृष्टि से लेखक ने सिद्धरस के बजाय प्रेमरस मठों के बजाय गृहस्थ, गृह और व्यक्ति, स्वाय के बजाय सेवा भाव—इन तीनों अनिवायताओं का अभिप्रेक करके अपने सामाजिक दान का उत्कृष्ट प्रस्तुत किया है। उनके सामाजिक दान की दलित द्राक्षा का निचोड़ है—१—सिद्धियाँ मनुष्य को पशु पक्षी अजगर, प्रेत बना दें, किन्तु मनुष्य को मनुष्य बनाने में तब तक सहायक नहीं हागी जब तक सहज शरीर धर्मों को ही परम लक्ष्य समझा जाना रहेगा (पृ० १५७) एवं २—एक साधारण किसान जिसमें दया माया है सब भूठ का विवेक है और बाहर भीतर एकाकार है वह भी बड़े-मे-बड़े सिद्ध स ऊँचा है। जाहिर है कि यह लेखक की वैष्णववादी रवीन्द्रवादी मानवतावादी जीवन दृष्टि का चरम विग्रह रूप है।

धार्मिक चेतना की दृष्टि से तो यह उपन्यास मध्यकालीन भारतीय धर्म साधनाओं का एक समाजशास्त्रीय सादकोप ही है। शिल्प की दृष्टि से इन साधनाओं ने कथावस्तु को बहुत विलंबित, गिथिल और खडित [किया है, इसे न तो चरित्रों की अधिक विविधता उदघाटित हुई है और न ही विभिन्न प्रकार की सामाजिक समस्याएँ चरमोत्कृष्ट के रूप में उठी हैं। कुतूहल की दृष्टि से इनमें एकरसता है और परिणाम की दृष्टि से भक्ति और सिद्धि की दो दिशाएँ। लेकिन उस युग का धार्मिक इतिहास—जनता के बीच में जिस तरह धर्म की माया फैली थी—प्रस्तुत करने के लिये इन सभी साधनाओं का वर्णन शायद वाछनीय था। मध्ययुगीन धार्मिक साधनाओं के विषय में हमारे देश में बहुत कम विद्वानों का हस्तामलकबत ज्ञान है। द्विवेदी जी उनमें से एक हैं। इन साधनाओं के समावेश ने उपन्यास को ही धार्मिक साधनाओं का सदभ ग्रंथ बनाने के अलावा एक शोध ग्रंथ भी बना दिया है। इस धरातल पर लेखक ने मानो मध्ययुग का नया अनुसंधान ही किया है जिसमें विभिन्न साधनाओं मंत्र शक्तियों चक्र तंत्र, उपासना पद्धतियों आदि का पूरे प्रमाण के साथ वर्णन ही नहीं, इतिवृत्त भी है। यहाँ पारद अन्नक की सिद्धि वाली रसेश्वर साधना है (नागनाथ—चंद्रलेखा) सीदी मौला की भी रसेश्वर सिद्धि है तिब्बत के प्रसंग में बौद्धों की महायानी साधना है, शक्ति आगमा की पोटश-कुमारी साधना है (अमोष वज्र) वज्रयानी साधना है महाचीनाचार है वामाचारियों का चक्र पूजन है नील सरस्वती की साधना है (जल्हन, अगोक चलन) लौकिक साधना का साधारण रूप है (साधारण

पुरुषा तथा नारिया पर दवी का भाव आता है) नानागोसाइ तथा घुडकेश्वर की वहुत कुछ गव तथा पागुपत साधना है। इसके साथ साथ और समानातर दा साधनाएँ और है—पहली है नाटी माता की मधुर भाव (राधा भाव) की वैष्णव उपासना, और भगवती विष्णुप्रिया की वष्णव-सी साधना। लखन न आधुनिक मनोविज्ञान व आलोक म—किन्तु उसी युग की भाषा गैली म—न साधनामा व रहस्या के ताकिक निरूपण की काशिका की है। इस तरह पहले तो इन साधनामा का इतिवृत्त और विवरण दिया गया है फिर उनके मनोवैज्ञानिक अर्थ खोजे गए हैं तदुपरात सामाजिक प्रभाव की दृष्टि स इनम स कई की तीखी आलोचना की गई है—स्वय इनक साधना व द्वारा। सबसे पहले रसस्वर साधना करन वाली रानी चद्रलेखा का लें। आठवें परिच्छेद से व स्वय को प्रथम पुरुष म 'चद्रलेखा कहकर संबोधित करने लगती हैं जहा म उनकी प्रथम पुरुष की साधना शुरू हानी है। किन्तु वास्तव म मनोवैज्ञानिक तौर से उनका व्यक्तित्व विभक्त हा जाता है और उनक मस्तिष्क का सतुलन नष्ट हो जाता है। भगवती विष्णुप्रिया अमोघवज्र और मना तीनों विमर्शों के द्वारा उह पुन नामिल बनाना चाहती हैं क्योंकि व अबनामिल' हो गई हैं। जहाँ उनके गुरु नामनाथ न कोटिवधी रस की साधना व लिए उह अभिभूत किया है वह भी मात्र विमर्श है जब अमोघवज्र उनको भरथरी और युद्धरत राजा दिखात है और रानी देखती हैं वहाँ वगीकरण की किया है। अमोघवज्र स्वय कहते हैं— घ्यात स दखो। वही कुछ नही सब दृष्ट तथ्य सत्य नहीं होने। यह सब तुम रसलिये देख सकी कि तुम्हारे मन म भरे प्रति श्रद्धा व विश्वास है। प्रत्यक्ष दखा पर सत्य नही घा।' (पृ० २०८)।

रानी चद्रलेखा की फटेसी विधायक क्षमता अत्यत प्रचंड है। प्रत्येक विमर्श को व इस कदर फलाती है कि वह मायावरण का रूप ले लिया करता है। इसी लिये वे उडनी हैं आनद भरव देखती हैं, भरथरी देखती हैं आदि आदि। इनके विषय म अमोघवज्र कहत हैं कि ये रानी चद्रलेखा के भयत्रस्त चित्त के विक्षोभ से निकली हुइ अद्भुत सिद्धि-कथाएँ हैं—मात्र किस्से! व प्रत्येक विमर्श को प्रत्यक्ष (बिब) या मायावरण को रूपांतरित करने की अद्भुत क्षमता रखती हैं। पुरानी शब्दावली म अमोघवज्र विष्णुप्रिया कहती है, "चद्रलेखा की अतोत्पन्न रसदिये से कठिन गाँठें (द्वंद) पड गई थी। देख यह कल्पिका नाडी (फटेसी) सूज गई है।' इसम अनेक साधनाओ म तारा, आनद भरव अक्षोभ्य बुद्ध योगिनिया, छिन्न मस्ता आदि के अवतरित होने के जो जीवत विवरण है उनकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या विमर्श फटेसी, विभ्रम मायावरण के द्वारा की जा सकती है। साधनापीडा म या तो मद्यपान के कारण नाडिया गिधिल हो जाती है, या हवनीय द्रव्य की

उत्कट गध के कारण अचचेतन आदोसित हो जाता है, या भयत्रस्त वातावरण के कारण या गुर अथवा तांत्रिक के अधिक सशक्त मनोबल के कारण बशीकरण की स्थिति आ जाती है। जस राजा बोधा आदि भी ऐस ही चमत्कार देखते हैं। उमादावस्था म राजा को भी काले बादला म रानी के उडन आदि का विभ्रम हो जाया करता है। इसक अलावा ये सिद्ध मनोवैज्ञानिक विचार-पठन (thought reading) भी काफी करते हैं। अशोम्य भरव भद्रवाली की तथा राजा रानी चंद्रलेखा की याद करता है, जो विचार-पठन के उदाहरण है। कई स्थलो पर 'टेलिपैथि' (telepathy) प्रश्रिया भी मिलेगी। इन मनोवैज्ञानिक व्याख्याओं के अलावा लेखक न बौद्धिकतावादी व्याख्याएँ भी प्रस्तुत की हैं। चगिस खान द्वारा ज्वाला देवी की साधना का वणन वाकू क्षेत्र म किरोसीन तेल की खोज का मध्यकालीन वातावरण म विवरण है। रमेश्वर साधना अणु परमाणु से तुलनीय है।

ऊपर से नीचे भावन पर मना का माना लगता है कि कोई बलात उस पकड कर नीचे फेंक रहा है—इसका मनोविश्लेषण बोधा करत हैं और फलस्वरूप उसके एक शैशव ट्रीमा (childhood trauma) का निराकरण कर दते हैं। तांत्रिका के चमत्कार पर स्वय मँना भी कहती है कि ये तांत्रिक लोग केवल उतना ही बात बता सकत हैं जितनी प्रश्नकर्ता क मन म होती है। इसी का पूरक है भरव का जल्हन को उत्तर—“भाई जल्हन तू समझता है कि मैं सारी दुनियाँ की बात जानता हूँ। ना भाई मैं स्वय अपनी ममवेदना का उत्तर नहीं जानता।” इस तरह हम देखते हैं कि इन मध्यकालीन साधनाओं की व्याख्याओं म लेखक ने रहस्यवाद का नहीं आधुनिक मनोवैज्ञानिक व्याख्याओं का सहारा लिया है। यह उसकी परपरा और विवकगामिता की एक श्रेष्ठ उपलब्धि है जो पहली बार इन साधनाओं का बीसवीं शती क सदहलील मन के सम्मुख स्पष्ट करने की कोशिश करता है। इन साधनाओं का तीमरा पहलू है इनकी आलाचना। यह आलोचना स्वय सिद्धा के मुह स कराई गई है। धार्मिक और सामाजिक आलोचना मिली जुली है। गुरु गारखनाथ स्त्रीपूजा के स्थान पर ब्रह्मचय की प्रतिष्ठा करने को व्याकुल हैं व माया को हराने के लिय कटिबद्ध हैं और मिद्धा की साधनाओं के बजाय मनुष्य द्वारा सहज समाधि लगान को मोक्ष घोषित करते हैं। वे सिद्धो की भूखता की भत्सना करत है। राजा को सदेह है कि क्या सचमुच हो इन विचित्र साधनाओं से ससार जरा मृत्यु के चक्र से त्राण पाएगा ? नाटी माता सिद्धि की गलती बताती है। मनसिंह कहता है इन दकवादी निठल्ल सिद्धो क चक्कर म मत पडो। य बिगाडना जानते हैं सँवारना नहीं। “यक्तिगत साधनाओं के द्वारा इहोने सत्य का खडित किया है।” शव धुडकेद्वर स्वाय के लिये हिंसा, बलि,

लूटपाट करता है और दिल्ली क सुलतान स मिल जाता है । सदेहवादी अमोधवज्ज कहते हैं—“मैं देख रहा हू कि सिद्धिया के पीछे पागल बने लोगा न देश को निर्वाय और कायर बना दिया है । माया को पराभूत करन का ढोग रचने वाले लोग माया के सबसे मजबूत वाहन सिद्ध हुए है ।’ इस तरह अमोधवज्ज और मिसिलपाद (बौद्ध) काफी विवक्षील हैं और बाद म सदेहवादी भी हो जात हैं । इस युग की आलोचना क उपरात लेखक न विक्ल्प दिय हैं—साधना के सत्र म भक्ति (पण आत्मसमपण) और अपन भाव के अनुरूप विभाव पुरप की कल्पना सिद्ध रस के बजाय प्रेम रस की प्रतिष्ठा समाज के परिवेश म समष्टि चित्त की साधना जमता के मन म भय के बजाय श्रद्धा विश्वास की प्रतिष्ठा, प्रजा म छोटी से छोटी और अत्यंत पतित समभी जाने वाली जातियो पर भी स्नह रखना । दंग के पैमाने पर लेखक न तत्र मन-बल के बजाय शस्त्र बल तथा बलिदान की स्त्री-पूजा के विकृत रूपो के बजाय नारी क दुर्गा रूप, क्रिया रूप (युद्धरत रानी, श्रद्धा योद्धा मनसिंह) की महिमामय स्थापना की है । लेखक ने तांत्रिको और सिद्धा के बजाय एक सरल किसान और एक सहज गृहस्थ को अधिक महान् माना है । उस युग का इससे अधिक यथाधवादी आदर्श और क्या हो सकता है धर्मयुग को युगधर्म म स्थापित करन का ।

उप-यास की सारी कथावस्तु गति की दृष्टि से साधनाआ की बहुलता और अवातरता के कारण बड़ी मथर तथा बिखरी हुई है । इसम आवृत्ति है—बार बार युद्ध (एक ही शत्रु घुडकेश्वर—तुक सेनापति से) और बारबार तांत्रिक साधनाएँ । वाय को घटनाओ से अधिक प्रतीक अग्रसारित करते हैं । प्रतीक काय व्यापार का चरमित-सा कर लेत हैं । यहाँ प्रतीक और प्रयोजन एकतान हो गए है । स्वप्न एक जवदस्त प्रतीक है काय व्यापार और वृत्ति (धीम) के । चिटिया और पिंजर का प्रतीक तो सारी कथा मे व्याप्त है । ये कृति के ‘आर्क टाइप’ हैं । एक ‘आर्क टाइप’ त्रिकोण और भी है जा आद्यत लीलायित हुआ है—इच्छा (रानी), तान (राजा) और क्रिया (मना) नामक तीन शक्तियो का सयोग वियोग । जब सयोग होता है तब कथा निरकर-सी फूट निकलती है जब वियोग होता है तो घतचैतना की स्थिर भील बन जाती है । श्रीकृष्ण की गोनी म अस्त-व्यस्त भाव से पडी विद्युत् गौरी विशोरी राधा की मूर्ति मधुरोपासना के प्रतीक के साथ-साथ एक सामाजिक प्रतीक भी है—सिद्धा की ठूठ, भगोडी, गृहस्थधर्म विध्वंसक साधना के विरोध म सहज भाव की सगुण अवतारवानी सामाजिक जिन्दगी का । यह नारी मुजभ मधुरोपासना की दीक्षा है । नटनागर राधिका मूर्ति नाटी माता का विरेचन (कैथार्सिस) करती है रानी चद्रलेखा की सच्ची साधकता का निर्देश करती है,

सिद्धोंके मिथ्याचार और शुष्कता के विरोध में सामाजिक जीवन की रसधारा और मंगल सौभाग्य का प्रतिनिधित्व करती है, अतः व्यञ्जित की साधना का उच्छेदन करके समष्टिचित्त की लोकचित्त की साधना का प्रचार करती है। यह मूर्ति प्रतीक मध्यकालीन व्यक्ति साधनाओं के विरोध में युगशक्ति है और लेखक की चेतना तथा समाज दर्शन का निष्कप भी है। इसी का प्ररूप पान का प्रतीक है। यह प्रेम विवाह नागो पुष्प, शिव शक्ति के लालाविनास का प्रतीक है। यही गृहस्थ का धीचक्र है। मैना के निःशेष आत्मसमर्पण के गंगाजल की धारा मनारी हृदय के फल का प्रतीक पूरी तरह गमगमा उठा है। सारांश यह है कि प्रतीका की रचना द्वारा लेखक न समाज भावपिंड और समाज-दर्शन की गाय का सशेष किया है। कृष्णराधा मूर्ति हम 'आत्मकथा' की महावराह मूर्ति की याद दिलाती हुई यह स्पष्ट करती है कि इसमें उद्धार का क्षण स्वल्प और स्वभाव बदल गया है। इतिहास ने ऐसा परिवर्तन कर दिया है।

कथावस्तु में कई संपूर्ण परिच्छेद प्लेटों के निमित्त नहीं बल्कि धार्मिक या सामाजिक या ऐतिहासिक दर्शन के हेतु विद्यस्त हुए हैं। मिसाल के लिये छठे परिच्छेद में युद्ध और जनता जनता और राजा, राजा और कुलीनता के संबन्ध में सामाजिक राजनतिक आराधना प्रस्तुत की गई है। इस परिच्छेद में नारी और युद्ध के विरोधी तत्त्वकल्प का समाप्त कर दिया जाता है। यह एक अर्थ सामाजिक शक्ति है। बाणभट्ट की आत्मकथा की दबोपम नारियाँ युद्ध में भाग नहीं लेतीं किन्तु यहाँ रानी और मना नमन दुर्गा की तरह शत्रुसंहार करती हैं या गुरिल्ला सना (अटवी सना) का संचालन करती हैं। आठवें और नव परिच्छेद में कोटि बंधी रस की साधना और महाविद्या बुलदविद्या की साधना है। सातवें परिच्छेद में गदभल्ल सरस्वती कालिदास आदि के संबन्ध में ऐतिहासिक अन्वेषण है। ग्यारहवें परिच्छेद में स्त्री पूजा के विवृत रूपों का दिग्दर्शन हुआ है जिस की शिकार चंद्रलेखा तथा तापस बाला हैं। अठारहवें परिच्छेद में मना द्वारा सिद्धा की बसकर भत्सना की गई है। इक्कीसवें परिच्छेद में भगवती द्वारा गृहस्थधर्म की श्रेष्ठता और अवतार की सामाजिक व्याख्या का उपाख्यान है। पच्चीसवाँ परिच्छेद देश की चहुँमुखी अवस्था व्यवस्था का दर्पण है। छवीसवें परिच्छेद में शिव साधना दी गई है। तीसवें परिच्छेद में दश की सामंतीय व्यवस्था की राजनीति के अर्थनीति का विश्लेषण हुआ है। ये परिच्छेद प्रधान रूप में वृत्ति मूलक (thematic) है क्योंकि उपन्यास में इनकी प्रधानता और प्रचुरता सेना है, इसलिए यह रचना इतिवृत्तात्मक के बजाय वृत्तिमूलक हो जाती है। जाहिर है कि इसमें उपन्यास शिल्प विस्तरेगा ही, शल्प के बजाय तब के चिंतन

छापेगा ।

अब क्यातत्र वाले परिच्छेदो का लेखा जोसा किया जाय । इनसं कुछ नतीजे पाए जा सकते है—(i) कुछ परिच्छेद पात्रो की पिठली घटनाओ को उदघाटित करके उनका पूरा चरित्राकन कर देत है (ii) कुछ परिच्छेद घटनाओ के एकत्री करण और फिर युद्ध द्वारा उनके आक्स्मिक विस्फोटन का तक्नीक स्पष्ट करते हैं, (iii) कुछ परिच्छेद पात्रो की अतकथा अतव्यथा अतर्लीला का प्रकाशन करते हैं तथा (iv) कुछ परिच्छेद (विशेषत त्तरहवाँ) हास-परिहास के लिय हैं, कुछ बीरता के उमेप के लिय (१६ ३१, २२, १५) और कुछ दो विरोधी रसा के समतानन के लिये जिससे कि सधपों म तेजी आण (१५, २२, २५, ३१) । सबसे अधिक गत्यात्मक ये विरोधी स्थितिया का समतोलन करने वाले परिच्छेद हैं । प्रभाव की दृष्टि से ये कौशल हे । ये परिच्छेद क्या को अचानक १५० डिग्री का विरोधी या विपरीन घुमाव दे देते हैं । इसके अलावा लेखक ने कुछ पात्रो को, विशेष रूप से सीदी मौला को केवल इतिहास तथा ऐतिहासिक सूचनाओ का डाकिया बना दिया हे । अय है विद्याधर और बोधा । पात्रो का अक्स्मान प्रवेश और गमन—अपटीक्षेप प्रवेश—घटनाओ का स्वाभाविकता की कीमत पर गति देता है । इस अपटीक्षेप प्रवेश के अलावा सयोग स मिलन और गमन की पद्धति भी लेखक ने पूव उपयास की भांति रखी है, किंतु काफी कम । लेखक ने जीव नियो और सस्मरण मे कथना द्वारा बारबार क्या को काल की दृष्टि से पीछे ढीटाया है । इसमे गति की धारा घमी है । लेखक न दा छल भी फौनये है—पहला है, युवती मना का पुरप वग मे मर्नासिह होकर रहना । उसने इस भेद को ढोडे ही पाय जानते हैं । दूसरा है, वाइसर्वे परिच्छेद के बाद चारो और रानी क जीविन या मृतक होने के भ्रम । इसने बाद यद्यपि रानी तो उपयास म अत्यन्त नही आनी, किंतु क नारी गक्ति सिद्धयागिनी विमला देवी क रूप म राजा को अविधात प्रेरणा देती रहनी है ।

दाना प्रवार के परिच्छेदो को मिलाने पर हम पान है कि क्यानक क चार वातावरण मूलक ख हैं । पहले खड मे (पद्रहवें परिच्छेद के अर्धांश तक) नाना भांति की नायपथी क सिद्धपथी साधनाओ का पूरा प्रभाव और राजा तथा विद्याधर द्वारा समाज सगठन की परिवन्पनाए हैं । यह खड फिन्म की भांति चित्रखडो स गुथा है । दूसरे खड म (पद्रहवें परिच्छेद के उत्तराध म वाइसर्वे परिच्छेद तक) इन साधनाओ का विरोध करने वाली गक्तियो का विस्फोट गुरु हान लगता है । तीसरे खड मे (तइसर्वे परिच्छेद से इक्तीसवें परिच्छेद तक) समष्टिचित्त की त्रिया गक्ति का तेजी म सधान गुरु होता है । इन गने समाज का मोहमग

होता है। उपमहार रूप में चौथे षड (बत्तीसवा परिच्छेद) में इच्छा शक्ति, प्रिया शक्ति और ज्ञान शक्ति विकसित हो जाती हैं। देव पुत्र अनिश्चय और अधकार में डूब जाता है। राजा रानी मना-बोधा के रूप में देव की आदत और भविष्य घम शक्तियों पर युग रूपी खलनायक का वर्तमान अधिकार कर लेता है। इस तरह यह उपन्यास आदतवाद का नहीं, बल्कि एक नासदी और सामाजिक यथायता का अनुसंधान एवं अभिज्ञान करा देता है।

चार चक्रलेख की यही महत्ता और यूनता, प्रयागात्मकता और ऐतिहासिकता, आधुनिकता एवं पुनर्व्यख्या है।



बूढ़ और समुद्र • सामाजिक जीवन की सक्रांति का जीवन्त आलेख

अमृतलाल नागर का 'बूढ़ और समुद्र' घटनाओं और चरित्रों के चारों ओर बुना हुआ ऐसा उपन्यास है जिस एक प्रकार से प्रेमचंद की परंपरा में माना जा सकता है। प्रेमचंद मूलतः सामाजिक परिस्थितियों और समस्याओं पर, व्यक्ति के जीवन के साथ उनके प्रकट सघात पर, बल देते थे, और उसी परिप्रेक्ष्य में मनुष्यों के बाह्य आचरण के चित्रण द्वारा उनके मानसिक सघात और नैतिक अतन्द्रा का अंकन करते थे। उन्होंने मुख्यतः व्यक्ति के जीवन के सामाजिक यश को ही अपनी व्यापक और अशेष सहानुभूति द्वारा पहचाना और चित्रित किया है। उनकी रचनाओं में सहानुभूति की यह व्यापकता जितनी मिलती है व्यक्ति की निजस्व भावनाओं और पीड़ा की गहराई उतनी नहीं मिलती। किन्तु उनके परवर्ती उपन्यासकारों का ध्यान व्यक्ति की ओर भी गया। उन्होंने समझा कि समाज मूलतः व्यक्ति की अधिकतम आत्मोपलब्धि और आत्माभिव्यक्ति का ही साधन है और सामाजिक समस्याएँ इसीलिए महत्त्वपूर्ण हैं कि वे मनुष्य के इस चरम उत्कर्ष, उसकी सायकता के चरम प्रतिफल के साथ जुड़ी हुई होती हैं—उसमें बाधा बनती हैं अथवा सहायक होती हैं। साथ ही व्यक्ति भी समाज में रहकर अपने व्यापक उत्कर्ष के उद्देश्य से अपने तात्कालिक, दायस्थायी और दुर्र स्वाधो का परिश्रम करता है और इस भाँति अपनी आत्मोपलब्धि के, अपने व्यक्तित्व के, पूणतम विकास का माग अधिक प्रगस्त करता है। व्यक्ति की ऐसी महत्ता प्रेमचंद के युग तक हमारे सामाजिक जीवन में ही स्पष्ट नहीं। इसलिए उस युग के साहित्य में भी व्यक्ति के इस रूप का समस्या के इस पक्ष का, कोई चित्र नहीं मिलता, न उसको समझने अथवा सुलभाने की चेतना ही

दीखती है।

प्रेमचंद के परवर्ती कथाकारों ने कई रूपों और स्तरों पर इस कमी को पूरा करने का यत्न किया। वे या तो 'व्यक्ति के केवल निजी आंतरिक जीवन का अनुसंधान करने में लगे या फिर सामाजिक और व्यक्तिगत समस्याओं को एक प्रकार से समानांतर अथवा परस्पर संबद्ध मानकर उनमें बीच-बीच प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सूत्रों की सृष्टि करने लगे। फलतः एक और व्यक्ति के आचरण और उसके अंतःसंघर्ष के अध्ययन में अधिक तीव्रता और गहराई आई, और दूसरी ओर सामाजिक समस्याओं को भी एक नई साक्षरता और उनका चित्रण को एक नई गंभीरता प्राप्त हुई। बूढ़ और समुद्र इसी श्रद्धालुता का वर्य उत्कलनीय उपमास है जिसका प्रकाशन सन् १९५६ में हुआ है। उसकी दुनिया भी वसी ही व्यापक विस्तृत और जनसंकुल है जसी प्रेमचंद के उपमास में मिला करती थी। किंतु साथ ही उसमें व्यक्ति के मन की एकांत निजी भावनाओं का कुण्ठाग्र, उलझना और आत्मसंघर्ष को समझने का भी बड़ा सच्चा प्रयत्न दिनाई पड़ता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि शहरी जीवन के विभिन्न स्तरों के विनोदकर निम्न और उच्च मध्यवर्ग के अथवा किसी हद तक सुमनस्य वर्गों के भी जीवन का ऐसा सूक्ष्म और बहुमुखी किंतु साथ ही अधिक से अधिक सहृदयतापूर्ण रूपायन हिन्दी उपमासों में बहुत कम ही देखने को मिलता है। बूढ़ और समुद्र में एक पूरे नगर, एक पूरे समाज के जीवन के कुछेक महत्त्वपूर्ण वष सजीव हो उठते हैं। उसमें जहाँ एक ओर परंपरागत जीवन पद्धति, रीति रिवाज, आचार व्यवहार विचार विवेक पुरानी चाल के लोग और उनकी जीवन दृष्टियाँ का सटीक चित्रण है, वहाँ दूसरी ओर आधुनिक सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक शक्तियों का विचारधाराओं और परिस्थितियों के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली जीवन दृष्टियाँ व्यक्ति और उनकी समस्याएँ रहन सहन उलझन आदि भी अधिक से अधिक व्यापकता में मौजूद हैं। एक ओर ताई नदी बड़ी कल्याणी राजाबहादुर द्वारकादास लाले दलान मनिया जमे लोग हैं तो दूसरी ओर बनक्या चित्रा गीला स्विंग, सज्जन महिपाल जैसे लोग भी हैं। जहाँ एक ओर आटे के पुतले बनाकर मारण मंत्र के उपयोग में पक्का विश्वास करने वाले एक स्तर पर अत्यंत महज सरन किंतु दूसरे स्तर पर अत्यंत उलझाव भरे प्राणियों की दुनिया है वहीं हवाई जहाज से पर्व गिराकर चुनाव के आंदोलन की सरगमियाँ भी हैं। और साथ ही इन एक दूसरे से सवथा भिन्न दुनियाओं का जोड़नवाली कड़ियाँ भी कम नहीं हैं। बनल रामजी मि० वर्मा, तारा ऐसी ही कड़ियाँ हैं जो इन दोनों दुनियाओं के बीच धार-धार गुथी हुई हैं।

एक प्रकार से 'बूढ़ और समुद्र' में इन दो भिन्न जीवन पद्धतियों और जावन दृष्टियों का इतना विस्तृत और व्यापक किंतु एक हृद तक एक-दूसरे में असंबद्ध चित्रण ही उपयास की महत्त्वपूर्ण विशेषता भी है और उसकी दुबलता भी। निस्संदेह लेखक ने ऐसे कई सूक्ष्म और सुस्पष्ट दोनों प्रकार के सूत्रों को उपस्थित करने का यत्न किया है जिनसे ये दोनों जगत एक-दूसरे से संबद्ध और प्रभावित होने हैं, एक-दूसरे की समस्याओं को जन्म देते और सुलभान हैं एक-दूसरे का सस्कार करते हैं। इस प्रकार जहाँ हमारे आज के आधुनिक जीवन और उसकी समस्याओं की जड़ें, विशेषकर इन समस्याओं का साथ उलभने वाले व्यक्तियों के सस्कारों के मूल रूप में ही परिचित अपरिचित पुरानी मान्यताओं, धारणाओं और आचार व्यवहार में छिपे हुए हैं और अपना वर्तमान रूप उन्हीं सस्कारों द्वारा प्राप्त करते हैं वही दूसरी ओर इन आधुनिक प्रवृत्तियों और विचारों के सघात से जीवन की पुरानी मान्यताएँ धीरे धीरे विघटित हो रही हैं विध्वंसित हो रही हैं और नए तत्त्व उन्हें एक नया ही रूप प्रदान कर रहे हैं—यह रूप न तो पुराना है और न नया ही, इसलिए चरित्रहीन है, किसी हृद तक प्राणहीन जजर और आधारहीन है। सामाजिक जीवन की इस सन्नति का अध्ययन आज के महाकाव्य का विषय है और इसमें कोई शक नहीं कि अमृतलाल नागर ने अपने इस उपयास को महाकाव्य का फलक ही प्रदान किया है और उसे उत्तनी ही गरिमा तक उठाने और स्थित रखने का प्रयत्न भी किया है। बूढ़ और समुद्र में लखनऊ के जिस चौक का चित्र नागर जी ने उपस्थित किया है उसमें एक जीवन-व्यवस्था टूटती और एक नई जीवन-व्यवस्था जन्म लेती दीखती है। इसीलिए उपयास में एक ओर प्राचीन शिवरा के ढहने की कथा है तो दूसरी ओर नई आलोक किरण की प्रथम रोमाचकारी सिहरन भी।

टूटती हुई पुरानी व्यवस्था और जन्म लेती हुई नई व्यवस्था के इस संबध को दिखाने के लिए नागर जी ने उपयास में कई एक कथा-सूत्रों और जीवन खंडों का समानांतर प्रयोग और चित्रण किया है चौक की गलियाँ में पुरानी परंपराओं के अनुसार चलने वाली जिंदगी जिसकी केंद्र ताई है, इस जिंदगी को परिधि से छूकर निकलती हुई या किसी हृद तक काटती हुई, बनकिया और सज्जन की जीवन गाथा और सज्जन के मित्र होने के नाते इस जीवन से टूटती भी जुड़ी हुई लेखक महिपाल उसका परिवार और प्रेमिका डा० शीला स्विंग की कथा। मुख्य सूत्र य तीन ही हैं, पर इनको बीच-बीच में काटते-गूथते चलने वाले अन्य प्रसंग हैं, जैसे बड़ी विरहेश कांड, महिला-सेवा-भंडल का भंडा फोड़ राधाकृष्ण विवाह आदि, विविध व्यक्ति हैं जन्म बनल, रामजी बन्वा,

चित्रा, आदि। इस प्रकार बड़े पैमाने पर लेखक ने जीवन को समेटना चाहा है और अनगिनती व्यक्तियों घटनाओं और समस्याओं को एक साथ पिरोने की कोशिश की है—यहाँ तक कि प्रभाव की एकाग्रता नष्ट होने लगती है और सारा उप-यास असरूप रेखाचित्र की लकीरों जैसा लगने लगता है। वास्तव में मुख्य प्रसंगात्तम से प्रत्येक अपने-आप में एक विराट् उप-यास के फलक पर उठाया और चलाया गया है। इन स्वायत्त सूत्रों की अपनी-अपनी अलग-अलग गति है। वे एक-दूसरे को कहीं-कहीं स्पष्ट करने पर भी स्वतः संपूर्ण हैं और बंबल व्यक्तियों के माध्यम से एक-दूसरे से थोड़ा बहुत जुड़ पाते हैं। इस प्रकार 'बूढ़ और समुद्र' में प्रधानता विभिन्न पात्रों की है जो कुछेक सूत्रों से विभिन्न स्तरों पर ज़िदगी के विभिन्न क्षेत्रों में, एक-दूसरे से संबद्ध तो हैं, किंतु कोई एक समन्वित सूत्र नहीं उभरता जो विभिन्न तत्त्वों को अपने भीतर आत्मसात कर जीवन की समग्रता को संप्रेषित करता हो। विभिन्न प्रमुख कथा सूत्र अपने-अपने सहारे 'पारंपरिक' और 'आधुनिक' जीवन पद्धतियों, दृष्टियों और व्यवस्थाओं का चित्र मात्र उपस्थित करते हैं जो कहीं-कहीं संबद्ध होकर भी स्वतंत्र हैं। कुल मिलाकर उसे टूटती-बनती सभ्रातिकालीन जीवन व्यवस्था की भाँकी भले ही मिले पर जीवन की कोई अखंड स्थिति अपनी आंतरिक द्विआत्मकता में विभिन्न तत्त्वों की सघटनमयता में उभर कर सामने नहीं आती।

बल्कि इन विभिन्न जीवन-रूपा का अलग-अलग अनुसरण करते-करते अंत में यह लगता है कि भांगर जी वास्तव में उस पुरानी पारंपरिक दुनिया की ही जानते और समझते हैं उसी के साथ उनका आंतरिक व आत्यंतिक लगाव है। इसी से उनका जितने प्रामाणिक और सच्च चित्र इस पुरानी दुनिया के हैं उतने नयी दुनिया के नहीं। नदो ताई बड़ी मनीषा, लाले दलाल टिस्ली उस्ताद और उनका अखाड़ा गोकुलद्वारा व मितरिया जी जलघडिया जी कीतनिया जी, मुखिया जी खन्ना की बहुरिया आदि का चित्र संपूर्णतः सजीव ही नहीं उनका अकन में ऐसा मूढम कला बोध है और सहज सहानुभूति के साथ साथ ऐसा कलाकार का सहम भी है जो उन्हें हिंदी के कथा साहित्य में बेजोड़ बनाता है। सज्जन महिपाल, चित्रा, बनकिया के चित्र इतने प्रामाणिक नहीं। दोनों में यह अंतर इतना स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि एक में लेखक का आत्मीय और गहरा परिचय तथा दूसरे में एक प्रकार का काल्पनिक लगाव पूरी तरह उजागर हो उठता है। पुरानी दुनिया के ये सब पात्र अपने स्वाभाविक संपूर्ण परिवेश में अपनी समस्त सभावनाओं, दुबलताओं और क्षमताओं के साथ प्रगट होने हैं, वे अपने जीवन का सुपरिचित माँग बड़ी सहजता के साथ तैयार करते

हूए अपनी चरम परिणति प्राप्त करते हैं। उमम नदा की विकृति अथवा बड़ी की दुर्गति दानो एकदम सहज लगती है। यह दुनिया एक प्रकार म अपन आप में पूण है। और यदि केवल इसी के सद्भ म देखा जाय ता इस अश के चित्रण म विस्तार की इतनी बानें प्रस्तुत करने पर भी प्राय एमा अनुभव नही होता कि यह केवल एतिहासिक अथवा सामाजिक ढापरी अथवा घटनाओ और व्यक्तिया का संग्रह मात्र है। नागर जी उस जीवन क विभिन्न पथा और तत्त्वो की बड़ी सूक्ष्म कला-दृष्टि के साथ समन्वित करके रख सके हैं जिसने हर चित्र अपने आप म सपूण होकर भी एक बृहत्तर चित्र का अंग जान पडता है।

इसीलिये वास्तव म देखा जाय तो 'बूद और समुद्र' की मुख्य पात्र ताई है। वह हिंी कथा-साहित्य की एक अद्वितीय मृष्टि है जिसकी गणना होरी और दोखर जैसे पात्रा के साथ होगी। ताई का व्यक्तित्व असाधारण है। उसका क्रोध भी जसा असयत और अनियन्त्रित है वंसा ही निदरल और उत्कृष्ट उसका स्नेह और ममत्व भी। उसम तीव्र प्रतिहिंसा और प्रतिगाथ की घघकती हुई ज्वाला है, तो दूसरी ओर असीम कृणा का सागर भी। ऐसा सजीव और सप्राण चरित्र हिंदी उपन्यासों म बहुत कम देखने को मिला है। ताई जीवन की अनंत सायकता और अनिवाय दुःखातता को एक साथ मून् करती है। इन दो परस्पर विरोधी तत्त्वा की नागर जी जिस रासायनिक प्रक्रिया से समन्वित कर पाय हैं वह उनकी अपूव क्षमता और प्रतिभा की परिचायक है। निस्सदह लेखक को कितनी अगाध और अपरिमित कृणा तथा सहानुभूति उंडेल कर ताई के चरित्र को निर्मित करना पडा होगा कि उससे भार खा कर भी, उससे गालिया मुन कर भी, उसे भयकर स भयकर मुद्राओ म दखकर भी, हमारा स्नेह उस पर कम नही होता। वह मनुष्य के बच्चो को मारन क लिए पुतला बनाती है और बिली के बच्चों का प्यार करन के लिए अपना नम धम सब कुछ छोड देती है। अत म जब वह अपने पति को मारन के लिए 'मूठ' चलाती है और फिर एकाएक जार स नई नई नई चीखती हुई बड़ी तजी से और व्यगता से मग पडकर मूठ को अपने ऊपर लौट आने के लिए पुकारती है ता उसके सस्कारों की दृजेडी और व्यक्तित्व की गहराई एक साथ प्रकट हो जाता है। बूद और समुद्र का मूल उरस और केंद्र ताई और उसके चारा, और का वह सारा सरल और उलभा हुआ सस्कारनिष्ठ और सस्कारभ्रष्ट, परोपकारी और स्वार्थी आत्मीय और निमम परिवेग ही है जिसम ताई उत्पन्न होती है जाती है और बिलीन हा जाती है। यदि उपन्यास मूलत उसी की जीवन गाथा और काय-कलाप के घेरे को लेकर विकसित होगा और उसकी मृत्यु क साथ समाप्त हो जाता तो सभवत कही

अधिक सशक्त और सक्षम लगता। उमकी मृत्यु के बाद तो बाकी सब घटनाएँ उपसंहार जैसी लगती हैं उनमें अधिक सजीवता नहीं आ पाती।

यही बात सज्जन और वनक्या के प्रेम तथा महिपाल और उसके जीवन की दुःसात परिणति के बारे में नहीं बही जा सकती। यह अकारण नहीं है कि जहाँ पहली दुनिया के चित्रण में लेखक ने उसके निवासियों के सहज सरल आचार व्यवहार द्वारा जीवन की गहराई और उनके चरित्र की सूक्ष्मता प्रगट की है, वहाँ सज्जन, महिपाल वनक्या शीला चित्रा आदि के साथ उसने बेगुमार वाद विवाद चर्चा विमर्श विश्लेषण आदि का अन्वय लगा दिया है। पर फिर भी उनके जीवन में गहराई नहीं आ पाती। इन आधुनिक पात्रों को हम उनके सहज वास्तविक जीवत रूप में जीवन की छोटी छोटी घटनाओं के प्रति उनकी प्रति प्रिया द्वारा नहीं जानते हम वही अधिक परिचित होने हैं उनके विचारा से, उनकी बौद्धिक मायताओं से उनकी बहस और चर्चा से अपने ही विषय में उनके आत्म चिंतन और आत्म विश्लेषण से। इसलिए ये सब पात्र अवास्तविक और काल्पनिक लगने लगते हैं। उनके चरित्र की रेखाएँ धुंधली और अस्पष्ट हो जाती हैं, वही वही अनियंत्रित असंगत और कलाहीन भी लगती हैं। उनका मानवीय रूप हमारे सामने उजागर नहीं होता और यदि कहीं होता भी है तो वह बहुत ही क्षीण और प्राणहीन जैसा लगता है। यही कारण है कि बहुत सा मनोविश्लेषण प्रस्तुत करने के बाद भी सज्जन और वनक्या का प्रेम तथा उस लेकर उनके मन का सघन किताबी और सैद्धांतिक लगता है ठीक उसी प्रकार जैसे महिपाल के मन की विकृति और उसकी अंतिम परिणति आक्स्मिक तथा सनसनीपूण। इन चरित्रों के जीवन में एक विचित्र प्रकार की सूत्रहीनता असंबद्धता और सकार हीनता है यद्यपि लेखक उन्हें विगेपकर सज्जन और वनक्या को बड़ी सहानुभूति में अपने उपयास के मुख्य पात्र नायक नायिका के रूप में प्रस्तुत करना चाहता है। सज्जन और वनक्या को तो लेखक ने लगभग आदर्श चरित्रों के रूप में प्रस्तुत किया है और संभवतः सारे उपयास में सज्जन और वनक्या में अधिक भले या शरीफ चरित्र दूसरे नहीं हैं।

व्यवित्तत्व के विकास और प्रतिफलन की दृष्टि से महिपाल के अवनम भी नागर जी पयाप्त सूक्ष्मता और अतद्ध नही दिखा सके हैं। यह ठीक है कि महिपाल के चरित्र में एक तरह के सतुलन व अभाव का तत्त्व लेखक ने शुरू से ही रक्खा है और इसी आधार पर एक और उसकी आदर्शवादिता तथा दूसरी और उसकी स्वायपरता का साथ साथ दिखाने का यत्न किया है। किंतु इस अवनम आंतरिक संगति नहीं है। बूढ़ और समुद्र में महिपाल सबसे अधिक जाग्रत और

आत्मसजग व्यक्ति है। उप-यास के प्रारंभ में ऐसा अनुभव होता है कि वह लेखक का प्रतिनिधित्व करता है। लगता है कि जीवन की गहरी पीड़ा में तप कर उसने वह भोजस्वी व्यक्तित्व और जीवन-दग्ध प्राप्त किया है जो उसे एक प्रकार का बौद्धिक नतृत्व प्रदान करता है। प्रारंभ में उसकी बातों में ऐसी धार महसूस होती है जो प्रतिभा और जीवन के गहन अनुभव के बिना नहीं प्राप्त होती। ऐसा अनुभव होता है कि लेखक उसके चरित्र का एक ऐसा पृष्ठफलक के रूप में प्रस्तुत कर रहा है जिसके परिप्रेष्य में अन्य लोगों का व्यवित्तव सुस्पष्ट उद्गार कर दिखाई पड़ेगा। किंतु अचानक ही उसकी यह मूर्ति टूट जाती है। जब हमें पारिवारिक जीवन का लेकर उसकी दुबलता, अनिश्चय और खीझ का चित्र देखते हैं और फिर एक प्रकार के आत्मपलायन के रूप में डाक्टर गीला स्विग के साथ उसकी मंत्री तथा प्रेम-संबंध का परिचय पाते हैं तो ऐसा अनुभव होता है कि उसकी सारी बातें थोड़ा-बड़ा मान थीं। अंत में तो लेखक दिखाता है कि किस प्रकार वह सपत्न बनने के मोह में, समाज की रुढ़ियों के अनुसार अपनी भानजी तथा कन्याओं के विवाह करने के आकर्षण में तथा माधारण भुविधा और संपन्नता का जीवन बिताने के लालच से धन चुराता है, अपने आदर्शवाद को तिलाजलि देता है और अपने घनिष्ठ बंधुओं से अलग होकर, बल्कि उनका तीव्र विरोध करके जीवन में ऊँचा उठने की कोशिश करता है। यहाँ तक कि चरित्र की इस परिणति का अंत आत्महत्या के अतिरिक्त लेखक के पास कुछ नहीं बचता। महिपाल के प्रारंभिक और परवर्ती व्यक्तित्व में बहुत साधक आंतरिक संगति नहीं है, न तो किसी उत्तरोत्तर विकास की और न किसी गहरे सूत्र द्वारा परस्पर विरोधी तत्त्वों का समजन की। इसी से महिपाल के चरित्र में जोड़ लगे हुए जान पड़ते हैं। उसके व्यक्तित्व की गाँठ पकड़ में नहीं आती, न वह केंद्र समझ में आता है जहाँ से उसके चरित्र के ये परस्पर विरोधी सूत्र प्रारंभ होते हैं। ऐसा अनुभव होता है कि लेखक उसका सही स्थान तथा महत्त्व अंत तक ठीक से स्पष्ट नहीं पहचान सका। एक ओर लगता है कि वह सज्जन के साथ विसदृशता (कंट्रास्ट) के लिए लाया गया है, पर दूसरी ओर वही बहुत सी गहरी सैद्धांतिक चर्चा भी करता है जो विभिन्न विषयों पर लेखक के अपने, या कम से-कम प्रबुद्ध वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण को प्रगट करती जान पड़ती है। उसके दृष्टिकोण में जो धार है वह बहुत बार आत्मद्रोही या आत्मघाती होने का भाव नहीं उत्पन्न करती, इस कारण उसकी परवर्ती प्रबोधमुखी परिणति ऊपर से आरोपित और यांत्रिक लगती है।

महिपाल के चरित्र को यदि सज्जन के साथ रखकर देखें तो यह यांत्रिकता

लेखक की और भी बड़ी असफलता जान पड़ती है। इन दोनों में अधिक क्षमता वान और प्रखर महिपाल ही है। सज्जन उसकी तुलना में कहीं अधिक प्राणहीन और सायबताहीन चरित्र है, यद्यपि अतः लेखक ने उसे जस जीवन के आदर्श के रूप में प्रस्तुत कर दिया है। वास्तव में सज्जन का सतुलन खोखला लगता है, क्योंकि वह किसी मूलभूत नतिक सघष अथवा अतद्धृदय के ऊपर आधारित अथवा विवक्षित नहीं है। उसके जीवन में हर घटना जैसे सहज ही आसानी से, लेखक की इच्छानुसार, होती जाती है। वह जो कुछ भी हाथ में लेता है, मन में उसमें सफल होना है यद्यपि कहीं भी उसके चरित्र में वह गहनता अथवा अनुभव या समझ की ऊँचाई नहीं है कि उसके जीवन को आदर्श माना जा सके या जो उसकी परिणति या सफलता का विश्वसनीय बना सके। महिपाल का तुलना में उसे जीवन में अधिक सफल दिखाने में कुछ ऐसा प्रभाव पड़ता है कि अधिक निरक्षर और अधिक अक्षम लोग ही, अधिक साधारण कोटि के लोग ही अधिक सफल होते हैं। सज्जन की साधारणता लेखक के सारे प्रयत्नों के बावजूद पुस्तक में से बार-बार छलकती है यद्यपि लेखक ने बड़ी धूमधाम से और बड़े गहरे रंग में उसे अंकित किया है। उसका अतः सघष फामूला के अनुसार है और विरोधी तत्त्वा को केवल ऊपर से सजा दिया गया है। इसी लिए उसके मूढ़ बड़े बचकाने और अस्वाभाविक लगते हैं कुछ यह किताबी धारणा सिद्ध करने के प्रयत्न जैसे कि अचेतन मन की गूढ़ रहस्यमयी वृत्तियाँ किस प्रकार चेतन मन को नियंत्रित करती रहती हैं। सज्जन के अतः सघष से इलाचद्र जोशी के उप-यास के पात्रों की मिथ्या मनोविश्लेषण-परक शली का स्मरण होता है। यह उचित ही है कि लेखक बनक-या के साथ सज्जन के व्यक्तित्व की टकराहट और उससे उत्पन्न तनाव को देख पाता है, पर उप-यास में उसके लिए जो हेतु (मोटिवेशन) रखे गए हैं वे अत्यंत ही सतही और कृत्रिम हैं। अधिकतर उसके व्यक्तित्व का उद्घाटन बणन द्वारा होता है, सायक काय-यापार द्वारा नहीं। सज्जन बड़ा 'टिपीकल' फिल्मों नायक है जिसमें बड़ी कमजोरियाँ हैं पर जो उन पर अतः में विजयी होता है समस्त विघ्न-बाधाओं के बावजूद अपने शत्रुओं का नाश करता है और नायिका को प्राप्त ही नहीं करता वरन् उसके हृदय को जीतने में भी सफल हो जाता है। उसे अपार धनी माता पिता की एकमात्र सतान और कलाकार बना कर तो नागर जी न उसके फिल्मों नायक होने में बच्ची-बुच्ची कसर भी पूरी कर दी है। यही बात बनक-या के सव्रध में भी है। साधारणतः जीवन के प्रति यथाय चादी और वस्तुपरक दृष्टिकोण रखते हुए भी बनक-या के चित्रण में लेखक

स्वाभाविक रूप से रोमैटिक हो उठा है। सज्जन के साथ उसका प्रेम सबथ कुछ अनिर्जित रूप में सरल तथा पवित्र बन गया है। उसे लेकर सज्जन और बनक्या दोनो के मन में जो सघन यदाकदा दिखाई पड़ता है वह भी बहुत ही फिल्मी ढंग का है। उसमें अतः सघन की वंसी तीव्रता और प्रबलता नहीं है जो इस प्रकार के सबधों में अनिवाय होती है, इसलिए वह कोई गहन जीवन-दृष्टि की, अथवा मानव मन के गहरे सक्क की छाप हमारे मन पर नहीं छोड़ती और नीति-कथाभा के अथवा फिल्मो कहानियाँ व सघन और उनके गुसात समापन जैसी जान पड़ती है।

सब पूछा जाय तो आधुनिक व्यक्ति के भीतर इस खिचाव की उसके गहन अतद्ध और आधुनिक जीवन की परिस्थितियाँ में उसके विघटन की पक्क नागर जी की नहीं है। यह बात चित्रा और गीता स्विग के चरित्र में भी प्रकट होती है। दोनो ही एक प्रकार से असाधारण स्त्रियाँ हैं, क्योंकि दोनो ही पुरुष के साथ अपने सबध के विषय में लोक से हटकर चलती और सोचती हैं। दोनो ही विद्राहिणी हैं जो समाज के ढाग और आडवर की शिकार होना पर अपने अपने अलग अलग ढंग से उसकी अवनता करने चलती हैं। वे साधारण स्त्रियाँ से भिन्न हैं—कम-से-कम उनकी मूल परिकल्पना में बड़ी तीव्र भिन्नता की सभावनाएँ मौजूद हैं। पर मूलतः वह भिन्नता उनके मन के अतद्ध में ही प्रकट हो सकती थी, किसी सामाजिक केंद्र पर उनके चरित्र के दो सबधा विपरीत और विरोधी छोरों को एकाग्र कर देने में ही अभिप्रेत हो सकती थी। नागर जी यह करने में सफल नहीं हुए हैं। इसलिए अत्यन्त सभावनापूर्ण होकर भी ये चरित्र फीके और एक ही सामाजिक आयाम में अंकित दौल पड़ने हैं और उनकी असाधारणता पूरी तीव्रता के साथ नहीं उभर पाती।

प्रसंगवश यह बात भी कही जा सकती है कि आधुनिक जीवन के किसी भी साधारण सहज मनुष्य की नागर जा प्रस्तुत नहीं कर सके हैं, न पुरुषों को न स्त्रियों को। जितनी सूक्ष्मता और सहानुभूति व साथ नागर जी पुराने समाज के साधारण पात्रों को अंकित कर पाते हैं वैसे आधुनिक समाज के पात्रों को नहीं। उनके आधुनिक पात्र या तो विरह अथवा चित्रा जैसे पतित हो सकते हैं या बनक्या जैसे असाधारण। दूसरी ओर बनल और रामजी बाबा जैसे चरित्र अपने साधारण आडवर के बावजूद बड़े अच्छे लगते हैं। इन सबके अवन में लेखक की सहज सहानुभूति और अतद्धृष्टि स्वाभाविक रूप में प्रकट होती है क्योंकि ये सबधा उस पुराने जीवन के अंग न होकर भी, उससे कुछ-कुछ भिन्न होकर भी, अतद्ध हैं उसी के अधिक समीप, और इसीलिए लेखक

के अधिव परिचित है।

यह वही दिनचर्या स्थिति है कि इस वान में भी अमृतनाल नागर प्रेमचंद से तुलनीय है। 'गायन' में हारो और उसका परिवर्ण जितना अनूतपूव, यथाय और विश्वसनीय है उतना गहरो प्रकरण नहीं। बूद और समुद्र' में भी ताई और उसका परिवर्ण ही जावन है बाकी सब, कमावण मात्रा में उम परिवर्ण के माय दूरो के अनुपात में जीवत या मृतप्राय है। इसमें दतना भाश्चय भी नहीं। अभी तक हमार मामध्यवान लेखक भी बोन हुए युग में ही जीत है व मूलत मत्रानि वान क उस छोर पर खडे हैं जहाँ से उन्हें बूबने मूरज व रण हा स्पष्ट दिखई दत है दूर उगनबाले प्रमान की चक्क व अपनी कल्पना के महार ही करत है किमी जीवत अनुभूति के वन पर नहीं। म-वत प्रत्येक दण का मत्रातिकालीन लेखक इस कठिनाई का सामना करता है, और यदि वह स्वय दम विषय में मजग रह ता नए युग के इच्छापूर्तिपरक चित्रण से बच मक्ता है कम से कम उम पर आप्रकेशन में तो बच ही मक्ता है।

नागर जो की कला का यह अंतर्विरोध बूद और समुद्र' के बौद्धिक पथ में और भी नीचता में प्रवृत्त होता है। इस उपयाम में लेखक न अनगिनती सामाजिक आर्थिक राजनैतिक तथा भयमङ्गातिक प्रश्ना पर अपन विचार प्रस्तुत किए हैं वहीं किमी पाप के माध्यम में उसके आत्मचिंतन द्वारा कहीं विभिन्न पापों के बीच विवचन द्वारा अथवा कहीं केवल परिस्थितिया के मघात द्वारा अंतिम अध्याय में लेखक न अपन आप भी अपन विचार रखे हैं।

मूलत बूद और समुद्र' में बूद और समुद्र के व्यक्ति और समूह के स्वरूप परस्पर मबंध—महयाग और सपप—का खोजने और मयमन का प्रयास है। सत्य बुनिपादो तौर पर इन्द्रभूतक है जीवन को उसकी इन्द्रात्मकता पहचान बिना नहीं समन्ध जा सकता। यह इन्द्र जिम प्रकार व्यक्ति और समूह के बीच है, उसी प्रकार स्वय व्यक्ति के भीतर भी है और इवार्ड रूप में स्वय समाज के भीतर भी है। और, साथ ही य इन्द्रप्रस्त व्यक्ति और समूह म्यिर नहीं हैं निरंतर गतिमान हैं परिवर्तनशील हैं। इस प्रकार स्थिरता और गति मानता के बीच भी एक अणग इन्द्र भौतूद है। यह बात उल्लेखनीय और महत्व पूष है कि सत्य की इन्द्रात्मकता के इन्द्र विभिन्न रूपों और स्तरों को उनके परस्परिक प्रभावों और सबधों का एक साथ ही नापर अपने इन उपयाम में खोजने का प्रयाम करत है। बाबा रामजी एक जगह वनक्याम म कहत हैं हर बूद का महत्व है क्याकि वही ता अनंत सागर है एक बूद भी व्यय क्यों जाय ? उसका सदुपयोग करो।' पर यह सदुपयोग हो कैसे ? कैसे यह बूद अपन आपकी

महासागर अनुभव करे ? इस विशाल जनसागर में वह नितांत अक्ली है। उसका कोई अपना नहीं। ऐसा लगता है जैसे उसके चारों ओर सागर सीमा बाँध कर लहरा रहा है और वह एक बूद सागर से अलग रेत में धुलती चली जा रही है। और केवल उसकी ही यह हालत हो, सो बात भी नहीं। हर व्यक्ति आम तौर पर इसी तरह अपनी बहुत छोटी छोटी सीमाओं में रहता हुआ एक दूसरे से अलग है। आदश का यदि महत्त्व है तो सबके लिए उसका मूल्य समान हो, यह क्योंकर संभव नहीं ? बड़ी बूद हो, छोटी बूद हो, नहीं जसी बुदकी बयो न हो यह छोटाई बडाई नैतिक मापदण्ड के लिए कोई मूल्य नहीं रखती। वह मात्र यही देखता है कि बूद में, प्रत्येक अणु में, सत्य के लिए निष्ठा कितनी है।

स्पष्ट ही लेखक की सहानुभूति पुराने दकियानूसी विचारा, अधविश्वासों और मायताओं के साथ नहीं है। किंतु मनुष्य का धर्म नए युग का धर्म, परंपरा से प्राप्त नई शक्तिके आधार पर ही आत्मविश्वास के आधार पर ही बन सकता है। पर आज हम वह आत्मविश्वास प्राप्त नहीं। इस अभाव का एक बड़ा कारण लेखक राजनीतिक पार्टियों को बताता है। एक जगह उसने लिखा है कि सब पार्टियाँ अधिकांश में एक से एक बढ़कर आकांक्षा वाले, जालसाज, और मगरूरो द्वारा अनुसामित हैं आदश और सिद्धांत तो महज गिंकार खेलने के लिए झाड़ की टट्टियाँ हैं। ये राजनीतिक पार्टियाँ या तो पुरानी रूढ़ियाँ को देश के ऊपर लादना चाहती हैं या विदेशी परंपराओं को। इनमें से किसी पार्टी को भी बल्कि राजनीतिक मात्र को लेखक प्रगतिशील नहीं मानता। उसका विश्वास है कि रूढ़िगत अथवा राजनीतिजय अधविश्वासों और आतिया से जकड़े हुए जन जीवन को केवल अपने दश से प्रेम करनेवाले बुद्धिजीवियों ही रास्ता दिखा सकते हैं। पर यह काम बुद्धिजीवी तभी कर सकेंगे जब एक ओर उन्हें अपने देश की परंपरागत सृजनात्मक शक्तियाँ पर अभिमान हो और दूसरी ओर आज के युग की आवश्यकताओं की पकड़ भी। नागर चाहते हैं कि 'मनुष्य का आत्म विश्वास जागना चाहिए, उसके जीवन में आस्था जागनी चाहिए। मनुष्य को दूसरों के सुख-दुःख को अपना सुख दुःख मानना चाहिए। विचारों में भेद हो सकता है विचारों के भेद से स्वस्थ द्वंद्व होता है और उससे उत्तरोत्तर उसका समन्वयात्मक विकास भी। पर शत यह है कि सुख-दुःख में 'यक्ति का व्यक्ति से अटूट संबंध बना रहे—जैसे बूद से बूद जुड़ी रहती है—लहरा से लहरें। सहरो से समुद्र बनता है—इस तरह बूद में समुद्र समाया है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि विभिन्न विचारधाराओं के प्रबल सघर्ष के इस युग में यह उपलब्धि एक सबदनशील लेखक और बुद्धिजीवी के लिए महत्त्वपूर्ण

है, बल्कि एक प्रकार से रास्ता दिखा सकने में निरंतर सहायक हो सकती है। किन्तु साथ ही यह बात भी भुलाई नहीं जा सकती कि इस उपन्यास में यह उपलब्धि बड़ी सरल जान पड़ती है। जब तक वह जीवन के तीव्र सघप और घात प्रतिघात से उत्पन्न न हो तब तक वह निरंतर गन्तजाल से अधिक कुछ नहीं। इस बात का बड़ा भारी भय है कि वह भी एक अर्थ विचारधारा बन कर रह जाय जिसके पीछे सदागम्यता हो तो हो जीवन की अनुभूति नहीं।

यह बात इसलिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि 'बूढ़ और समुद्र' उपन्यास अनुभूति और कलात्मकता के स्तर पर इस उपलब्धि की ओर ले जाता हुआ नहीं जान पड़ता। लेखक उस जीवन के सघप में से उदभूत दिग्गम की बजाय अतः 'यह चाहिए' 'वह चाहिए' कहने की बाध्यता है। समय रचना में ऐसी चाहिए-वादी सिद्धांत-भाव्य आवश्यक ही नहीं रह जान। इसका मूल कारण जैसा कि पहले भी कहा गया है, यह है कि समूचे उपन्यास में जैसी सहानुभूति और आत्मीयता लेखक ने पिछले युग के जीवन के साथ अनुभव की है और अभिव्यक्ति की है आज के जीवन सघप के विषय में उसकी तीव्रता, उसकी पीड़ा और उसकी व्यथता के विषय में वह नहीं कर सका। पुस्तक के अन्त में किन्हीं पात्रों के बारे में यह कह देना कि वे 'एक लगेन लेकर अपने छोटे-स क्षेत्र में मानवता का दर्शन करने के लिए कमरत हाँ गए पर्याप्त नहीं है। अर्थ श्रेष्ठ आदर्शों की भाँति यह उपलब्धि भी यदि ऊपर से आरोपित है और अनुभूतिजन्य नहीं है तो वह तो केवल थोड़े और खालसे आत्मसतोष को ही जन्म दे सकती है। सज्जन और बनकिया बहुत हद तक इसी धाँये आत्मसतोष के प्रतीक लगते हैं। वे आधुनिक जीवन की विषमता का सामना ही नहीं करते उनका सघप आज के व्यक्ति का सघप नहीं है, न व्यक्तिगत स्तर पर न सामूहिक स्तर पर। आदर्शों और भौतिक परिस्थितियों के बीच मायताभा और आचरण के बीच, युद्ध और शान्ति के बीच, मृष्टि और सहार के बीच जसा भीषण सघप आज सामाजिक जीवन में और व्यक्ति-व्यक्ति के मन में छिड़ा हुआ है उसका आभास भी सज्जन और बनकिया की चेतना में नहीं है। बल्कि राम जी बाबा के रूप में जिस समाधान की ओर लेखक इंगित करता जान पड़ता है वह चाहे जितना रोचक हो, प्रेमचन्द के 'सवासदन और प्रेमाश्रम' से केवल एक-दो कदम से अधिक आगे नहीं है। निरसदेह यह आवश्यक नहीं है कि लेखक किसी भी समस्या का समाधान प्रस्तुत करे ही। पर 'बूढ़ और समुद्र' तो आग्रहपूर्वक जीवन की मूलभूत समस्याएँ उठाने और उनके समाधान खोजने की बात करता है। ऐसी स्थिति में उनका कौनसा निवहण उपन्यास में हुआ है इसका मूल्यांकन अनिवार्य हो जाता है।

एसे मूलपावन की कसीटी पर बूढ़ और समुद्र बहुत खरा नहीं उतरता ।

। वास्तव में बूढ़ और समुद्र' उप-यास परोक्ष रूप में आज के बुद्धिजीवी के इस तीव्र मानसिक सङ्कट की एक बड़ी ही महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति है । वह आज के जीवन की कृत्रिमता, पाखण्ड और स्वायत्तरता से अपनी सवेदनीलता के कारण चौकता है और उनसंघर्ष का यत्न करता है किन्तु साधारणतः उसके जीवन में परम्परागत सृजनात्मक शक्तियों और आधुनिक जीवन की संभावनाओं तथा समस्याओं का ऐसा बौद्धिक अथवा आध्यात्मिक समन्वय नहीं है कि किसी निश्चित माय की उपलब्धि कर सके । इसलिए उसकी महानुभूति एक श्रावण जाती है और बौद्धिक मायनाएँ दूसरी श्रावण । यदि किसी प्रकार अपनी बौद्धिक मायताओं को वह किसी आदेश की श्रावण उभय भी कर पाता है तो अन्त में उस यही पता चलता है कि वह प्रेरणा अवास्तविक और खोखली थी । अमृतलाल नागर भी इस उप-यास में इस विषय स्थिति में उग्र नहीं पाय है यद्यपि यह मानना पड़ेगा कि इस विषय में उनकी लोच और उनकी ईमानदारी से किसी की इकार नहीं हो सकता ।

'बूढ़ और समुद्र' के कथ्य का यह अन्तविरोध उसने स्वयं ही और गहन में भी मौजूद है । अमृतलाल नागर हिन्दी के बड़े क्षमतावान् शिल्पी हैं । उनके कथा कहने के लक्ष्य में ऐसा अनुशासन और आकर्षण है कि उनकी किसी भी रचना को एक बार सुन करने पर छोड़ना कठिन होता है । विशेषकर इस रचना में उनका परम्परागत जीवन का अध्ययन और अवलोकन इतना सूक्ष्म और गहरा है और उसको मूल रूप देने की क्षमता ऐसे अपूर्व रूप में प्रकट हुई है कि हिन्दी में उनका समानो नहीं । वे बड़े सहज भाव से एक कथानक बाद एक ऐसे चित्र उभारते चले जाते हैं जिनकी आत्मीयता और सहानुभूति में कोई अछूता नहीं रह सकता । किसी क्षेत्र की बोनी की पुनः सृष्टि में भी वे अद्वितीय हैं और किसी भी प्रसंग को अपनी भाषा और शैली के चमत्कार से स्मरणीय बना देते हैं । पर लक्ष्य है कि 'बूढ़ और समुद्र' में यह सहजता और क्षमता ही उनकी कठिनाई और सीमा बन गई है । वे किसी भी प्रसंग को उठा कर उसके वर्णन के रस में स्वयं इतने डूब जाते हैं कि संपूर्ण उप-यास के मद्दे में उनकी स्थिति और आनुपातिक साक्ष्यता का उद्देश्य ध्यान नहीं रहता । इसलिए प्रत्येक छोटे से बड़े वर्णन भी स्वतंत्र रूप से अत्यन्त रोचक और चमत्कारपूर्ण हो उठता है और समग्र रचना की अन्विति को ताड़ देता है । सञ्जन-वर्णन का वृद्धावन-वर्णन, राजा द्वारिका दास का जलसा, महिना सेवा मडल का भङ्गाफोड, ताई द्वारा राधाकृष्ण का विवाह चित्रा की प्रदर्शनी आदि ऐसे अनगिनती स्थान हैं जहाँ रोचकता और वर्णन को विशदता के लिए पूरा रचना के समन्वित प्रभाव को बलि चढ़ा दी गई है ।

ऐसे सब प्रसंग अपने आप में स्वतंत्र रेखा चित्र जैसे हो जाते हैं। फलस्वरूप पूरी रचना के गठन में अनुपात और आंतरिक सम्बन्ध की निश्चिन्ता बेहद खलती है। विभिन्न कथा सूत्रों के बीच, तथा उनके अंतर्गत उप प्रसंगों, विवरण और वणनों के बीच कलात्मक सौंदर्यात्मक संतुलन और समय नहीं रह पाया है। लेखक इतनी मधुरता की मृष्टि करता है कि वह कड़वी लगने लगती है। साथ ही नागर जी के इस मसाले में सरस हरियाली के पास ही बीच-बीच में उजाड़ बजर प्रदेशों की भी कमी नहीं। बूढ़ और समुद्र के सबसे बोभिल और अनाश्यक अंश उसके लम्बे चौड़े वादविवाद अथवा आत्म विद्वेषणात्मक स्थल ही हैं। विशेष रूप से जहाँ लेखक ने विभिन्न विषयों से सम्बंधित अपनी जानकारी को किसी पात्र के माध्यम से बहने का यत्न किया है, वहाँ वह बहुत ही नीरस और अराचक हो गया है। बूढ़ और समुद्र ऐसा उपवास है जो सक्षिप्त होकर निश्चय ही अधिक तीव्र और प्रखर हो सकता है।

यह असमता और अविधि का अभाव उसमें घाली के स्तर पर भी है। लेखक की मुख्य पद्धति यथायवादी है पर बीच-बीच में वह अतिशयोक्ति और अयथायवादी युक्तियों का सहारा लेता है जिससे विसंगति पदा होती है। सतत यथायवाद के साथ काटून-जसी पद्धति सदा मेल नहीं खाती। नागर प्रथम कोटि के किस्सा गो नौली के लेखक है और बूढ़ और समुद्र के अंश के एक लिए उनकी वह घाली बहुत ही उपयुक्त भी है। कहीं-कहीं उनके वणन 'च द्रवाता' गली की याद दिलाते हैं और बड़े चमत्कारपूर्ण भी लगते हैं। पर संपूर्ण उपवास में घालीगत सामंजस्य नहीं है। कहीं वे ऐसे वणन करते हैं जैसे घटनाएँ इसी समय सामने घट रही हो कहीं इस प्रकार जस अतीत में घट चुकी हो कहीं किस्सागो के ढंग से, कहीं मनोवैज्ञानिक विद्वेषणात्मक ढंग से। पूरे उपवास के रूपबंध में इसमें विषयानुकूल विविधता के बजाय स्वर का विवादीपन और वैषम्य, प्रभाव का ऊबड़खाबड़पन और वातावरण का टूटना-बनना ही अधिक उभरता है।

निस्संदेह यह संपूर्ण विद्वेषण इस परिप्रेक्ष्य में ही है कि 'बूढ़ और समुद्र' युद्धोत्तर हिन्दी उपवास की एक महत्त्वपूर्ण और सशक्त कृति है जो अपनी अपूर्व उपलब्धि के कारण ही मूल्यांकन के स्तर को अधिक ऊँचा और बढोर रखने की माँग करती है। उसमें निश्चित रूप से इस दौर की सबश्रेष्ठ कथाकृति बनने की पूरी सम्भावना थी और अमृतलाल नागर के पास उस दायित्व को निभाने योग्य पर्याप्त सामर्थ्य भी है। पर इस बात से गहरी निराशा ही होती है कि यह उपवास उस स्तर तक नहीं पहुँच सका। फिर भी, अपनी समस्त दुबलताओं के बावजूद वह पिछले दो दशकों के सबसे महत्त्वपूर्ण उपवासों में गिना जाने योग्य है, इसमें कोई संदेह नहीं।

मैला आँचल · ग्रामाचल की मुखरित आत्मा

यह उप-यास 'आचलिक' नाम से अभिहित किया गया है। क्या इस उप-यास का आचलिक विशेषण या ही दे दिया गया है या इसके वस्तु-संगठन और जीवन ग्रहण की दृष्टियों में कुछ ऐसी नवानता है जिसे व्यक्त करने के लिए उप-यासकार को यह विशेषण जाड़ना पड़ा है। मैं समझता हूँ कि 'मैला आचल' से प्रारंभ होने वाले हिन्दी के आचलिक उप-यासों में उप-यास का एक नयी विधा प्रदान की है। वस्तुग्रहण, वस्तुसंगठन, टेकनीक भाषा सभी क्षेत्रों में एक नया उभेप पूरा है। आचलिक उप-यास का एक विशिष्ट ग्रथ है। आचलिकता का ग्रथ बहुत-से लोगों ने स्थानीय स्तर से लिया है किन्तु यह भ्रम है। आचलिक उप-यास अचल के समग्र जीवन का उप-यास है। जैसे नयी कविता ने तीव्रता से, सच्चाई से भोगे हुए, अनुभव की भट्ठा में तपे हुए पत्तों को व्यक्त करने से ही कविता की सुन्दरता देखी, वैसे ही उप-यास के क्षेत्र में आचलिक उप-यासों ने अनुभवहीन सामान्य या विराट के पीछे न दीड कर अनुभव की सीमा में आने वाले अचल विशेष को उप-यास का क्षेत्र बनाया। आचलिक उप-यासकार जनपद विशेष के बीच जिया होता है या कम-से-कम समापी द्रष्टा होता है। वह विदवास के साथ वहाँ के पात्रों, वहाँ की समस्याओं, वहाँ के सम्बन्धों, वहाँ के प्राकृतिक और सामाजिक परिवेश के समग्र रूपों परम्पराओं और प्रगतियों को अक्षित कर सकता है। आचलिक उप-यास लिखना मानो हृदय में किसी भू-भाग की कसमसाती हुई जीवनानुभूति का वाणी देने का अनिवाय प्रयास है। इस सदर्भ में एक आक्षेप भी किया गया है—वह यह कि आचलिक उप-यासकार को युग के जटिल जीवन बोध का

रिचय नहीं हाना अतः वह नास्टैलजिया का गिबार हो कर मोहक अतीत की ओर भागता है या ऐम भू भाग के जीवन की रगीनिया की ओर भागता है जो पिछड़ा हुआ है, जो आधुनिक बोध से बटा हुआ सरल-तरत जीवन बिता रहा है। यह आक्षेप अपने आप में घोषा है क्योंकि यह खतरा तो किसी भी प्रकार के उपयास में हो सकता है। आचलिक उपयासा में काल की दृष्टि से दो श्रेणियां हो सकती हैं—एक तो वे हैं जो अतीतनाशीन जीवन को चुनते हैं लेकिन उस अतीतवालीन जीवन को मोहक रूप में प्रस्तुत कर देना उनका लक्ष्य नहीं होता वरन् वे उसके भीतर से कुछ मूल्यों को उभारते हैं जो उनकी दृष्टि में जीवन की शक्ति और सौंदर्य हैं साथ ही माय व अचल विरोध के सघन सौंदर्य की मूल्यता को स्वर देते हैं इस प्रकार अचल विरोध अपनी समस्त मोहकता और कुरूपता शक्ति और सौंदर्य के माय सजीव हो उठता है। विभूतिभूषण बनर्जी का आरण्यक इसी प्रकार का आचलिक उपयास है। दूसरी श्रेणी के उपयास वे हैं जो अचल विरोध व समसामयिक जीवन को ग्रह करते हैं। वे वर्तमान युग में विकसित अचल विरोध के जीवन-सम्बन्धों, सघन मूल्य प्रदान और अभाव आदि की मूढम रेखाओं में उसकी समग्र आधुनिक मूर्ति का कल्पन करते हैं। मला आंचन इसी प्रकार का आचलिक उपयास है। अतः कुछ लोगों का यह आक्षेप कि आचलिक उपयास लिखना मानो आधुनिक बोध में भाग कर नास्टैलजिया का गिबार होना है अनिवाय रूप में सत्य नहीं है।

'मना आंचल' पूर्णिया जिले के एक पिछड़े हुए गाव मेरीगज की स्वतंत्रता के पूर्व के दो तीन वर्षों की मनी जिन्दगी की सारी कसमकस का जीवित चित्र है। हिंदी में पहली बार किसी अचल विरोध के उपक्षित जीवन की समस्त छवि और कुरूपता सीमा विवशता और समावना का इतनी मानवीय ममता और मूढमता में रूप दिया गया। कम मला आंचन में पहले नागाजुन के कई उपयास आ चुके थे जिन्हें आचलिक कहा जाता है लेकिन नागाजुन के उपयासों में एक ही साथ अचल जीवन की समग्रता और सविनष्टता लक्षित नहीं होती। उनमें जीवन के अनेक अतविरोधी मूला की जटिल बुनावट नहीं है। ये उपयास अचल विरोध से सम्बद्ध अवयव हैं लेकिन वे एक तो मायवादी दृष्टि में प्रेरित होकर कुछ पिछड़े हुए पात्रों के प्रति महानुभूतिपूर्ण होकर सीधे-सीधे वग-मघप को चित्रित करते हैं दूसरे उनका वस्तुगणन भी सीधे-डग का हाता है क्योंकि वे अचल को नामक न मानकर किसी पात्र को नामक मान कर चलते हैं और पहले के उपयासों की तरह उसी के रूढ़िग

अप्य पात्रा और घटनाओं को बुनते हैं। इसलिए नागाजुन के उपयासा में विखराव का प्रश्न कभी उठा ही नहीं, जबकि 'मला आचल' और उसके समान अप्य उपयासा पर विखराव का आभेप लगाया गया है।

'मला आचल' एक पिछड़े हुए गाव की कथा है 'इसमें फून भी हैं, गूल भी है धूल भी है गुलाल भी, कीचड़ भी है, चदन भी, सुदरता है, कुरूपता भी'—लेखक किसी से भी दामन बचाकर निकल नहीं पाया है। लेखक की इस विनयि से ही प्रतीत होता है कि वह गाव को समग्र और यथायवादी दृष्टि से देख रहा है—वह न तो गाव को सीधे सादे जावन का आदश मान कर चलता है और न कुछ वर्गों की हिमायत करने के लिए उसे प्रस्तुतित टुकड़ों में बाट कर देखता है। अपनी समस्त कटुता और मृदुता और नये सम्बन्धों के साथ विकसित जो गाव है, अनेक अटिल सम्बन्ध सूत्रों से जकड़ा जो गाव है, उसे वह अखंड भाव से देखता है। राजनीति, अर्थनीति, धर्मनीति सभी इस जीवन को अपनी अपनी सुन्दर असुन्दर रेखाओं से काटती हुई उसे नया रूप दे रही है। कहा जा सकता है कि रेणु ने 'मला आचल' में अचल विवेक की कथा ही नहीं कही है बल्कि अपनी सशक्त व्यंग्य शली से कथा को इस प्रकार नियोजित किया है कि समस्त अचल सजीव होने के साथ माय जीवन के सौन्दर्य-असौन्दर्य सद असद की ओर बड़ी ही सूक्ष्मता से संकेत करता है और इस प्रकार यह कथा अचल के ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनतिक परिवर्तन में तथ्य आयोजन न रहकर जीवत मानव-संवेदनो मूल्य सधर्पों और अतिविरोधप्रस्तुत वग चेतनाओं की कहानी बन जाती है।

कुछ पिछड़े हुए गाव ऐसे हो सकते थे, और अब भी हैं, जहां इतनी राजनीतिक चेतना या सधर्प नहीं लक्षित होता। मुझे स्वयं अपने गाव में (जो गोरखपुर का एक पिछड़ा हुआ गाव है) राजनीतिक दला की चेतना का ऐसा सधर्प नहीं दिखाई पडा। इसलिए मैं अपने दोना आचलिक उपयासों में राजनीतिक दला के सधर्प को बहुत दूर तक नहीं खींच सका हूँ किन्तु यह और बात है। हो सकता है मेरीमज में यह सधर्प रहा ही हो और न भी रहा हो तो उसका होना असम्भव नहीं और लेखक का छूट है कि वह अपने अभिप्रेत को मूर्तित करने के लिए सम्भावना के भीतर के यथाय को ग्रहण करे। उस तरह वह एक गाव की कहानी के माध्यम से तत्कालीन चेतना के सधर्प को अचित्त कर सकता है। रेणु न एक गाव की मयाणा के भीतर समेट कर तत्कालीन राजनीतिक दलों के आपसी टकराव और अतिवादितियों को बड़ी मार्मिकता में चित्रित किया है। व्यंग्य की शक्ति ने एक और लेखक को किसी

दल का पक्षधर और कटु होने में बचा लिया है दूसरी ओर प्रभाव में बड़ी तीव्रता भर दी है। लेखक की व्यंग्य-शक्ति प्राचीन और नवीन के मध्यों प्राचीन प्राचीन के मध्यों नवीन नवीन के मध्यों गहनरीति धर्म और समाज की नयी-पुरानी मजादाओं के आदसी सधर्षों तथा इन सबके बीच उत्तन्ते-मुवन्त्रे तीव्र अतविरोधों को बड़ी बुगलता से चित्रित करती चलती है। लेखक की व्यंग्यात्मक प्रवृत्ति अनेक तथ्या का मधटित करती हुई भी उनसे परे किसी सूक्ष्म सत्य की ओर सकेत करती रहती है। 'स मनेत कोन पकड पाने वाता 'मैला मीचल' के स्थूल वस्तुनगटन और चरित्र भगिमा का रस लेकर ही वृत्त हो जाएगा जो कि इस उपचाम का चरम दान नहीं है। गुजराती कवि और विवेचक श्री उमादाकर जोशी ने अपने एक लेख में 'मैला मीचल' के बारे में लिखते हुए कहा है— कथा का मधटन होना है कटाक्ष (irony) के द्वारा। 'मैला मीचल' को आकार प्रदा करन में और (बल्कि इसलिये) मजनात्मक नापा पाने में श्री रेणु को यदि कुछ सफलता मिली है तो उसका कारण है यह कटाक्ष। यही कटाक्ष कथा को समकालीन घटनाओं का दस्तावेज बनने से मधवा समाजशास्त्रीय आलेख बनने में बचा लेता है और कलाकृति बनन की ओर उसे ले जाना है।

लेखक की व्यंग्य-शक्ति पात्रा और वस्तुओं के अतविरोधा या अममतिपा को बड़ी बारीकी से चीरती चली जाती है किन्तु वह क्रूर नहीं होती वह सदैव मानवीय तरलता में प्रेरित रहती है। क्रूर अमानवीय वृत्तियों के अतविरोधों या मनुदरताओं को चीरते समय लेखक की व्यंग्यशक्ति सत्य नहीं होती—जैसे नागा बाबा क क्रूर कम क प्रतिरोध में बालाचरन का दल उस मारता है और नागा नागता है तो नागा के मार खान क प्रति न तो लेखक सद्य होता है और न पाठक लेकिन ऐसे पात्र मला मीचल में नहीं के बराबर हैं जो अपनी अदम्य क्रूरता या कोमलता के कारण लेखक की कंबल निममता या केवल ममता पा सके हा। मारे के सारे पात्र गतिगोल परिस्थितिया में गिरत-पडने लेखक की मयायवादी दृष्टि के कमरे में बनी होने रहते हैं और लेखक जब अपनी अतनिहित ममता के जल में घोकर उनके चित्र निरानता है तो ये पात्र अपने आप वहाँ हमें क्रुड करन हैं वही द्रविन करन हैं परिस्थितिया-जन्य उनकी विविध छवियाँ एक ओर मयायवाद का निर्वाह करता है दूसरी ओर गतिगोल होने के कारण हम उनके प्रति पूवप्रहपूण या एक विनैप धारणाबद्ध होने में बचा लेती हैं। मला मीचल में मानवीय छवि की मूँ लीला मधो पाठ व्याप्त है। यहाँ तक कि 'मेरीगज' का नूतनपूव नीलवर भाटिन, जिसके

किसी किसान के मुँह से मेरीगज गाव का पुराना नाम निकल जाने से उसे गिन गिन कर पचास कोड़े लगाये थे, अपनी ही परिस्थितियों की लपेट में आकर दयनीय बन जाता है, वह पागला सा भटकता है और अपनी सम्पत्ति का ध्वमावशेष छोड़ कर मर जाता है। इसी प्रकार रामखेलावन बालदेव लछिमी, जोतिपी बाबा महेश सेवादास, कालीचरन तहसीलदार रामकिरणपाल सिंह आदि सभी पात्र बहुत ही मानवीय रूप में आये हैं। लेखक ने किसी के साथ आयाज नहीं किया है अपनी आर से वह किसी की खिल्ली भी नहीं उड़ाता बल्कि उसकी व्यथ्य विधायिनी शक्ति ऐसी परिस्थितियों का संयोजन करती है कि पात्र या प्रसंग या धारणाएँ या मयादाएँ अपनी विसंगतियों में उपहासास्पद हो उठती हैं और उपहासास्पद होकर भी अपनी अनिवाय विवशताओं की सीमा में हमें हँसने के साथ द्रवित भी करती हैं अपने से विरक्त नहीं अनुरक्त करती हैं। यही रेणु की एक महत्वपूर्ण विशेषता है और 'मैला आचल' के सौंदर्य का एक विनिष्ट रहस्य। बालदेव हो, चाहे काली चरन चाहे लछिमी चाहे रामखेलावन, चाहे रामदास चाहे और पात्र—सभी इसी प्रकार के परिस्थितिगत और स्वभावजय सघप तथा मानवीय विवशता पूर्ण अंतर्विरोध लेकर जीते हैं और इसीलिए 'मैला आचल' एक और गाव के जीवन का बड़ा ही यथार्थ स्वरूप उदघाटित करता है तथा दूसरी ओर गाव के प्रति एक अभूतपूर्व ममता उभारता है।

वस्तु संगठन की दृष्टि से यह उपन्यास अब तक के उपन्यासों से थोड़ा भिन्न है। यह भिन्नता मला आचल की या अन्य सश्लिष्ट आचलिक उपन्यासों की अनिवायना है। कहा जाता है कि वस्तु संगठन की दृष्टि से मैला आचल और कुछ अन्य आचलिक उपन्यासों में विखराव है यानी उनमें अनेक विखरी हुई घटनाएँ और अनेक विखरे हुए पात्र इस तरह एक दूसरे के विकास में अपरिहाय रूप से योग दिए बिना आते हैं और अपनी अपनी जगह पर स्थित हो जाते हैं कि उपन्यास एक सूत्र में सघटित नहीं हो पाते। वास्तव में ऐसी आपत्ति इसलिए पदा होती है क्योंकि हम आचलिक उपन्यासों के अलग स्वरूप को परल नहीं पाते। आचलिक उपन्यास न तो घटना प्रधान उपन्यासों की तरह कुछ खास पात्रों के जीवन से सम्बद्ध घटनाओं और समस्याओं को लेकर वेगवती धारा की तरह नयी-नयी भूमियाँ को पार करता हुआ आगे बढ़ता है और न वह मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की तरह कुछ गिने चुने पात्रों के मन का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इन दोनों अवस्थाओं में विखराव का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, किन्तु आचलिक उपन्यास का उद्देश्य है स्थिर स्थान पर गतिमान समय में जीते हुए अचल के

व्यक्ति के समग्र पहलुओं को उद्घाटित करना। इस प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए उपयुक्त दोनों प्रकार के उप-यासों का गिल्फ बौगल अपर्याप्त है। अचल के समग्र जटिल जीवन चित्र को अंकित करने के लिए लेखक कहीं मोटी रेखाएँ खींचता है कहीं पतली, कहीं अथवागा को भरने के लिए दो चार बिन्दुओं को भाँट देता है। अनेक पर्वों उत्सवा, विदवासा व्यथा के अथवासरो, गीता सघर्षों प्रकृति के रंगों, पुराने नये जीवन मूल्यों की उलझी पतों आदि स लिपटा हुआ अचल जीवन अभिव्यक्ति के एक नये माध्यम की अपेक्षा करता है। अत आचलिक उप-यासकार एक दिशा में बहने के स्थान पर एक ही साथ पूरे अचल की चतुर्मुख यात्रा करना चाहता है और उन उपादानों को यहाँ वहाँ से चुनता है जो मिल कर अचल की समग्रता का निर्माण करते हैं। ये उपादान वास्तव में आपस में बिल्लरे नहीं होते इनमें एक अत सूत्रता होती है। ये अपना अलग अलग पूरा अस्तित्व रखते हुए भी अचल जीवन के उस पक्ष में चितरे होते हैं जो अन्य से छूट गया है। ये उन अ-यासों से जुड़ कर व्यापक जीवन की एक कड़ी बन जाते हैं। कहना न होगा कि हिन्दी आचलिक उप-यासों को कथा-सघटन का यह नया रूप मला आचल' ने ही दिया है।

मला आचल में तमाम घटनाएँ आती हैं, तमाम प्रसंग आते हैं तमाम पात्र आते हैं इतने कि याद नहीं रहते। ये सीधे सीधे नहीं आते आपस में उलझे हुए आते हैं, एक दूसरे को काटते आते हैं इस प्रकार प्रत्येक सग कुछ चुनी हुई घटनाओं या चरित्र विशेषताओं की सीधी रेखाओं से खिंचता हुआ नहीं आता बल्कि वह अनेक परस्पर अनुस्यूत जटिल और आड़ी तिरछी रेखाओं से अंकित होता हुआ उभरता है। इस तरह उप-यासकार एक ही साथ अनेक परस्पर लिपटी तहा अनेक गुंथे हुए प्रसंगों अनेक सश्लिष्ट मूल्यों और बोधों तथा अत विरोधा को सूक्ष्मता साक्षरिता एवं व्यंग्यात्मकता से उभारने में समर्थ होता है। सख्त को अपनी ओर से कुछ नहीं कहना पड़ता, प्रसंगों परिस्थितियों और मनस्थितियों की नाटकीय पारम्परिकता ही सारी विद्रूपता सुन्दरता और जटिलता को ध्वनित करती चलती है। रेणु की यह शली हिन्दी उप-यासों के क्षेत्र में नयी गैली है और जहाँ अनेक अतविरोधा, जटिल बोधों बनते विगड्डे मूल्यों, जीवन की सत्रातियाँ स्रष्ट अचल जीवन को मूर्तित करना उद्देश्य ही कहा इस कार की शैली का अ-वपण उप-यास के लिए एक अनिवायता और उपलब्धि है। यदि रेणु ने अलग अलग अध्यायों में अलग अलग पात्रों की कथा कही होती तो अलग अलग घटनाओं को उभारा होता तो मला आचल को यह आंतरिकता और सश्लिष्टता नहीं प्राप्त हुई होती। उदाहरण के लिए पहला ही अध्याय लीजिए।

अस्पताल की भूमि की जाच पन्ताल करने के लिए डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के आदमी आन है तो कितनी चीजें एक-दूसरे की काटती आपस में जुन जाती हैं—जनता का भय गांव के अनक नेताओं के चरित्रों का संश्ले उनका पारस्परिक विराध बालदेव के प्रति नोगा के बदलते भाव आदि अनक वानें आपस में लिपटी हुई उभर जाती हैं ।

मला आचन की यह शक्ति प्रखारातर से उसकी सीमा भी बन जाती है । वस्तुमघटन का यह ढग ऐसा है कि कोई भी प्रसग घटना या पात्र पाठक के सामने देर तक नहीं टहरता—चित्रा पर चित्र आने हैं चले जात हैं तमाम चित्रा की रेखाए आपस में उलभ कर नये चित्र बनानी हैं लेकिन इस त्वरा में कोई भी चित्र हमारे मन में गहरी लकीर नहीं बना पाता । अलग अलग अध्यायो में कुछ विशेष पात्रों और घटनाओं को प्रमुखता देकर बड इतमिनान से उन्हें उभारते चलत रहने का परिणाम यह होता था कि वे पाठकों के चित्त पर अपने प्रभाव की गहरी लकीरें खींचते चलते थे किंतु मला आचल में किसी को एक ही समय में बहुत देर तक टहरने का मौका ही नहीं मिलना—छाया चित्र उडते रहत हैं । इस शैली में क्लासिक उपयोग नहीं लिखा जा सकता । मला आचल गोदान की तरह किसी क्लासिक पात्र को नहीं दे सका है इसके पात्र मन को आत्मीयता में सराबोर कर देते हैं लेकिन कोई होरी या घनिया की भांति क्लासिक होने की शक्ति नहीं प्राप्त कर सका है । वाचनगत में इस शक्ति के मकेत मिलते हैं । किसी पात्र के क्लासिक बन पात्र का कारण यह भी है कि नखक की दृष्टि में कुछ विनिष्ट पात्र महत्त्व के नहीं हैं महत्त्व का है अचल का व्यक्तित्व जिसे मूर्तित करने के लिए ही इन सारे पात्रा का नियोजन हुआ है । मला आचन में ऐम भी पात्र हैं जो आश्रि में अत तक चलत हैं और रेखाए बनात हैं कुछ ऐसे भी हैं जो दो एक अवसरा पर आते हैं और प्रसग विशेष का अपने लघ अस्तित्व से साधक बना कर विनीत हा जात हैं ये छाट डोने विष्ट हैं । चित्र बनाना के लिए सबका अपना अपना महत्त्व है । कोई किसी के लिए नहीं है सभी अचल के लिए हैं अन किसी को विशेष महत्त्व देकर नायक बनाना या प्रमुख पात्र बनाना लेखक का उद्देश्य महा है सभी अपनी अपनी विशेषताओं को लिए हुए अचल के व्यक्तित्व की इकाया हैं । किंतु वे प्रतीक पात्र नहीं हैं वे वास्तविक और उष्णामय जीवन जाने बाल मजीब और जीवत शक्तिव हैं ।

डाक्टर मेरीगज में नयी रौननी के आन का भाग बनता है । कितनी बिडबना है कि उम गांव का नाम एक अग्रज नीतवर ने बहुत पहन मरीगज रख दिया था बहुत ही आधुनिक-सा नाम पश्चिमी रंग का नाम । लेकिन

पश्चिम की या आधुनिकता की कोई स्वस्थ विवरण उस गाँव को अब तक उ नहीं सकी है, गाँव फटी पुरानी जिंदगी जीता हुआ अपने ही नाम का उपहाम कर रहा है। लेकिन अस्पताल बनने के प्रारंभ से ही गाँव में एक नयी हलचल पैदा हो जाती है और डाक्टर आता है यहाँ वैज्ञानिक गोध करने, यहाँ की बीमारियाँ का निदान ढूँढने। मगर डाक्टर यहाँ आकर डाक्टर की सी, वैज्ञानिक की-सी अनासक्ति नहीं रख पाता वह धीरे धीरे वहाँ की जिंदगी के रस में घुलने लगता है। वहाँ की जिंदगी उस बहुत प्रिय लगती है। वहाँ की जिंदगी को प्रियता का प्रतीक है कमली—और भीसी और गनेस और । डाक्टर की जिंदगी का एक नया अध्याय शुरू हुआ है। उसने प्रेम प्यार और स्नेह को “बायोलोजी का सिद्धांत” से ही हमेशा मापने की कोशिश की थी। वह हम कर कहा करता—‘दिल नाम की कोई चीज आदमी के शरीर में हम नहीं मालूम। अब वह यह मानने को तैयार है कि आदमी के दिल होता है जिसमें दद होता है उस दद को मिटा दो आदमी जानवर हो जाएगा।’ वह वहाँ की जनता के दुःख दद से अनासक्त नहीं रह पाता अपने को खपा कर उनकी सेवा करता है। वहाँ के लोगों की जिंदगी के असुंदर और क्रूर पक्ष उभरते हैं उसे सालते हैं किन्तु वह इसीलिए बड़ा की जमीन से और भी लिपटता है क्योंकि इस सारी असुंदरता और क्रूरता के मूल में कोई रोग दिखाई पड़ता है। वह उन कीटाणुओं की खोज में है जो सारी जिंदगी की सुंदरता को साल रहे हैं और उसका रिसख पूरा होना है। वह बड़ा डाक्टर हो गया है (यानी बड़ी मानवीय संवेदना से युक्त डाक्टर)। उसने रोग की जड़ पकड़ ली है मरीची और जेहालत इस रोग के दो कीटाणु हैं—एनोफिलिस से भी ज्यादा खतरनाक, सण्डफलाई, से भी ज्यादा जहरीले। डाक्टर की यह खोज स्वयं लेसक की खोज है उस जीवन को देखन की उसकी अपनी दृष्टि है—पूण मानवीय दृष्टि समसामयी यथाथवादी दृष्टि। बड़ा ही प्रिय पात्र है डाक्टर, और वसी ही कमली है, किन्तु डाक्टर जैसी विशद वह नहीं है। वह भावुकतापूर्ण प्रिय लड़की है डाक्टर की पगती मराउ और उनकी डाक्टर भी। बालदेव, कालीचरन वासुदेव आदि पात्र एक और तो गाँव की परिधि में उभरने वाली राजनीति के विकृत अधवचरे रूपा को उजागर करने वाले पात्र हैं, दूसरी ओर अपने निजी दुःख तर्कों से स्पष्टित मजिब यकित्तत्व भी हैं। शहरों से परिचालित होन वाली परमुत्पापभी गाँव की राजनीति किस प्रकार अविशेषपूर्ण ढंग से चलती है और किस प्रकार गहन में बँठे हुए विभिन्न तत्वों के राजनीतिक तता उसका दुरुपयोग करके अपना उल्लू सीधा करते हैं

और मुसीबत के समय इन गाव वाला को पूछते भी नहीं हैं य सारी बातें बहुत ही जीवत और सश्लिष्ट ढंग से उभरी हैं, लेकिन एक बात निश्चित है कि भले रूप में हो या बुरे रूप में—आज के गाव भी राजनीति से अछूते नहीं रह सकते। रेणु ने इस सत्य को बड़ी गहराई से परखा है। इन समस्त राजनीतिक मल्यों के बिखराव और अराजकता के बीच भी लेखक की दृष्टि उसके सुंदर पक्ष को अदृष्ट नहीं छोड़ देती। बालदेव की परिणति बड़ी ही निर्जीव और परिपाटीवादी होती है बाली वासुदेव आदि अपनी अपनी सीमित परिधि में घिरे हुए, अपनी अपनी आग लिए हुए डकती और खून के बेस से सम्बद्ध करार दिये जाकर बुझा दिये जाते हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक सघ की परिणति भी बहुत ही सांप्रदायिक होती है। इन सारी चीजों के बीच वामन दास गाव की अप्रुव निष्ठा त्याग और ईमानदारी लेकर अपना बलिदान देता है और राजनीति को एक उच्च मूल्य प्रदान करता है लेकिन विडवना या सामाजिक विसंगति के परिप्रेक्ष्य में जोड़कर लेखक इस घटना को भी एक अजब दृष्टि से भर देता है। वामनदास की भोली का फीता चिथरिया पीर को चढाया गया चिथडा मान लिया जाता है और फिर चिथडे ही चिथडे। मौसी का चरित्र भी बहुत ही प्रभावशाली है—सामाजिक विसंगति में अपनी करुणा और त्याग से उभरता हुआ एक प्यारा, पर उपेक्षित व्यक्तित्व। लेखक ने सभी पात्रों को उस अंचल की मिट्टी से गढा है, परंतु उनमें उभरने वाली संवेदनाएँ समस्त मानवता को छूती हैं।

लेखक की ममता समस्त अंचल के जीवन के प्रति उसकी सारी कुरूपता और पिछड़ेपन के बावजूद हम अनुरक्त करती है। उसकी यह मानवीय दृष्टि बहुत ही सुंदर है किंतु उसकी एक सीमा भी है और वह यह कि कभी-कभी वह आवश्यक स्थलों या पात्र प्रसंगा में स्पष्ट या विरक्त होने से बचा कर प्रकारांतर से रुद्ध अभिजात संस्कारों का समर्थन करती है। ऐसा लगता है कि लेखक के मन में कहीं-कहीं अभिजात्य के प्रति मोह है इसीलिए 'मला आंचल' में महीन रूप से सारे कुटुंब्य करते हुए तहसीलदार साहब के प्रति पाठकों को कोई रोप पैदा नहीं होना और अतः तो तहसीलदार साहब अपने त्यागपूर्ण व्यवहार से अत्यधिक मोहक बन गये हैं, जबकि गाव के छोटे वर्गों के नेता यातनाभा की आधी में बहते हुए दृश्य से ही ओझल हो गए हैं। इसी प्रकार 'परती परिक्या' में जमींदार जित्तू के माध्यम से गाव की जागृति को स्वर दिया गया है वह अपनी असामान्यता और अभिजात्य में अत्यंत आकर्षक बन गया है। यह ठीक है कि स्पष्ट तौर पर वग सघप खडा करना और किसी

रस-सिद्धान्त : सार्वभौम काव्य-सिद्धान्त का अग्रलेख

आज जब हम हिंदी साहित्य में काव्यशास्त्र तथा उसके विचारों की प्रगति का पर्यवेक्षण करते हैं तो हमारी दृष्टि डा० नगेंद्र और 'रस सिद्धान्त' की ओर जाती है। 'रस सिद्धान्त' जैसा कि लेखक ने अपने निवेदन में स्वीकार किया है, उसकी साहित्य साधना की परिणति है और तीस बरों में काव्य का मनन और चिंतन से उसका मन में जो अंतःसरकार बनते रहे हैं उनकी सहति 'रस सिद्धान्त' में पाई जा सकती है। अतः 'रस सिद्धान्त' पर विचार करते हुए हम पुस्तक पर तो विचार प्रकट करेंगे ही, परन्तु डा० नगेंद्र पर भी विचार करना अनिवार्य हो जायगा, क्योंकि डा० नगेंद्र और 'रस सिद्धान्त' दोनों घुल मिलकर इस तरह एक हो गए हैं कि दोनों के बीच कोई निश्चित विभाजक रखा खोजना कठिन है।

इसलिए, 'रस सिद्धान्त' को डा० नगेंद्र से अलग कर देखना कठिन है। यह इसलिए कठिन है कि हमारी दृष्टि अनायास ही आज में ३० वर्ष पहले के काव्यशास्त्रीय अध्ययन की ओर आकर्षित हो जाती है, जो वस्तुतः दयनीय-सी ही थी।

पर आज यह परिस्थिति बदल गई है। संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रायः जितने ग्रंथ हैं उनका अच्छा, विनाद, बोधगम्य, विस्तृत अनुवाद उपलब्ध है और यदि थोड़ा भी मेधावी और परिश्रमी अनुसंधानता हो तो वह काव्यशास्त्र सम्बन्धी कठिन नियमों का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इस सुविधाजनक और वाछनीय परिस्थिति को सुलभ बनाने में मुख्य प्रेरक की खाज होने लगेगी तो सट्टा हमारा सकल डा० नगेंद्र का ओर होगा—इसमें किसी तरह के सदेह का अवसर नहीं

है। यहाँ पर काव्यशास्त्र के उन ग्रन्थों के नाम गिनाने की आवश्यकता नहीं जिनका सम्पादन स्वयं डा० नगेंद्र न किया है अथवा स्वयं लिखे हैं अथवा उनकी प्रेरणा से लिखे गए हैं। हिन्दी काव्यशास्त्र तथा आलोचना से थोड़ा भी सम्बन्ध रखनेवाला व्यक्ति उनसे पूर्ण रूप से परिचित है। जिस वक्त हिन्दी में काव्यशास्त्र के विकास का इतिहास लिखा जाएगा और इतिहासकार राग द्वेष से मुक्त होकर तटस्थ दृष्टिकोण से विचार करने लगेगा, उस वक्त डा० नगेंद्र की इस महनीय सेवा का भुलाना उसके लिए कठिन होगा। जहाँ तक मेरा प्रश्न है मुझे तो अनायास वह प्रसंग याद आ जाता है जिसमें कुमारिल भट्ट के द्वारा वेदोद्धार की कथा बनी जाती है सरस्वती रो राकर कह रही है कि—

किं करोमि वयं गच्छामि, को वेदानुद्धारिष्यति ।

मा हरोद वरारोहे भट्टाचार्योऽस्मि भूतले ॥

उसी तरह मरी कल्पना में संस्कृत-काव्यशास्त्र का पठन-पाठन, जसा कि 'रस सिद्धांत' के पढ़ने में मालूम होगा, मम्मट के बाद नहीं तो पंडितराज जगन्नाथ के बाद अवश्य ही एक तरह से रूक ही गया था। उस समय मौलिक चिंतन का प्रवाह अवरोध सा हो गया था। उस प्रवाह के अवरोध का विनाश अब जाकर हुआ है और मौलिक चिंतन का मार्ग उदघाटित हुआ है। दूसरे गान्धे में वेदा का, मतलब काव्यशास्त्र का उद्धार अब हुआ है। हारहा है और यह उद्धारीकरण की प्रक्रिया कुछ और दिनों तक चलेगी। शुक्लजी न जस्टर इसकी प्रेरणा दी थी और काव्यशास्त्र की समस्याओं पर भी मौलिक रूप से विचार प्रारम्भ किया था। उनकी नृपति नीतिवादा थी और वे परम्परा के पालक भी थे परंतु इस और उनका काय कवल अग्रयायी (पायोनियर) का ही रहा। एक तो उनका बहुत सा समय हिन्दी साहित्य के इतिहास की ओर तथा मूर, तुलसी और जायसी के अध्ययन की ओर ही लगा रहा दूसरे जय उनका ध्यान 'रस मीमांसा' की ओर गया और वे काव्यशास्त्र की समस्याओं पर गम्भीर चिंतन में प्रवृत्त हुए तब वे काल-कवलित हो गए। इसलिए उनका यह काय अधूरा सा ही रहा। इस काय को अग्रसर डा० नगेंद्र न किया है और आज भी उनके हाथों इस महान् अनुष्ठान का सम्पादन हो रहा है।

हिन्दी में गत २० वर्षों में साहित्य और काव्यशास्त्र का गम्भीर विवेचन जिस आबग और उत्साह के साथ हुआ है वह हिन्दी साहित्य के इतिहास के लिए अभूतपूर्व वस्तु है। प्राचीन साहित्यशास्त्र के बारे में तो विरोध कुछ कहा नहीं जा सकता क्याकि इतिहास की सारी कड़ियाँ हमारे सामने स्पष्ट नहीं हैं। भरत और दण्डी के बीच में गतादिया का अंतर है—इन दोनों के बीच काव्यशास्त्र

की चिंतनधारा किस ओर बहती रही, यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है। जो कुछ कडियाँ हम जोड़ सकते हैं, वह इन पुस्तिका में उल्लिखित आचार पर किया गया अनुमान मात्र है, भले ही उस अनुमान के लिए हम कुछ आधार मिल जाते हों। भरत के बाद काव्यशास्त्र की चिंतनधारा किस ओर प्रवाहित हुई होगी और रस सिद्धान्त के विरुद्ध किस तरह की प्रतिक्रिया किस किस रूप में हुई होगी फिर आगे चलकर रस शास्त्र के प्रति बाँधिये किस प्रकार गला होगा और तत्त्वज्ञान ध्वनि शास्त्र में किस तरह समावय की क्रेष्ठा की गई होगी, उसका स्वच्छ तथा स्पष्ट की तरह साफ इतिहास यदि आपकी देखना हो तो रस सिद्धान्त से अलग जाने की कोई जरूरत नहीं। शायद कोई ऐसा अर्थ साधन भी नहीं है। जिस व्यक्ति ने इस तरह श्रमपूर्वक कीड़ी कीड़ी माया बटोरकर एक नया सत्तार आपके सामने अर्पण भरे पूरे रूप में उपस्थित कर दिया हो उसके प्रति किसका हृदय वृत्तगता में भर नहीं जाएगा।

काव्यशास्त्र एक बहुत ही दुर्लभ विषय है। तत्त्वों की छात्रोत्तम से एक तो स्वयं सत्य की तब्योत उब जाती है और दूसरा ओर पाठक भी इस तरह की छुईमुई की दुनिया के मायाजात में पड़कर ऊँच जाता है। इसलिये इस क्षेत्र में सफल साहित्यिकता के लिए उन चीजों का जरूरत पड़नी है जिनका मम्मट ने काव्य के सम्प्रदाय में उल्लेख किया है। गवित लोकशास्त्र तथा काव्य के अध्ययन से प्राप्त निपुणता और काव्य शिक्षाभ्यास—यसके अर्थ 'रस सिद्धान्त के प्रणेता में प्रचुर रूप में पाई जाती हैं। परन्तु सबसे ऊपर जो अभीष्ट माध्यम वस्तु उसमें पाई जाती है वह है बाहर से भिन्न भिन्न सी लगनवाली उपाधियाँ की तह में मूल प्रेरणा के रूप में सक्रिय रहनेवाली प्रवृत्ति की पहिचान, अर्थात् अनन्यता में एकत्व सूत्र की लक्ष्यनिकायन की गवित और यह काव्य वही कर सकता है जो कवि हृदय है। जिसमें बरपना करने की दबिन हो जाटूटी कडियाँ की अपनी कल्पना की लक्ष्य में भर देता हो। यह 'गवित रस सिद्धान्त' के लक्ष्य में पर्याप्त मात्रा में बतमान है। वहाँ से भी पुस्तक उठा लेने पर इसका प्रमाण उपलब्ध हो सकता है। और इसका बहुत कुछ श्रेय लेखक की इसी कल्पना गवित को है।

डा० मनोहर ने अपनी साहित्यिक जीवन कवि के रूप में चारम्भ किया था और उस भाग में भी काफी प्रतिभा का परिचय दिया था। बाद में वे मुड़कर आलोचना के क्षेत्र में आए—क्या आए? इसकी व्याख्या करना या तो ऐतिहासिकों का काम होगा या मनोवैज्ञानिकों का और ऐतिहासिक प्रमाण यदि उपलब्ध न हो तो मानवैज्ञानिक उसके लिए बहुत ही मनोरंजक व विश्वासपूर्ण कारण बतला सकता है। पर फिन्टान मरा वह विषय नहीं है। उस समय तो इतना

ही कह सकते हैं कि कविता के क्षेत्र में डा० नगेन्द्र ने जो ट्रेनिंग प्राप्त की, वह वडे मोक पर काम आई और काव्यशास्त्र को बीहड़ जंगल में से निकालकर एक विकासशील धारा के रूप में उपस्थित करनेवाली शक्ति के रूप में सहायक हुई।

दूसरी जो बात उन्हें इस कठिन साहित्यिक काम में सफलता प्रदान करने में सहायक हुई है, वह है उनकी स्पष्ट और अभिव्यक्ति, सजीव और सगुण भाषा। उन्होंने लिखा तो है काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों पर किन्तु जिस भाषा का उन्होंने प्रयोग किया है वह एक वैज्ञानिक की है, जो बहुत ही स्पष्ट और साफ ढंग से अपनी बात का प्रतिपादन करता है। उदाहरणार्थ, भरत के रस निष्पत्ति विषयक प्रसिद्ध सूत्र 'विभावानुभावव्यभिचारिसयोगाद्रसनिष्पत्ति' में 'सयोग' से क्या अभिप्राय है, यह विवादास्पद रहा है। डा० नगेन्द्र इस पर विस्तारपूर्वक विचार करेंगे विश्वासोत्पादक प्रमाण देंगे, अतः मैं सबका समाहार करते हुए कहेंगे— सूत्र बना सयोग = उपचेय उपचायक सम्बन्ध = उत्पाद्य-उत्पादक + गम्य गमक + पोष्य पापक सम्बन्ध।' ऐसा लगता है कि कोई वैज्ञानिक धोल रहा हो, समीकरण की भाषा में।

डा० नगेन्द्र अभिनवगुप्त के प्रशंसक हैं, परन्तु उनकी सीमाओं का उल्लेख करते हुए उन्हें कहना है कि अभिनव न शकुन्तला तथा भट्टनायक के सिद्धान्तों के साथ 'याव नहीं किया, उन्हें अपने रंग में इस तरह रंग दिया कि उनका वास्तविक रूप ही छिप गया। डा० नगेन्द्र कहेंगे—'श्री शकुन्तला के विवचन में भी कला सम्प्रदाय की अनेक मूल्यवान् संकेत हैं परन्तु अभिनव ने भट्टनायक की सहायता से दान के अलावे मैं उन्हें ऐसा पछाड़ा है कि उनके गुण भी मिट्टी में मिल गए हैं। भट्टनायक के सिद्धान्तों के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि वे अत्यन्त पुष्ट, गम्भीर आधारभूमि पर स्थित हैं काव्य चिंतन के विकास में उनका योगदान अभूतपूर्व है, स्वयं अभिनव ने उनके आधारभूत सिद्धान्तों को यथावत स्वीकार कर लिया है। फिर भी उन्हें इस धुरी तरह रगड़ा गया कि एक हजार वर्ष तक भट्टनायक का महत्त्व प्रायः नगण्य हो बना रहा।'—यह बहुत ही पारदर्शक, स्पष्ट और निमलशली है। ऐसा लगता है लेखक द्वारा शास्त्रीय गम्भीरता के उच्च स्तर से उतरकर भूमि पर स्थित पाठकों को हाथ धपकाकर ऊपर खींच लेने की चेष्टा करता हो ताकि गम्भीर शास्त्रीय वाता को बोधगम्य रूप में मजे में लेने के नीचे उतारा जा सके।

कहा जाता है कि सस्कृत पंडिता की भाषा थी, जनसाधारण की नहीं। इस लिए सस्कृत में जो ग्रन्थ लिखे जाते थे वे उच्च कोटि के गम्भीर और चिंतनपूर्ण होते थे और उनका लक्ष्यभूत पाठक भी उच्च कोटि का विद्वान् होता था सब साधारण नहीं—इसीलिए जहाँ सस्कृत तत्त्व विषयों के उच्च-से उच्च कोटि के

प्रया का प्रणयन कर सकी, वहा वह कुछ लाय गया, हारा तक भी अपने पान का प्रसार नहीं कर सकी। पता नहीं, नसूत क विरुद्ध यह जो लाछन लगाया जाता है वह कहा तक सत्य है। परंतु इस लाछन के लिए सबसे अधिक प्रमाण यदि मिला होगा तो वाच्यशास्त्र के ग्रंथों में ही उसे प्रस्तुत किया होगा। दो एक वाच्यशास्त्रियों को छोड़ कर अभिनव इत्यादि जितने वाच्यशास्त्री हुए ह, उनकी शली इतनी निविड बागाडम्बरपूण कटिन और दुःख है कि वभी वभी त सामाय तथ्य भी उलभ जात हैं, गम्भीर तत्त्वा के सुलभन की तो बात ही है। विशेषत, अभिनवगुप्त ता "मके लिए प्रसिद्ध हैं। परंतु हिंदी के वाच्यशास्त्र का यह उद्धारक इस दोष से बचकर चलना है। वह सूक्ष्म गहन, दां निव तत्त्वा का भी इस तरह विश्लेषण करता है कि उस सामाय जिज्ञासा की बुद्धि सहज ही ग्रहण कर लेती ह। इस दृष्टि से मैं इस वाच्यशास्त्र के नए उदा रक को अभिनवगुप्त का नया अवतार मानता हू, केवल इस रिजर्वेशन के साथ कि उसमें अभिनवगुप्त की गी की निविडता नहीं है।

मैंने अभी 'रम सिद्धान्त के लेखक को अभिनवगुप्त का नूतन अवतार कहा है। बात कुछ बड़ी सी और अनुपात हीन सी मालूम पड सकती है और ऐसा लगता है कि अतिपरिचयादवना वाली वृत्ति इसे ग्रहण करने में बाधक बननी परंतु मैं जानबूझकर यह दात वही है। सम्भव है कि विचारों की मौलिकता के क्षेत्र में रम सिद्धांत का लेखक अभिनवगुप्त की प्रतिस्पर्धा न कर सके। हालांकि यह बात भी मैं अतिपरिचयादवना वाली वृत्ति के लिए 'क'से'गन के रूप में कह रहा हू क्योंकि डा० नगेद्र में मौलिक विचार देने की दक्षिण की वमी नहीं है। परंतु यदि यह वमी मान ली जाए और यह स्वीकार किया जाए कि ये अभिनवगुप्त की समता मौलिकता के क्षेत्र में, सूक्ष्म गहन तात्त्विक विश्लेषण के क्षेत्र में नहीं कर सकत तो जहा तक प्रसन्नस्मितप्रवाह शली का प्रश्न है, उसमें अभिनवगुप्त भी डा० नगेद्र का समता नहीं कर सकते। इसलिए एक क्षेत्र की वमी दूसरे क्षेत्र की वृद्धि के द्वारा पूरी हो जाती है।

यदि अभिनवगुप्त की बातों को ही प्रमाण माना जाए तो यह स्वीकार करना होगा कि अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के द्वारा स्थापित सिद्धांत की अच्छी तरह मगति बँटा कर उपस्थित कर देना भी मौलिक सिद्धांत की स्थापना के ही बराबर है। 'पूर्वप्रतिष्ठापितयोजनासु मूलप्रतिष्ठाकतामामर्शिन'—मतलब यह कि आख्यान और पुनराख्यान करनेवाले गम्भीरता आचाय भी मौलिक विचार का श्रेणी में ही आते हैं। हिंदी में वाच्यशास्त्र पर आज कुछ ग्रंथ उपलब्ध हैं परंतु इस तरह से स्पष्टनापूर्वक विचारों का प्रतिपादन करनेवाला और वेदो

म लेकर भरत तक एक भरत से लेकर रामचंद्र गुबल तक काव्यशास्त्रीय चिंतन की एक जो धारा चलती रही है उसके स्पष्ट प्रवाह मूत्र को सम्यक् रूप से पकड़ने वाला हमरा कोई विचारक नहीं है। डा० नगेन्द्र की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उन्होंने एक सावभौम रस सिद्धांत का अनुमधान किया है और देशी व विदेशी—प्रत्येक सिद्धांत की समीक्षा करते हुए, उसके गुणा की प्रशंसा करते हुए रस सिद्धांत को एक सावभौम सिद्धांत के रूप में उपस्थित किया है। संभव है कि इस प्रयत्न में उन्हें कहीं-कहीं सींचातानी भी करनी पड़ी हो पर वह सींचातानी भी जिस ढंग से की गई है, उसके पीछे भी एक प्रीति और चिंतन-गाल मस्तिष्क का आघार है। मैं किसी से 'रस सिद्धांत' के लेखक की तुलना नहीं करता—तुलना सदा ठीक भी नहीं होती, परंतु आज हम जय गकराचाय या रामानुज के सिद्धांतों का अध्ययन करने लगते हैं या मामासा शास्त्र की वेद सम्प्रदायी उपपत्तियाँ का अध्ययन करते हैं तो हम उससे सहमत भले ही न हों, पर जिस गति ताकत आवेग और पाण्डित्य के द्वारा वे अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हैं उसे या ही कहकर टाल देना की हिम्मत नहीं रहती। इसी तरह की मनोवृत्ति 'रस सिद्धांत' के लेखक का अध्ययन करते समय बनी रहती है। यह लेखक भी कहीं तो अपनी चिंताधारा की मौलिकता से और कहीं अपनी गली के द्वारा पाठक को अभिभूत कर लेता है।

वास्तव में हिंदी में साहित्यशास्त्र के अध्ययन की जो परिस्थिति है उसमें शक्तिवारी मौलिक विचारधारा का आविर्भाव आज संभव भी नहीं मालूम होता। हमारी सबसे बड़ी समस्या यह है कि संस्कृत के काव्यशास्त्र के विद्यालय क्षेत्र में जो सूक्ष्म, गहन विशद तथा सर्वांगपूर्ण विचारधाराएँ एक तरह से अस्त-व्यस्त रूप में उपलब्ध हैं, उनको व्यवस्थित तथा बोधगम्य रूप में पाठकों के लिए उपलब्ध कर दिया जाए। जब पाठक इन विचारधाराओं से पूर्ण रूप में परिचित हो जाएँगे और इनके माग को ठीक तरह में स्वायत्त कर लेंगे तब स्वयं ही मौलिक चिंतन का द्वार खुलेगा। काव्यशास्त्र के क्षेत्र में मम्मट ने यह काय किया था। भरत ने रस विवेचन के व्यावहारिक तथा अभिनव ने रस विवेचन के तात्त्विक तथा दार्शनिक विचारों को सुलभे हुए रूप में पाठकों के लिए उपलब्ध कर दिया था। आज यही काय हमारे लिए आवश्यक है और प्रकृति स्वयं हमारे लिए कुछ लेखकों को निमित्त बनाकर जिनमें 'रस सिद्धांत' का लेखक भी एक है अपना काय-सम्पानन कर रही है। न जाने क्या, मैंने अपने मन में यह बात स्वीकृत कर ली है कि किसी युग में साहित्य या विद्या के क्षेत्र में जो काय जाना है वह उस युग के लिए जविक और मनोवैज्ञानिक माग है जिनकी पूर्ति प्रकृति, या कह

ग्रथा का प्रणयन कर सवा, वहा वह कुछ लाग्य क्या, हजारा तक भी अपने पान का प्रसार नही कर सकी । पता नही सम्बृत क विरुद्ध यह जो लाछन लगाया जाता है यह कहा तक सत्य है । परंतु इस लाछन के लिए सबसे अधिक प्रमाण यदि मिला होगा तो काव्यशास्त्र के ग्रथाने ही उसे प्रस्तुत किया होगा । दो एक काव्यशास्त्रिया की छोड कर अभिनव इत्यादि जितने काव्यशास्त्री हुए हैं, उनकी शली इतनी निविड, वागाभ्वरपूण कठिन और दुःसह है कि कभी कभी तो सामान्य तथ्य भी उनभ जान हैं, गम्भीर तत्त्वो क सुलभने की तो बात हा दूर है । विशेषत, अभिनवगुप्त ता इसके लिए प्रसिद्ध है । परंतु हिन्दी के काव्य शास्त्र का यह उद्धारक इस दोष से बचकर चलता है । वह सूक्ष्म, गहन, दार्शनिक नत्वा का भी इस तरह विश्लेषण करता है कि उसे सामान्य जिनासा की बुद्धि सहज ही ग्रहण कर लती है । इस दृष्टि से मैं इस काव्यशास्त्र के नए उद्धारक को अभिनवगुप्त का नया अवतार मानता हूँ, केवल इस रिजर्वेशन' क साथ कि उसमे अभिनवगुप्त की गला का निविडता नही है ।

मैंने अभी 'रस सिद्धांत के लेखक को अभिनवगुप्त का नूतन अवतार कहा है । वात कुछ बड़ी सी और अनुपात हीन सी मालूम पड सकती है और ऐसा लगता है कि अतिपरिचयादवना वाली वृत्ति इसे ग्रहण करने में बाधक बनगी परंतु मैंने जानबूझकर यह बात कही है । सम्भव है कि विचारा की मौलिकता के क्षेत्र में रस सिद्धांत का लेखक अभिनवगुप्त की प्रतिस्पर्धा न कर सके । हालांकि यह बात भी मैं अतिपरिचयादवना वाली वृत्ति के लिए 'बंसेशन के रूप में कह रहा हूँ क्यकि डा० नगेन्द्र में मौलिक विचार दन की शक्ति की कमी नही है । परंतु यदि यह कमी मान भी ली जाए और यह स्वीकार किया जाए कि य अभिनवगुप्त की समान मौलिकता के क्षेत्र में सूक्ष्म गहन तार्किक विश्लेषण के क्षेत्र में नहीं कर सकते, तो जहा तक 'प्रसन्नरिमतप्रवाह' शली का प्रश्न है, उसमें अभिनवगुप्त भी डा० नगेन्द्र की समता नही कर सकते । इसलिए एक क्षेत्र की कमी दूसरे क्षेत्र की बुद्धि क द्वारा पूरी हा जाती है ।

यदि अभिनवगुप्त की वाता को ही प्रमाण माना जाए ता यह स्वीकार करना होगा कि अपन पदवर्ती आचार्यों क द्वारा स्थापित सिद्धांतों की अच्छी तरह समझ बटा कर उपस्थित कर देना भी मौलिक सिद्धांत की स्थापना के ही बराबर है । पूर्वप्रतिष्ठापितमात्रासु मूलप्रतिष्ठापकतामनति'—मतनव यह कि आख्यान और पुनराख्यान करनेवाले गम्भीरचेता आचार्य भी मौलिक विचार की श्रेणी में ही आते हैं । हिन्दी में काव्यशास्त्र पर आज कुछ प्रथ उपलब्धियाँ हैं परंतु इस तरह स स्पष्टतापूर्वक विचारों का प्रतिपादन करनेवाला और बड़ा

स लेकर भरत तक एव भरत से लेकर रामचंद्र गुवल तक कायशास्त्रीय चिंतन की एक जो धारा चलती रही है उसके स्पष्ट प्रवाह मूत्र को सम्यक रूप से पकड़ने वाला दूसरा कोई विचारक नहीं है। डा० नगेन्द्र की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उन्होंने एक सावभौम रस सिद्धांत का अनुसंधान किया है और देगी व विदशी—प्रत्येक सिद्धांत की समीक्षा करत हुए उसने गुणा की प्रशंसा करत हुए, रस सिद्धांत को एक सावभौम सिद्धांत के रूप में उपस्थित किया है। संभव है कि इस प्रयत्न में उह कही कही खीचातानी भी करनी पड़ी हो पर वह खीचातानी भी जिस ढंग से की गई है उसके पीछे भी एक प्रौढ और चिंतन-शील मस्तिष्क का आधार है। मैं किसी से 'रस सिद्धांत के लेखक की तुलना नहीं करता—तुलना सदा ठीक भी नहीं होती परंतु आज हम जब गकराचाय या रामानुज के सिद्धांतों का अध्ययन करने लगते हैं या मीमांसा शास्त्र की वेद मन्धी उपपत्तियों का अध्ययन करते हैं तो हम उसमें सहमत भले ही न हों, पर जिस गति तान्त, आवेग और पाण्डित्य के द्वारा वे अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हैं उसे यो ही कहकर टाल देना की हिम्मत नहीं रहती। इसी तरह की मनोवृत्ति 'रस सिद्धांत के लेखक का अध्ययन करते समय बनी रहती है। यह लेखक भी कही तो अपनी चिंताधारा की मौलिकता से और कहीं अपनी गली के द्वारा पाठकों को अभिभूत कर लेता है।

वास्तव में, हिन्दी में साहित्यशास्त्र के अध्ययन की जो परिस्थिति है उसमें प्रातिविकारी मौलिक विचारधारा का आविर्भाव आज संभव भी नहीं मालूम होता। हमारी सबसे बड़ी समस्या यह है कि संस्कृत के कायशास्त्र के विशाल क्षेत्र में जो सूक्ष्म, गहन, विशद तथा सर्वांगपूर्ण विचारधाराएँ एक तरह से अस्त-व्यस्त रूप में उपलब्ध हैं उनको व्यवस्थित तथा बोधगम्य रूप में पाठकों के लिए उपलब्ध कर दिया जाए। जब पाठक इन विचारधाराओं से पूर्ण रूप में परिचित हो जाएगा और इनके माग को ठीक तरह में स्वायत्त कर लेगा, तब स्वयं ही मौलिक चिंतन का द्वार खुलेगा। काव्यशास्त्र के क्षेत्र में मम्मट ने यह काय किया था। भरत ने रस विवेचन के व्यावहारिक तथा अभिनव न रस विवेचन के तात्त्विक तथा दार्शनिक विचारों को सुलभे हुए रूप में पाठकों के लिए उपलब्ध कर दिया था। आज यही काय हमारे लिए आवश्यक है और प्रकृति स्वयं हमारे लिए कुछ लेखकों को निमित्त बनाकर जिनमें 'रस सिद्धांत' का लेखक भी एक है अपना काय सम्पादन कर रही है। न जाने क्या, मैंने अपने मन में यह बात स्वीकृत कर ली है कि किसी युग में साहित्य या विज्ञान के क्षेत्र में जो काय होना है वह उस युग के लिए जविक और मनोवैज्ञानिक माग है जिसकी पूर्ति प्रकृति, या वह

लीजिए, हमारी सामूहिक चेतना स्वयमेव करती है। कवि या लेखक स्वयं गलत हो सकता है, पर कविता और साहित्य कभी गलत नहीं हो सकता। जिस रूप में वह अपने स्वरूप को प्रकट करता है, वही उसका सच्चा स्वरूप है।

वास्तव में हिन्दी में काव्यशास्त्र का गम्भीर और व्यवस्थित अध्ययन उस समय प्रारम्भ हुआ जिस समय 'रस सिद्धांत' के प्रणेता डा० नगेन्द्र की पुस्तक 'रीतिवाच्य का भूमिका प्रकाशित हुई। डा० नगेन्द्र की प्रतिभा को जो कुछ काव्यशास्त्र के क्षेत्र में अनुदान के रूप में दना था, वह बीज रूप में 'रीतिवाच्य' की भूमिका में प्रायः विद्यमान है। मैंने वही पर प्रथमतः रस सिद्धांत सम्बन्धी इतना सुन्दर और भागोपाग विवेचन पढ़ा था। साधारणीकरण में सम्बन्ध में कुछ बानें पढ़ी तो अचर्य ही परन्तु सूक्ष्म, गहन, तार्त्विक विवेचन पहले पहल वही पर पढ़ने को मिला। गांधी जी द्वारा दाढ़ी भाच का उदाहरण देकर उन्होंने वाचानुभूति और वास्तविक अनुभूति में पायबन्ध का निर्देश करते हुए जो रसानुभूति के स्वरूप को स्पष्ट किया है, वह अपनी स्वाभाविकता और सहजता में अद्वितीय है। साधारणीकरण किसका होता है, इस प्रश्न को छेड़ते हुए साथ ही प्राचीन और अर्वाचीन सिद्धान्तों का अध्ययन करते हुए उन्होंने जो इस मत की स्थापना की है कि साधारणीकरण कवि की अनुभूति का होना है वह तो मुझे उस सम्बन्ध में अतिम शब्द-सा मालूम पड़ता है। इधर के कुछ लोगों ने उनसे थोड़ा मतभेद दिखलाने का प्रयत्न किया है और सुबन जी के प्रति श्रद्धा का प्रदर्शन किया है। परन्तु उनके विचारों में कोई अतिव्यक्तित्व का बल नहीं जान पड़ता। सुबन जी गुरु हैं और आज के हम सब उनके गिण्य हैं और उनसे मतभेद प्रदर्शन करने में गुरुद्रोह की गंध घ्रा सकती है। इसलिए डा० नगेन्द्र के सिद्धांत के विरुद्ध पाठकों को जोत लेने में कुछ सुविधा हाती है। इसका छोड़कर इन विचारों में तक वितर्क का कोई पुष्ट आधार नहीं है। इस प्रकार 'रस सिद्धांत' में काव्यशास्त्र का जो वृक्ष लहलहाता सा दिखाई पड़ रहा है उसका बीज 'रीतिवाच्य' की भूमिका में ही पड़ गया था। भरत ने नाट्यशास्त्र में एक जगह कहा है—

यथा बीजाद् भवेद् वृक्षो वृक्षात् पुष्प फल यथा ।

तथा मूल रसा सर्वे तेभ्यो भावा यवस्थिता ॥

उसी तरह मैं 'रीतिवाच्य' की भूमिका को बीजस्थानीय मानूंगा, उसके प्रकाशन के बाद तथा 'रस सिद्धांत' के प्रकाशन के पूर्व डा० नगेन्द्र के द्वारा लिखित या सम्पादित उदाहरणार्थ 'भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका' इत्यादि ग्रन्थ पुष्प अथवा पत्रस्थानीय होंगे और रस सिद्धांत वृक्षस्थानीय होगा।

वास्तव में, मौलिक प्रतिभा एक ही शाय करती है और वह यह कि वह एक

ऐस व्यापक और सावभौम सिद्धांत की स्थापना कर देती है जो अपने व्यापकत्व की सीमा में सत्कार के सार प्रपंचों को ममट कर उमकी बोधगम्य और उचित व्याख्या प्रस्तुत कर सके। गणराचाप्र ने बहुत-से प्रथ लिखे हैं परंतु उन सब का सारतत्त्व एक आधे श्लोक में कह दिया गया है—

श्लोकाद्येन प्रवक्ष्यामि, यदुक्तं प्रथकोटिभिः ।

ब्रह्म सत्यं जगन्मध्या, नैहानानारितं किंचित् ।

प्रस्तुत प्रथ क पांच अयाया में, रस सिद्धांत को लेकर जो प्रश्न प्राय उठाए जाते हैं—रस की परिभाषा क्या है? रस का स्वरूप क्या है? रस की निष्पत्ति किस तरह हाती है? रस सख्या, सकोच और विस्तार रस विराध इत्यादि—उन पर विचार किया गया है। इन प्रसंगा में विचारों के प्रतिपादन के लिए एक द्विगुण पद्धति का अनुगमन किया गया है। प्रारम्भ में विचारणीय विषय के सम्बन्ध में जितने मत-मतांतर हो सकते हैं प्राचीन या अवाचीन, सबका संग्रह किया गया है, जहां पर व्याख्या की आवश्यकता पडी है वहां उमकी स्पष्ट व्याख्या की गई है। यही पर डा० नगेद्र के स्कॉलर का रूप अपने पूण बभयक साथ प्रकट हुआ है। यद्यपि अन्तिम विश्लेषण में वे मेरे मतानुसार, समालोचक (क्रिटिक) ही हैं स्वानर गही, क्योंकि स्कॉलर शब्द से एक एस जान पवत की कल्पना साकार हो उठती है जो अपनी मगहरी में तनकर खडा हुआ सबकी अवहलना सी करता रहता है, पर फिर भी, 'रस सिद्धांत' के प्रणेता में स्कॉलरशिप की कमी है, यह कहनेवाला सचमुच बडा माहसी होगा। मुझे गही मालूम कि किसी भी देशी या विदेशी भाषा के प्रथ में भारतीय आयासत्र विषयक ऐसी जानराशि एक न मिलती है। इसलिए डा० नगेद्र को हम स्वानर क्रिटिक ही कहकर कुछ सतोप प्राप्त कर सकेंगे। जान और दृष्टि का ऐमा दुर्लभ मणिकाचन सयाग बहुत कम मिलता है।

इस तरह विचारों को एक स्थान पर सकलित कर उनके पारस्परिक सार तम्य का विचार किया गया है और अंत में चलकर अपनी सम्मति दी गई है जो कही औरों में मिलती भी है और कही अपनी ही मौलिकता की दीप्ति से बात है। उदाहरण के लिए रस निष्पत्ति तथा रस का स्थान एक साधारणीकरण की समस्याओं को लीनिए, जिनका वणर तृतीय अयाय में किया गया है। भरत से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक रस सिद्धांत को लेकर इतिहास का जो विकास हाता रहा उसको इस प्रथ क सखक ने इतने मुनभे हुए ढंग से उपस्थित किया है कि आज हम दो हजार वर्षों के इतिहास को एक वाक्य में कह सकते हैं। अंग्रेजी तथा माहित्य के प्रसिद्ध आलोचक जे० डब्ल्यू० वीच ने क्या साहित्य के विकास

के इतिहास का दो गठाम बहा है— एगिजट आयर ग्रवान ग्रप्रेजी क्या माहित्य के विकास का इतिहास क्या स क्यावार के निगाहिन हाने का इतिहास है। उही क शब्दों का उबार लेजर एव आलोच्य ने यह बहा या कि आधुनिक हिंदी क्या माहित्य का इतिहास हिंदी साहित्य क विवास तथा ह्रास का इतिहास है। मनलव यह कि जमे जमे उपयास-बला म विनास और प्रीन्ता आती गई है वम उस लम्बी चौडी क्याआ के प्रति एक तरह की उन्मासीनता आनी गई है और क्या भाग बहुत छाटा रूप धारण करता गया है। दसो तरह डा० नगद्र क मिद्धाता का अग्रयन करनवाला बडे मजे म यह कह सकता है कि भरत ने नेकर पटितरान जगनाय तक रस मिद्धात के विकास की क्हानी रस को निच्छता की स्थिति मे हटाकर आत्मनिच्छता की स्थिति म धीरे धीरे परिणत करने का इतिहास है। भरत न जिस रूप म रस का विवचन किया है उसमे स्पष्ट होता है कि रस की सत्ता विषयगत है और उसका स्थान नाट्य है। रस का स्थान नाट्य है रगमच है और तन्जय र्पादि का स्थान सहृदय का चित्त है। रस आस्वाद्य है आस्वाद नही। मैं यहां पर रस सिद्धात की व्याख्या नही कर रहा हूँ परंतु जब मैं लाल्लट गकुव भट्टनायक अभिनवगुप्त और पडिनराज जगनाय के रस विषयक विचारो पर विचार करता हूँ तो मुझे एसा ही लगता है कि वह रस जो पहले कही बहुत दूर स्थान पर पडा हुआ था उसे बहुत परिश्रम कर अपनी तपस्या क द्वारा इन लोगो न धीरे धीरे सहृदय क चित्त म प्रवाहित कर दिया जिस तरह स्वग म रहनेवाली गंगा को भीरीरय र्पादि न इस भूतल पर लाकर सबके हृदय म प्रवाहित कर दिया। भरत के अनुसार रस का स्थान नाट्य है। लोल्लट ने उस वहां स हटाकर मूल पात्र म स्थापित किया। इस तरह थोडी सी आत्मनिच्छता आई। गकुव न रस की स्थापना नट और उसके अभिनय म की इस तरह आत्मनिच्छता का अधिक अंग आया। भट्टनायक ने उमे सहृदय क चित्त म सम्बद्ध कर दिया 'वेविन फिर भी उसकी वस्तुनिच्छता वनी ही रही। अभिनवगुप्त न उसको सहृदय की आनन्दस्वरूपता ही प्रदान कर दी। पटितराज जगनाय ने आकर भग्नावरण चिन को ही रस मान लिया। इस तरह बाव्यग्रास्य म विचार की जो एक धारा प्रवाहित होती आ रही थी, उसकी एकसूनता को हम दखने म समथ हो जान हैं—जो एकसूनता पहले हमारी नजरा मे ओभल थी। आज रस सिद्धात के इम लेखक न हमारे हाथ म एक टाब दे दिया है जिसके द्वारा वह एकसूनता सहज ही स्पष्ट हा जाती है।

व्यक्तिगत रूप म मुझे रस एकसूनता की बात को पढकर बहुत ही सतोप हुआ क्याकि मैंने कभी मस्जिद और दीपन के रूपक म रस मिद्धात को समझन

की कृपा की थी। लाकोविन प्रसिद्ध है कि पहले घर में दीपक का जलाकर तब मस्तिष्क में दीपक जलाना चाहिए पर रस मिद्वान्त के इतिहास में गंगा उल्टी ही बह रही थी। भरत रस के दीपक को घर में अर्थात् महृदय के हृदय में न जलाकर मस्तिष्क में अर्थात् नास्य में, क्यावस्तु में जनान की ही चेष्टा करते थे। यह स्थिति अस्वाभाविक थी और बहुत दिनों तक चल नहीं सकती थी। जब तक दीपक घर में जलकर उसे उदनासित नहीं करेगा तब तक हृदय का शांति नहीं मिल सकती। लोल्लट न और गोकुल न रस के दीपक को मस्तिष्क में हटाया और घर के समीप लाने का प्रयत्न किया, पर फिर भी वह घर में दूर ही था। महृनायक न उस दीपक को महृदय के चित्त की चट्टी पर जला लिया। अर्थात् गुण न उन सहायक चित्त के क्षेत्र में स्थापित कर दिया और पंडितराज जगन्नाथ न ता सहायक के चित्त को ही दीपक रूप मान लिया अर्थात् रस की मत्ता का एकांत रूप में विषयीगत बना दिया।

डा० नगेन्द्र के द्वारा प्रतिपादित साधारणीकरण का मिद्वान्त अर्थ में सवथा मौलिक और निश्चित है। यदि हम यह मान लें हैं जसा डा० नगेन्द्र न प्रतिपादित किया है कि साधारणीकरण कवि की अनुभूति का ज्ञान है तब हमारी सभी समस्याएँ सुलभ जाती हैं। केवल आश्रय या केवल आलम्बन का साधारणीकरण नहीं होता—इस प्रसंग में डा० नगेन्द्र न अर्थ में मत के सम्बन्ध में जो तक दिया है उसे पत्र पर ही उमका आनन्द प्राप्त करता है। यहाँ पर मुझे एक बात कहनी है रस मिद्वान्त के सल्लक न राकेश गुप्त की पुस्तक 'Psychological Studies in Rasa' में उल्लिखित रस-सम्बन्धी तथा साधारणीकरण सम्बन्धी विचारों का कही भी न तो उल्लेख किया है न उम पर विचार ही किया है। यह पुस्तक छाटी सी है, किन्तु उम कही-कही बहुत ही विचारात्तक सामग्री सक्लित की गई थी। उदाहरणार्थ उहाँ न यह प्रश्न छेना भी था कि साधारणीकरण की बात की जाती है पर साधारणीकरण संभव भी होता है?—वाच्य में तो ध्यवित्त की मूर्ति आती है इत्यादि।

रस मिद्वान्त का पाषवा अध्याय भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। उम रस शेष और उनसे पारम्परिक सम्बन्ध तथा रस विरोध के परिहार की चर्चा की गई है। इम अध्याय अध्यायो की तरह ही सस्कृत के वाच्यशास्त्र के विद्यालय में जो विषय सम्बन्धी विचार-रूप यत्र-तत्र विलख पडे हैं उनको एक साथ करन का सफल प्रयत्न किया गया है और अन्त में यन्ही निष्कर्ष निकाला गया है कि रस प्रसंग में जितनी बातें कही गई हैं वे केवल व्यावहारिक दृष्टि से उपलक्षणमात्र हैं उनको अकाट्य मिद्वान्त के रूप में ग्रहण नहीं करना चाहिए। कोई भी ऐसा रस

दोष या रस त्रिराध नहीं है जा पश्चिन्तित परिम्यति म गुण वा रूप धारण म कर न । दोष तभी तत्र रूप है जब वह रस वा अपकपक हो—दोषा नत्रापकपका ।'

पुस्तक का अंतिम अध्याय 'रस सिद्धांत' शाकन और सिद्धांत कई दृष्टियाँ से महत्त्वपूर्ण है। इसमें पादचात्य और पौर्वात्य सिद्धांतों का उल्लेख करते हुए सबकी मगति रस सिद्धांत में बटाई गई है। सस्कृत के जिनका काव्य सम्प्रदाय है उनके विवचन के बाद यह निष्कर्ष निमाता गया है कि इनमें बाह्य दृष्टि न देखने पर भल ही अंतर दिखनाई पडता हा परन्तु वास्तविक भेद ही है, यदि भेद है तो बलाबल-मात्र का। मैं जब काव्यशास्त्र का अध्ययन करता हू तो मुझे ऐसा लगता है कि जिन युग में सस्कृत काव्यशास्त्र का विकास हुआ उस समय एक प्रथा सी थी कि अपन विरोधी मत वालों की ही शब्दावली अपन पक्ष में पडे और विरोधियों के विरुद्ध मानो शत्रु के घर से ही ताप लेकर, उसी के विरुद्ध उसका मुह फुमा दिया जाय। किसी न कहा—'वप्रोक्तिं वाग्म्यं जीवितम'—दूसरे न समझा कि जीवित शब्द बडा मशकत है उसा को किसी तरह अपनी सवा में नियोजित किया जाय, जस काई अपन पडासी के घर में किसी बहुत ही चतुर सबक को दखकर उसे फुमलाकर अपनी सवा में कुछ अधिक बतन देकर भी ले जाता है। अत कहा गया—'शौचिय रसमिद्वय स्थिर काव्यस्य जीवितम'। किसी न काव्य की परिभाषा दन हुए कह दिया—'अनलकृती पुन क्वापि'। इसी के सबत सूत्र को पकककर दूसरे न कहा—

अपीकरोति य काव्य शब्दार्थानलकृती ।

असी न भयते करमादनृष्णमनलकृती ॥

'रस सिद्धांत' का पडने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जहा तक भारतीय काव्यशास्त्र के सम्प्रदायों का प्रश्न है उनमें कोई मौलिक अंतर नहीं है—अलकार, गुण (रीति), विम्ब विधान प्रबन्ध कल्पना आदि सभी रस के सहायक उपकरण हैं और रस की प्रतीति के लिए उनकी आवश्यकता अनिवाय है। पृष्ठ ३२६ पर जब भारतीय काव्यशास्त्र के अनेक सम्प्रदायों के तारतम्य को एक गुरु मानवित्र के द्वारा अथवा फामुले के द्वारा बतलाया गया है तब ऐसा लगता है कि कोई गणित वा प्राकसर दोन रहा हो—और प्रारम्भ में मैं जा स्थापना की है कि शा० नगेन्द्र न काव्यशास्त्र लिखन के लिए वैज्ञानिक गली अपनाई है उसक लिए दृढ आधार मिल जाना है।

इसी तरह रस का पादचात्य काव्यशास्त्र के विभिन्न वादों के सम्भ में भी अध्ययन करल हुए इनकी रस के साथ मगति बैठान की चेष्टा की गई है।

अभिजात्यवाद (बलासिद्धिम्), स्वच्छ-दत्तावाद (रोमाण्टिसिद्धिम्), प्रादशावा (प्राइडियलिसिद्धिम्), यथाथवाद (रीयलिसिद्धिम्) प्रतीकवाद (मिम्बानिद्धिम्), प्रगतिवाद इत्यादि के सम्बन्ध में मन्थन में, किन्तु बहुत ही अभिव्यक्त, सजीव और विश्वासोत्पादक ढंग से सम्यक विवेचन किया गया है। अपने विवेचन का समाहार करते हुए डा० नगेन्द्र ने लिखा है—“हमारी धारणा है कि रस सिद्धान्त एक ऐसा व्यापक सिद्धान्त है जिसमें रसवाद का विरोध मिट जाता है जो सभी के अनुकूल पड़ता है और सभी के स्वरूपों का समन्वय कर लेता है।” पुस्तक के अन्तिम कुछ पृष्ठों में रस सिद्धान्त के विरुद्ध उदाए गए आरोपों का यथोचित उत्तर देकर उनका समाधान किया गया है। सब समाधान सहज स्वाभाविक और अकाट्य नहीं होते उनमें कहीं कहीं अपनी ओर से आरोपण और छोटातानी आ ही जाती है। प्रश्न यह है कि वह कहा तक वास्तविक तथा तर्क और प्रमाणपूर्ण ढंग से कहा गया है।

सारी पुस्तक पढ़ने के बाद हमारी धारणा यही है कि डा० नगेन्द्र भी प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्रियों की परम्परा में आते हैं। वार्त्तों के मौलिक और श्रान्तिकारी अवश्य कहते हैं परन्तु अपने को परम्परा का अनुयायी कहते हैं

प्रथम मुनिन जे कीरति माई ।

सो मग चलत सुगम भोहि भाई ॥

अपने विचारों की स्थापना में उन्होंने प्राचीन काव्यशास्त्रियों की पद्धति में ही काम लिया है। प्राचीन काव्यशास्त्रियों क्या करते थे? यही न, कि जिस किरा भी सिद्धान्त की स्थापना की उसी को इतना लचीला और व्यापक बना दिया कि उसकी सीमा में सारे अर्थ सिद्धान्त समा जाए। कृष्ण ने वक्रवर्ति की स्थापना की परन्तु उनकी वक्रवर्ति इनका व्यापक है कि वह अपने व्यापकत्व में रस-वर्ति इत्यादि को समेट लेती है। यही तो डा० नगेन्द्र न भी किया है। वे रसवादी अवश्य हैं, पर उनका रस भरत अभिनव आदि के रस से भिन्न भिन्न है और भिन्नता इसलिए आई कि आज उसको वसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जो समझाए भरत अभिनवगुप्त या पटितराज जगन्नाथ के सामने नहीं थी। यदि रस सिद्धान्त को जीवित रहना है तो उस अपनी परिस्थिति के अनुकूल बन जान की क्षमता जाग्रत करनी ही पड़ेगी। रस सिद्धान्त डा० नगेन्द्र के व्यक्तित्व के द्वारा इसी तरह की क्षमता अपने अंदर जाग्रत कर रहा है। सभी जीवित तथा प्राणवान् पदार्थ यही करते हैं।

अतः, मैं प्रतिभा, अध्यवसाय और लगन की इस पुस्तक रस सिद्धान्त का हिंदी के कृतन साहित्य जिनासुधा की आरंभ स्वागत करता हूँ। मैं

अनोचन व रूपा में बदनाम हूँ। मुझे ऐसी पुस्तकें कम मिलती हैं जिनको पढ़कर मैं नयक का कृतन हो सकूँ। 'रस सिद्धांत' कुछ ऐसी दुर्लभ पुस्तकें हैं जिनसे मैं जो अपनी गविन के बल पर ही मुझे अपना कृतन बना लेती हूँ। मैंने पुस्तका को अपनी सुविधा के लिए तीन बर्गों में विभाजित कर लिया है—

- (१) कुछ पुस्तकें ऐसी होती हैं जिनको पढ़कर ऐसा लगता है कि मेरे व्यक्तित्व में समृद्धि आइ है मेरे ज्ञान भंडार की वृद्धि हुई।
 - (२) दूसरी श्रेणी में वे पुस्तकें आती हैं जिनमें अध्ययन के बाद यह लगता है कि मेरे ज्ञान में वृद्धि भले ही नहीं हुई हो हाँ मैंने कुछ सीखा नहीं कुछ पाया ही है।
 - (३) तीसरी श्रेणी उन पुस्तका की है जिनके पढ़ने के पश्चात् यह लगता है कि हाय रे ! अपनी गाठ की पूजा भी मैंने गवा दी।
- डा० नगद्र की रस सिद्धांत पुस्तक को हम निश्चित रूप में प्रथम श्रेणी की पुस्तका में ही रखेंगे।



समय और हम : सर्जनात्मक चिन्तन की दैनन्दिनी

जगत् म जीवन का आधार व्यक्ति है, और जगत स प्रत्येक व्यक्ति के सम्बन्ध अकूत है। उसके सामन अनन्त प्रश्न हैं। अनेक प्रश्ना के प्रति वह अपन। क्रिया को कम का रूप देता है, पर अनक प्रश्न ऐसे हैं जो उसकी कम सीमा स बाहर पडत हैं। उनके विषय म उसकी प्रतिक्रिया का रूप मत होता है। कोई भी प्रश्न ऐसा नहीं है जिसके विषय म हमारा कोई मत न हो। इन कमों और मतो की क्रिया प्रतिक्रिया से ससार बनता है। यह ससार व्यक्तियों के कमों और मतो से निर्मित एक अव्यक्तित्त्वं सत्ता है। इस अव्यक्तित्त्वं का भी एक व्यक्तित्त्व—बाहर—है और वह हम—घर को—प्रभावित करता है। इस ससार का एक और अव्यक्तित्त्वं नाम है—समय। बयोवृद्ध कुछ अनुचित करते हुए पकडे गए। बिना सनुचाये बोले क्या करें बेटा, समय ही ऐसा है। बडे बडो की मति भ्रष्ट हो जाती है। जब काय हमारे मनोनुकूल होता है ता समय अच्छा होता है और जब प्रतिकूल पडता है तो दोष सदा ही इस समय का होता है। ससार के विभिन्न प्रश्ना के विषय म प्रत्येक व्यक्ति अपने मतो का यौरा दे सकता है और उसके द्वारा अपने व्यक्तित्त्व को परिभाषित कर सकता है। पर जो जागहक हैं इस प्रकार के द्यौरों को सभालना और सवारना, रखना और देना जिनका गम्भीर धम है जनद्र उनम आगे हैं। उहाने बतमान के प्रश्नों को भाङ-पोछ कर और कुरेद कर भी देला है और उनका यह यौरा सहधर्मियों के लिए रोचक बन गया है।

समय और हम प्रश्नात्तर के रूप म लिखा गया ग्रंथ है जिसम प्रश्न बीरद्र गुप्त न किए हैं। ग्रंथ म चार खण्ड हैं परमात्म पश्चिम, भारत और अयात्म। अनुक्रम के बाइस पृष्ठ अलग हैं और उनसे पहले जनद्र की स्वीकृति है जिसम

उहान ग्रय सम्बन्धी श्रेय का वितरण ४ बाद स्वीकार कर लिया है और, मानो अपने उत्तरो की पृष्ठभूमि के रूप में, कहा है "माना जाता है कि आस्तिक दान ही हाना है विज्ञान उससे बरी है। आज का मकड़, जिसमें मानव जाति धा पड़ी है बहुत कुछ उसी विच्छेद और विरोध से बना है। पदाय विज्ञान और समाज विज्ञान परस्पर तभी पूरक हा सकेंगे जब दागो में एक थड़ा और श्वास प्रवाहित होगा। अथवा विज्ञान यत्र व्यापार को सम्पन्न करेगा और मानव व्यवहार को विषयन करता जायगा। अन्वय कुछ है जो अमोघ और अखड है। उसी अटल नियम पर चेतन अचतन ससार यमा चल रहा है। इस धम में द्वत नहीं है।"

विज्ञान - प्रति यह विराधी और हीन दृष्टिकोण उस समय कुछ विचित्र भा लगता है और सामान्य पाठकों को अगुद धारणा द सकता है जबकि य स्वयं कहत ह पृष्ठ ४०६ पर—मैं विज्ञान के लाभ का पूरा का पूरा ले लना चाहता हूँ, सिर्फ उसका अलाभ बचा जाना चाहता हूँ पृष्ठ १०६ पर—विज्ञान नष्ट नहीं होगा पृष्ठ १०८ पर—विज्ञान का योग अनिष्ट से टूटकर घाग इष्ट के माय हो चलेगा। चेतना को पीछे नहीं लौटना है, आगे ही बढ़ना है। दूसरा कुछ सम्भव नहीं है।

पृष्ठ ४३ पर प्रश्न ८ है किसी वधु ने मुझमें कहा था कि जिस प्रकार जल से विजली पैदा हो सकती है, पर विजली में जल पैदा नहीं हो सकता, उसी प्रकार स्थूल प्रकृति से ईश्वर अथवा चेतना उत्पन्न होती है पर सूक्ष्म ईश्वर से प्रकृति पैदा नहीं होती। इस विषय में आपका क्या विचार है? इसका उत्तर दिया गया है उन वधु ने विज्ञान की प्रक्रिया को देखकर कहा होगा। चित् सृष्टि की प्रक्रिया सूक्ष्म से स्थूल को ओर है। इस पढ़कर उस घटना की याद आ जाती है जिसकी रचना का श्रेय तीसरे चुनाव में एक राष्नीतिक दल के किसी उबरक मय मस्तिष्क को दिया जा रहा था। उन्होंने बदाचित् उडीसा के विज्ञाना को यह चेतावनी दी थी कि सरकार की नहरा का पानी फसला के लिए बिल्बुल बकार है क्योंकि उसमें से विजली निकाल ली गई है और अब यह निर्जीव हो गया है। जिन वधु न बीरेन्द्र जी से उपयुक्त वाक्य कहा होगा उ हीने इन यास्या पर विचार किया होगा।

वास्तव में विजली पानी में से नहीं निकलती। जो पानी का घारा विजला का श्रोत जान पड़ती है या कही जाती है उस यदि हम विजली बनाने की टरबाइन में से गुजारने से पहले परखने हैं तो वह विद्युत् मय (पानी + विजली) नहीं होनी। वह पानी बँसा ही पानी होता है जसा टरबाइन में से गुजरने के बाद मिलता है। तो यह विजली कहाँ से आती है? विजली विजली बनाने

की बशीन म से आती है। पानी उस जल धुमाता है। पानी मूष का ताप सोखकर जलवाष्प बनता है और वायु में सम्मिलित होकर ऊँचे पर्वत पर पहुँचता है, और वहाँ फिर पानी बनकर पर्वतों पर गिर जाता है, बरम जाता है। यह पानी पृथ्वी के आकर्षण के कारण, जिस प्रकार ऊपर को फेंका गया पर नीचे गिरता है उसी प्रकार, नीचे को बहता है। पानी का पर्वत के ऊपर पहुँचान का सत्र काय मूष की शक्ति का प्रकार म करती है—वह तरल पानी का गम वाष्प बनाने के काम म आती है और वाष्प की गुप्त ऊष्मा के रूप म पुन हा जाती है। जल वाष्प पुन पानी बनती है ता यह गुप्त ऊष्मा वायु मडल म मुक्त हा जाती है। सूर्य की शक्ति—गर्मी—वायु को गम करती है। इससे वह चलती है। इसी शक्ति के बल से वायु जलवाष्प का पर्वत म ऊपर पहुँचा दती है। जब पर्वत के ऊपर वाष्प पानी बनती है तो उस पानी में यह शक्ति होती है। पानी जमे जस नीचे को बहता ह, यह शक्ति काम कती हुई व्यय हाती रहती है। सूर्य का शक्ति का यह भ्रम है जो हमारी टरवाइन के पहिये को घुमाता है। पानी ऊपर म नीचे को बहता है तो शक्ति दता है। यदि पानी के स्थान पर पारा या रेत होना तो भी टरवाइन के पहिये घूमन। अत इम प्रदन म एक भ्रम यह है कि जल म विजली पदा हो सकती है। वस्तुतः वह नहीं हो सकती। हम तालाब के तट पर गतिहीन जल में विजली नहीं प्राप्त कर सकत। दूसरा कथन है 'पर विजली स जल पदा नहीं हो सकता।' विजली शक्ति का एक रूप है। वह सामान्य अर्थ म स्थूल नहीं है। पर प्रारम्भिक विज्ञान के विद्यार्थी की हैसियत म हम जानत है कि जब आवसीजन और हाइड्रोजन नाम की गता को एक काच के पात्र म भरकर उसम विजली की चिंगारी गुजारी जाती है तो दोना गसें रासायनिक संयोग करती हैं और पानी की बूँदें पात्र की दीवार पर देखी जा सकता हैं।

इम अध्यायन श्रुतान का आधार लकर कथन है उमा प्रसार स्थूल प्रकृति म ईश्वर अथवा चेतना उत्पन्न होती है पर मूढम ईश्वर म प्रकृति पैदा नहीं होती। यह एक उनभी बात है। पहले अर्थ म 'ईश्वर अथवा चेतना' है और दूसरे म केवल 'ईश्वर' रह गया है। ईश्वर और चेतना पर्यायवाची नहीं हैं। चेतना एक सामान्य गुणमात्र है जा वस्तु आधारके अभाव में लक्षित नहीं होती जबकि ईश्वर सर्वोपरि है। स्थूल प्रकृति म माट तार पर चेतनामय और चेतनाहीन स्पष्ट लक्षण हाने हैं पर ईश्वर भावना और विश्वास का विषय है। जितना हम अनुभव करत हैं उसका मंदिर मनुष्य का मन है। वह सत्रका ईश-वर है श्रेष्ठ स्वामा है। प्रास्तिक का उत्तर हाता ईश्वर स्थूल प्रकृति स

उत्पन्न नहीं होता। वह तो सूक्ष्म, स्थूल, जो भी है, सबको उत्पन्न करता है, सत्रम है और (यहां मतभेद हो सकता है) स्वयं सब कुछ है।

पृष्ठ ४४ पर प्रश्न ६ है तब क्या मृष्टि और विज्ञान की प्रतियोगिता में भेद है? इस प्रश्न में म जो ध्वनि निपलती है जो ईश्वर के राज्य में घुम गया है। या वह सकत है कि विज्ञान एक गीतान है जो ईश्वर के राज्य में घुम गया है। इस प्रश्न का उत्तर देते हैं कुछ जल्दी की गई है। मृष्टि से जनम क्या समझते हैं यह उनके इस वाक्य में बाधा स्पष्ट हो जाता है। जैसे शिशु युवा होता और अंत में बूढ़ होकर मृत्यु में मिल जाता है वैसे सब विकास और ह्रास की चक्रवर्ती विज्ञान के उपकरणों में नहीं मिलती। अर्थात् मृष्टि में वे मनुष्य को भी मानते हैं। पर मनुष्य और विज्ञान में घात का जोर केवल इस अंग पर है कि विज्ञान दिया गया नहीं जान पड़ता। ध्यान का जोर केवल इस अंग पर है कि विज्ञान एक गीतान है जो हम खाने और बरगलान के लिए चला आ रहा है। वस्तुतः मनुष्य से अलग विज्ञान की कोई स्थिति नहीं है। जो असली बात है वह नहीं कहा गई है। मृष्टि और विज्ञान को समकक्ष मान लिया गया है। दांत मनुष्य का ही है जिस कि मनुष्य और उसके दांतों को समान मानना। दांत मनुष्य को बाटने और भाजन चवाने में सहायता देते हैं पर वे मनुष्य की बराबरी का दावा नहीं कर सकते। व पूरे मनुष्य नहीं हैं। जिस प्रकार शिशु का दांत नहीं होने वस ही आरम्भ में मनुष्य का दांत विज्ञान नहीं था। उसका जीवन कटि नाइयो में पूरा था। उसने विज्ञान की मृष्टि की और अपने जीवन में सुख मुक्ति को लाया। जब वह बूढ़ हो जायेगा उसकी जीवनी शक्ति क्षीण हो जाएगी, तो जिस प्रकार बुढ़ापे में दांत गिर जाते हैं, हो सकता है उसी प्रकार वह विज्ञान का उपयोग करने में अक्षम हो जाए।

इसी प्रश्न का उत्तर के आरम्भ में एक बात है। कहा गया है विज्ञान का आविष्कार जितने हैं, उतने ही रहते हैं। कब ? सातवीं शती में ? सोलहवीं में ? उन्नीसवीं में ? दूसरे विश्वयुद्ध से पहले ? दूसरे महायुद्ध के बाद ? विज्ञान विकासशील प्रागैतिहासिक, वृद्धिशील घटना है। उसमें विचारों, मायताओं, उपकरणों की उत्पत्ति पृष्टि पतन और मृत्यु होती रहती है। नवीन जानकारियाँ और अनुभवाँ के आधार पर नई मायताएँ आती हैं पुरानी पीछे छूट जाती हैं और वे नयी नयी पुरानी पड़ जाती हैं। जिस प्रकार मृष्टि में पुराने माता पिता के अभाव में नये युवक-युवतियों का अस्तित्व सम्भव नहीं होता उसी प्रकार विज्ञान की पुरानी मायताओं के आधार के बिना नवीन मायताओं की प्राप्ति सम्भव नहीं होती। यही बात विज्ञान में उत्पन्न टकनालाजी, मशीन, यंत्रों पर भी लागू

होती है। पुरानी कामचलाऊ मशीनें पीछे छूटी जा रही हैं और नयी, बढ़िया, अधिक उत्पादेय और सुविधापूर्ण सामान आ रही हैं। एक यंत्र है जिसमें लोग गोनिया की सहायता में साधारण हिसाब लगाते हैं, और वह कम्प्यूटर है जिसके द्वारा उन गणित के प्रश्नों को महीनों में हल किया जा सकता है जिन्हें हल करने में वैसे शताब्दियाँ लग जाती हैं।

इस ऐतिहासिक प्रगति की तुलना समुद्र के वक्ष पर आगे बढ़ती हुई नौका से की जा सकती है। जब तरंग का चढ़ान आता है तो नौका ऊपर उठ जाती है और जब निचान आता है तो वह नीचे उतर आती है। चढ़ता उतरता मनुष्य का इतिहास आगे बढ़ता जाता है। सागर (अस्तित्व) के पार उसे क्या मिलेगा, यह कहना एक प्रकार से कठिन है। परिस्थितियाँ बदल रही हैं। वह उन्हें बदलने में सहायता दे रहा है। हो सकता है कि इस सागर के पार उसे परिस्थितियों की ऐसी चट्टान मिले जिससे टकरा कर वह चूर-चूर हो जाये। आज अनुमान है, और गणितीय सम्भावनाओं को देखते हुए उसे सही कहा जा सकता है कि ब्रह्मांड में ऐसे ग्रहों और उपग्रहों की संख्या करोड़ों में है जिन पर किसी न किसी प्रकार के जीवन के होने की सम्भावना है। ब्रह्मांड की इन असंख्य जीव-जातियों में प्रतिक्षण कोई न कोई जाति मिटती रहती है और एक नयी उत्पन्न होती रहती है। मनुष्य का भी अंत इस प्रकार होगा, जल्दी या देर में, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता।

पुस्तक में जनेद्र का दार्शनिक पक्ष सामने है, पर वे सामान्य दार्शनिक नहीं हैं। उनमें यह या वह बनने की वृत्ति विशेष नहीं है वस जो हूँ सो हूँ की मात्रा अधिक है। मुझे वे दार्शनिक से अधिक कलाकार अधिक मनुष्य, लगते हैं। औपचारिक दार्शनिक की निममता और आग्रह उनमें नहीं है। उनका भुकाव समन्वय की ओर है। उनके तक में काट नहीं है, ताकिक प्रबलता भी नहीं है। कठिन परिस्थितियों में वे अपनी भावनाओं पर परटेक करते हैं, और वहाँ से उनके रंग से रंग कर, ससार को देखते हैं। उनके परा के नीचे की चट्टानें हैं, अस्तित्वता का आधार, अह का विलास और अहिंसा उमुखता। इसमें अस्तित्वता का आधार एकदम व्यक्तिगत—आध्यात्मिक है, अह का विलास सदातिक—मानसिक—है, और अहिंसा उमुखता व्यावहारिक है।

अहिंसा को लेकर विभिन्न स्तरों पर काफी चर्चा होती रही है। अहिंसा वास्तव में एक संस्कार है जिसकी ओर जीवन—विशेषतया मानव-जीवन—बढ़ता रहा है। कहानी में साँस बंद कर लेते हुए मिन को रीछ इसलिए नहीं मारता कि वह उसे मरा हुआ समझता है। मनुष्य जीव प्रबल शत्रु को देखकर रक्षा के लिए

मुँह से बन कर लेत जात है। भयभीत युक्ता जब लेत कर एक टग खडी कर देता है तो यही नाट्य करता है। मानव-बालक जब चीटी को सरबते देखता है तो उसे अगुली स मसलन का प्रयत्न करता है। जड को कोई नहीं मारता। जीवित को जो मुख्य रूप म अपनी गति स पहचाना जाता है, मारन मे एक प्राकृतिक आनन्द की प्राप्ति होती है। इस वध जनित आनन्द का सवध प्रकृति की जीव द्रव्य व्यवस्था से है। इस वृत्ति की सहायता से विभिन्न जंतु जातियां का जीवन सम्भव बनता है और प्रकृति की विकास लीला—जिसके गिखरन मनुष्य की आकृति पाई है—चरिताथ होती है। हिंसा जंतुमा मे ही नहीं अनेक पोषा म भी—जंतु अहारी पोषा म—सहज है। यह एक बोझी बकटीरिया म लेकर एक और हाथी, ह्वेन तक, और दूमरी और मनुष्य तक मे व्याप्त है। यह हिंसा के लिए हिंसा नहीं है। अफ्रीका के मदानो मे क्षुधा निवत सिंह निकट सेटा रहता है और जेबो तथा हिरनो के भुण्ड चरने रहते हैं। यह क्षुधा है जो हिंसा का जगाती है। मनुष्य भी इस प्रवृत्ति से बाहर नहीं है। पर उसके भीतर एक अधिक सूक्ष्म सवेदना का उदय हुआ है—जीव मात्र के लिए सहानुभूति का—जिसम अनेक लोगो के लिए पोषे भी सम्मिलित हैं, एक व्यापक आत्मीय भाव— यद्यपि ऐसी भावना पर मनुष्य अपना एकाधिकार नहीं जता सक्ता। मादा भंडिये मनुष्य के उन बच्चो को पालते पाए गए हैं जिह व खान के लिए उठा कर ले गए थे। कुतिया ने ऐसे जंतुओ क बच्चो को अपना दूध पिलाकर पाला है जिह वह बयस्क पाती तो मार कर खा जाती। वे बच्चे बडे हो गए तो भी उसके प्यारे बने रहे। शायद आश्चर्य करती रही होगी कि ये कुत्ते क्या नहीं बन ! पर नहीं बने तो भी उसकी आत्मीयता मे कमी नहीं आई। मनुष्य के साथ अनजान सिंहा और रीछो की मत्री की घटनाए पुरानी ही नहीं है, आज भी घटित होती है।

इस प्रकार प्रकृति न हिंसा ही सहज नहीं बनाई उसन जीवमात्र म आत्मीयता का—आहिंसा का—भी बीज डाला है। हिंसा और आहिंसा की यह धरोहर मनुष्य न पाई है और उसके साथ पाए हैं ऐसे दो हाथ जिनका सीभाग किसी अन्य जंतु को नहीं मिला है। करन' की क्षमता ने मनुष्य के मस्तिष्क को विकसित होन का अवसर दिया। उसने अपने इतिहास म पीढी दर-पीढी अनुभव पर अनुभव चिन कर सत्कार का मन्दिर खडा किया है। अब तक, पिछल लग भग बीस लाख वर्षो म ममार के विभिन्न भाग म मनुष्य न अनेक युद्ध किए हैं। नायोज के समान कितनी ही जातिया इस सघष म मिट चुकी हैं और आस्ट्रेलिया के हाट्टेंटोडो तथा उत्तरी और दक्षिणी अमरीका के आदिवासियो के समान कुछ

हैं, जो मिटती जा रही है। इस इतिहास-यात्रा की साधारण स्वरूपता यह रही है कि एक अपशाकृत बकर जाति न अपशाकृत सम्य पर दुबल जजर, जाति पर आक्रमण किया है उसे पराजित और पददलित किया है। उसकी सम्यता और सस्कृति के रस में अपनी सम्यता और सस्कृति का सींचा है सफाता के विनासिता और अपने आत्मविश्राम की आर गई है जजर हुई है, और तब एक दूसरी अपशाकृत बकर जाति आई है जिसने उसे हराया है उसमें सींचा है जजर हुई है और नयी अपेशाकृत बकर और प्राणवान् जाति द्वारा पराजित की गई है।

यह सब एक दृष्टा है जम कि मंगल के दौड़ में हाता है। एक व्यक्ति मसान केवर दौड़ता है जब थक जाता है ता दूसरे को पकड़ा देता है, और यह दूसरा तीमरे को दे देता है और इसी प्रकार दौड़ चलती जानी है। मंगल आगे बढ़ती जाती है। व्यक्ति प्राण जातिया पीछ पड़ती जानी हैं और प्रगतिवान् आगे बढ़ती आती हैं। व थकती हैं ता बदन का काम औरा को सौंप देती हैं एक प्रकार मनुष्य की सम्यता सस्कृति के मंदिर की मजिहा पर मजिले उठती चली आई हैं। इन मजिहा में होकर मनुष्य ऊपर का उठा है मध्यवस्था में व्यवस्था की आर चला है, मूल में मूकम की ओर बना है। उसमें अपनी बोधलतर वलिया को उभेपित किया है। हिंसा में अहिंसा की ओर अग्रसर हुआ है। आज ससार के सभी दशा में—जिन्की मर्या लगभग १२० है और जिमें बहूता की जनसख्या करोड़ों में है—वहा के निवासियों के पारस्परिक संधियों के नियम तलवार में नहीं हात, वैध उपाय अहिंसक है कानून का है। देगा व बीच संधि में, युद्ध भी हैं, और वे मनुष्य की विस्तारगील सामर्थ्य के कारण अत्यंत भयंकर भी हो गए हैं। पर तीन अरब से अधिक की जनसख्या वाले ससार के लिए युद्ध की इतनी अल्प मर्या एक आश्चर्य का ही विषय है। आज भी मनुष्य जाति अपनी मूल वृत्तियों में जूमती हुई आग बत्तन का प्रयत्न कर रही है। देगा के बीच पारस्परिक सहायता और सहयोग के अधिकाधिक अवसर निकाले जा रहे हैं और उनका यथासम्भव उपयोग किया जा रहा है। यह अहिंसा की विजय यात्रा का अन्तुत उदाहरण है। मनुष्य के इतिहास में समय रहा है—कुछ क्षेत्ता में गायन आग भी है—जम मनुष्य भूसे हात में तो एक दूसरे का मार कर ला जात है पर आज लाखा-करोड़ों मनुष्य कठिन समय में मिल-बाँट कर लात हैं। रागनिग इसी प्रकार के वितरण का एक रूप है। इसमें अहिंसा और सगटना का सबंध सामने आता है। सगटना और व्यवस्था जया जया बढ़ी है, अहिंसा की अजि वापता सिद्ध हुई है।

‘परमात्म’ षड् में जिन विषयों के प्रश्नों के उत्तर दिए गए हैं उनका सवध ईश्वर, आत्मा व्यक्तित्व, यम, भाग्य, प्रतिभा भविष्य, दृढात्मक भौतिकवाद और वगैरे व्यक्तित्व तत्र यत्र प्रजातंत्र, मार्क्सवाद, साम्यवाद, और वानिक आ्यात्म है। इसमें मानव इतिहास में त्रियाशील सनातन प्रवृत्तियों का प्रकाश म वतमान समस्याओं का विवचन किया गया है। जो प्राचीन है उसमें से होकर जाति गुजरी है। वह हममें रमा हुआ है। उसमें अनगणताएँ और असुविधाएँ हैं पर हम इन अनगणताओं और असुविधाओं का प्रति ममतामय हैं। वे चाहें विद्वानों या गृहस्थों हम उन्हें सिर धरते हैं उन पर श्रद्धा रखते हैं। जो प्रतीति और प्रीति का भाजन नहीं है वह श्रद्धा का भी पात्र नहीं है। पर मानव मानस जड़ नहीं है। वह विकासवान है और उसका इतिहास गतिशील है। आज के युग में तो वह मानो बरसाती नदी की बाढ़ की भांति भवते जाता हुआ चारों पलटता हुआ उमादी वेग से दौड़ रहा है। ऐसे वेग में कि कुछ लोगो को लगता है कि अब कूल किनारा की खर नहीं है। सब जल थल हो जाएगा। शायद वाद में रेगिस्तान बन जाएगा। मानस के इस सवेग मथन से एक वस्तु उत्पन्न होती है जिसे बुद्धि की सगा दी जाती है। बुद्धि शब्द पहले भी था। भगवान बुद्ध को बोध हुआ था। पर इस युग में जब बुद्धिवाद का भाव बनकर आई और उसमें श्रद्धा पूजित मूल्या को बेपर्दा करना चाहा, तो जनेन्द्र को नैतिकता और श्रद्धा की आर से मच पर आने की आवश्यकता अनुभव हुई। कूल किनारा की रक्षा का प्रयत्न अनुचित नहीं कहा जा सकता, पर बाढ़ के उमड़ते हुए पानी को तो जगह देनी ही होगी उस समोना ही होगा। विद्वानों और मायताओं के सहार पुराने मूल्या और रहन सहन की नीति रीति को सदा सदा के लिए अधुष्ण नहीं बनाए रखा जा सकता। बुद्धि मनुष्य के कष्टों का वीण पथ का प्रकाश दीप रही है। इस तयावधित बुद्धिवाद को उच्छलता का समाधान विरोध में नहीं बरन् अधिक बोध म है अधिक बोध का प्राप्ति म है। तान से अधिक स्वयं खर्ची वस्तु ससार में दूसरी नहीं है। यह तान है जो मनुष्य में सीक बर उसे नम्र और नम्य बनाना है और टूटने से बचाता है। जनेन्द्र ने ठीक ही कहा है जा जानता है वह प्रावण में नहीं आता—देखकर, दूसरे का आदर दकर चलता है।

आज का युग उत्पादन के क्षेत्र में प्रतीति का है। उत्पादन अधिक गन्दावली में कूता जाना है इसलिए वह अधिक वादा का है। क्योंकि बड़ पैमाने पर अथ यवस्था राजनीतिक द्वारा होती है इसलिए ये वाद राजनीतिक भी बहलते हैं और क्योंकि वाद के लिए यह आवश्यक है कि उसका आधार किसी किलासकी

या दशन या सिद्धांत पर हो इसलिए प्रत्येक वाद का दशन भी है। पूजीवाद व्यक्तिगत स्वतंत्रता सबकी बनाए रखना चाहता है साम्यवाद व्यक्तिगत सुविधाएँ सब तक पहुँचाना चाहता है और समाजवाद इन दोनों के बीच किसी भी परिस्थिति में किसी भी करबट बैठ सकता है। कानूनी रूप से इन सब प्रकार के वादों का पोषण करने वाले राज्यों के पास ऐसे माधन उपस्थित हैं कि वे आवश्यकता पड़ने पर अपने किसी नागरिक का जमा उचित समझा जाए बसा दमन कर सकते हैं और इस दमन की रीति या माथा को देश विशेष की परम्पराएँ और मानसिक स्थिति निर्दिष्ट करती हैं। इन वादों में किसी सामाज्य आन्ध्र के अनुसार नतिकता और सदाचार का आग्रह करना विशेष अर्थ नहीं रखता। इनकी नतिकता और सदाचारिता वही होती है जो इनको कार्यविस्तार करने वाले व्यक्तियों की होती है। वास्तव में अपनी नतिकता और सदाचारिता के रख के अनुसार ही विभिन्न दलों ने विभिन्न वादों को पोषण के लिए अपनाया है। इस विवेचन में जड़ की बातें दो हैं मनुष्य टिकता है नारे बदनते हैं। (पृष्ठ ६५) और मनुष्य की व्यवस्था को दृष्टिगत तेजी से विकसित होना है कि वह विज्ञान के कदम से कदम मिलाकर चल सके। (पृष्ठ ६२)

पश्चिम जण्ड में यूरोपीय सभ्यता संस्कृति की एक भावी है। इसमें विषया को जिन नीपका के अंतगत बाँटा गया है वह हैं पराजित नारीत्व वग विचार राष्ट्रवाद यह हिंसावादी संस्कृति, प्रेम परिवार सिक्का उन्नति और नीति अथ क्षेत्र में मूल्यों का संकट, अर्थ का परमार्थीकरण, अर्थ और काम और साहित्य और कला। जनेद्र का विचार है कि यूरोप में नतिकता के मूल्य घिर गये हैं, अर्थ व्यवस्था के नीचे परिवार टूटता जा रहा है उसकी पवित्रता कलकित हो गई है, कोम्मकोर कमाईवाजी की बाध्यता है। अर्थ की अपर्याप्तता का ही फल यह नहीं हुआ है अर्थ की बहुलता ने भी इसी प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया है। वासना और विलास स्वतंत्रता का अधिकाधिक उपयोग करत जान पड़ते हैं। एक अस्थिरता पश्चिम में व्याप्त है। पर पूर्वी यारोप में जहाँ साम्यवाद कुछ जम चुका है अब कुछ स्थिरता आ गई है। वहाँ फिर सौं कर विवाह और पन्विर की प्रतिष्ठा की जा रही है और तन्तुकूल समाज व्यवस्था और राजतन का निर्माण किया जा रहा है (पृष्ठ १४०)। शकसपियर को टान्स्टाय की भाँति, जनेद्र भी आंतरिक कुरेद की अल्पता की दृष्टि से उन लेखकों की श्रेणी में नहीं रख पाते जो अनिवाय होत हैं और माना विश्व नशन के प्रति एक नया आयाम खोल जाते हैं।

सब मिलाकर पश्चिम पर निर्गमो यह विश्वचिन्ता हल्की और भीनी है। उस

यूरोप के बारे में, जिसने लगभग पिछली तीन चार शताब्दियों से कला, साहित्य, दशन, विज्ञान, उद्योग और राजनीति में सत्कार का मनुष्य दिया है, जिसने नवीन शानिकारी सभ्यता सञ्चालित की जन्म दिया है और जिसने वनमान शताब्दी में मानो उसकी प्रसन्न घटना में दो महाशुद्धि में रक्त स्नान कर पुनः स्वास्थ्य लाभ कर लिया है जिसके चिन्तन और विचारणा का प्रभाव पुस्तक के प्रत्येक वाक्य से ही नहीं, विरामादि चिह्न तक गंभीरता है मैं समझता हूँ कि उमर यूरोप की 'याय की दृष्टि से अधिक गम्भीर विवेचना की जानी थी। वह हम आज के प्रश्नों को गहराई से समझने में सहायता देती क्योंकि आज जो प्रश्न हमारे बने हुए हैं वे यूरोप में ही जन्मे हैं और इन सत्कार पर छा गए हैं।

तीसरा खण्ड है भारत यह सबसे बड़ा है। इसके प्रश्न जिन भागों में विभक्त किए गए हैं वे हैं सांस्कृतिक सम्मिश्रण, जातीय राष्ट्रवाद और गांधी विधान दलीय प्रजातंत्र निर्वाचन हमारे दल और नेता भाषा का प्रश्न अव्यवस्था और अपराध सेक्स वेदना शराब जेल प्रशासनिक टोल प्रादेशिक समस्याएँ सरकारी कर्मचारियों का प्रश्न। इस खण्ड में भारत से संबंधित प्रायः सभी समस्याओं की चर्चा की गई है। वास्तव में समय और हम यही हैं। हमारे प्रति समय की चुनौतियाँ इसी में हैं। प्राचीन काल से भारत की सांस्कृतिक परम्परा आज तक अविच्छिन्न और अखण्डित इसलिए चली आई है कि वह किसी चौकटे में जड़कर नहीं बँटाई गई। वह मुक्त और इसलिए नम्य रही है। उसमें हिंसा को मठ आग्रह को स्थान नहीं मिला है जो कुछ पशुक पूजा के प्रति विनयी होकर आया आदर के साथ अगीवार किया गया तुच्छ और महान् का भेद नहीं रखा गया। परिवार का जसा पल्लवन यहाँ हुआ, वही नहीं हुआ। वसुधा कुटुम्ब बन गई और पशु पक्षी कीड़े मकौड़े तक उसमें सम्मिलित हो गए। तीर्थ वसुधात्ता प्याऊ अतिथि परिव्राजक, सयासी उसका अपने वध और स्वस्थ अंग हैं। व्यापक मानवता धर्म बनी। जो आया रहा वह विजातीय नहीं रहा। पर अप्रेज आए रह नहीं वे अवश्य विदगी बन रहे।

धार्मिक साहित्योत्ता अपने अर्थ में गहर उतरकर उस स्थान पर पंच जाने से आती है जहाँ ऊपरी दिग्वाचकें दिखाई नहीं देती और व्यक्ति धर्म की जड़ों के उम गुम्फन में पट्टक जाता है जिसमें से सब धर्मों के अक्षुर फूट है जहाँ अमार का प्रवण नहीं है केवल सार मात्र धर्मकता है और अपने प्रेम रस से मनुष्य को और उसके आसपास को सींचता है। क्योंकि हिन्दुत्व का आधार उसका सार और उसकी आत्मा यही है इसलिए हिन्दू राष्ट्र का वाद कच्ची

धरती पर लडा है। हिन्दुत्व सबका है। जो विनयी है, समर्पित है वह कोई ही हिन्दुत्व में बाहर नहीं है। यह विनय और अहिंसा बन्धुत्व की बढिनता से विमुक्तता नहीं है। गांधी ने १९४७ में भारतीय मना की काँग्रेस-बच के समय आशीर्ष देते हुए कहा था वहाँ रखा म मर जाना, लौटना नहीं। वही भारतीय राष्ट्र की आधार शिला है। यहाँ धर्मों की जड़ की पकड़ है टहनियों व पत्तियों की अपेक्षा नहीं है।

भारत की समस्याएँ अनक हैं। गिनने बटें ता अनगिनती है—स्वाय की है भाषा की है उद्योग की है रोजगार की है, पर मूलतः अष्टाचार की है चरित्र की है। मन्के समाधान पाते हैं केवल उह व्यवहार में लाना है लागू करना है, पर लगना है कि हम उह लागू करना नहीं चाहते कर नहीं सकते कर नहीं पाते। स्थिति गम्भीर से दूर नहीं है। जैनद्र व पास दसका उत्तर है और मैं ममभता हूँ कि वह मही उत्तर है। व कहन है के जिह गांधी की याद है, स्वयं इस स्थिति के लिए उत्तर बनकर उठें अथवा कोई उपाय नहीं है। भारत की पचास करोड़ मन्तान में व कहीं हैं जो समर्पित होंगे, उठेंगे आग बढेंगे, बीटा उठाएंगे भाग दिलाएंग उस मन्तान क। ऊँचो करेंगे जिसके दशन की आँखें तरस रही हैं। चारित्रिक दुबलता कटे, साहम बधे ईमानदारी आए, मकल्प दूट हो आनस्य घटे प्रमाद भागे, लाग पुटें, विज्ञान को जोतें मन में पँडे कि सारे आदग, उद्देश्य और भाव मनुष्य के लिए हैं मनुष्य उनसे लिए नहीं है, तो क्या सम स्याए खडी रह सकती हैं? पर यह होगा क्या? सरलता में नहीं होगा। मनुष्य जब जय आगे बढा है पीडा के माग से—रक्तपात और भुलमरी में से—बढा है। वास्तव में वह बढता नहीं, उसे बढता पढता है। हम सब मानो उस बरबस आग बगाने वाली महानाक्ति की ओर पीठ करके खडे हैं। हम उससे प्रति नमित नहीं होते। उसके कृपावटाक्ष व अभिलाषा नहीं बनल। हम उसके सामन पडन हैं, जितना वह हम धकियाती है, उतना ही आगे हम मरकत हैं।

चौथा मण्ड है 'अध्यात्म'। इसमें अंतरंग, इन्द्रिय, मन अह, चेतना सम्चारिता, कामासक्ति, सस्यंस, रस, ईस्टिकवटस, भाव, कल्पना, स्वप्न, घली विक शक्तिर्या, अगचिकर भाव, पाप, मृत्यु, पुनजन्म, वम विपाक सत्य का आग्रह बुद्धि और श्रद्धा, भाव विभाव अह और आत्मा, कामाचार, ब्रह्माचार, और विराटगत अह गोपक है। दस खड म न्तने अधिक प्रश्न उठाए गए हैं कि कवन कुछ के साथ ही समुचित पाय हो पाया ह। विषय रोचक होन पर भी उनके उत्तर जैसे ठिठुरकर रह गए हैं। इस विषयो में जो शब्द काम में आते हैं व पारिभाषिक हैं और उनकी परिभाषा कठिन इसलिए है कि शब्द का जो अर्थ

वक्ता के मन में होता है वह स्पष्ट रूप में भाषा में प्रेक्षित नहीं पाता। भाषा की अपर्याप्तता इस क्षेत्र में जितनी दिखाई देती है उतनी चिंतन के किसी अथवा क्षेत्र में दृष्टिगोचर नहीं होती। यहाँ अधिकतर उत्तर एक परिभाषा के प्रति प्राथमिक प्रतिक्रिया से अधिक आगे नहीं बढ़ते। हमारी, समस्त सत्ता की, साहित्यिक वृत्तियों और प्रवृत्तियों का मूल और विकास का मध्यम इम लक्षण में मिलने की भाषा की जा सकती थी पर वहाँ (परोक्ष रूप में) कल्पना और यथाय की संरचना की ही एक भाषा मिलती है।

कलाकार का यथाय—सच तो यह है कि किसी का भी यथाय—वह यथाय नहीं है जो वास्तव है या किसी दूसरे का है। वस्तुतः यथाय क्या है इसे कोई निश्चित रूप से नहीं कह सकता क्योंकि जो कहता है वह वास्तव यथाय को अपनी दृष्टि और दशन में संशुद्ध कर कहता है। पर कल्पना सचकी अपनी है और उसका यह स्वत्व स्वीकार किया जाता है। उसका क्षेत्र में हम स्वाधीन है। वास्तव में हमारा यथाय हमारी एक कल्पना है। बहुत से जन उस कल्पना से सहमत होने हैं इसलिए वह यथाय कहलाती है। जब हम अपने इस यथाय को अपने व्यक्तित्व की विचारणाओं भावनाओं और आकांक्षाओं के प्रकाश में पुनः संयोजित करते हैं तो हमारे समाज दृष्टि दशन वाले के लिए एक अनुकूल और रोचक वस्तु की रचना होती है और अन्त में के लिए कौरी कल्पना और निरी भावुकता की सृष्टि। पर जो कौरी कल्पना और निरी भावुकता कहकर तिरस्कृत का जाती है वह जब साहित्यिक कला-कौशल से भाषा की अच्छी पकड़ में आ जाती है तो विश्वव्यापी महाकाव्य का जन्म हो जाता है। जिस प्रकार हमारे कथों के ऊपर का भार अंतर के भार की तुलना में अत्यल्प होता है उसी प्रकार हमारे हाथ की रचना अंतर की रचना का एक लघु अंग मात्र होती है। अंतर की रचना वेदना से जितनी अधिक छलकती है उतनी ही अधिक पीड़ा वह कला की उंगलियाँ में उडेल जाती है।

जैनेन्द्र कलाकार है मुख्यतः कथाकार। उनकी कथाओं की विशेषता पात्रों का मनोविश्लेषण है। पर वे इस मनोविश्लेषण को अकस्मर इस प्रकार उपस्थित नहीं करते कि पाठक को पात्र के मन की—गहरी व मन की (क्याकि जैनेन्द्र के सुनिर्मित पात्र नारी हैं उनके पुष्पो का पौरुष बहुत कुछ गरद के पुष्पो की भाँति अप्रतिष्ठित रह गया है)—गति समझने में सुलभता मिले। वे उस पाठक के सम्मुख एक प्रकार के उलभाव एक प्रकार की गुत्थी के रूप में लाते हैं, उसमें एक प्रकार का चमत्कार एक प्रकार की नाटकीयता अद्भुतता लक्षित होती है। वे उनके ऊपरी व्यवहारों का चित्रण करते हैं। भीतर से जो उन व्यवहारों का

मचालन कर रहा है उसे पदों के पीछे रखत हैं उसमें विषय में विशेष नहीं कहते । और नारी के साथ सेक्स है । इन्द्रिय निग्रह दिगम्बरता की साधना, ब्रह्मचर्य में उस पर आवरण पड़ता है । पर प्राचीन कथन के अनुसार अवगुण्डन का पूरा अथ गोपन नहीं होता, उसमें इस गोपन के गठन के लिए एकसाव भी होता है । इन्द्रिय निग्रह में निग्रह के पुहास के भीतर इन्द्रिय के उद्देश्य की ज्योति प्रखर रहती है और सेक्स असवन के प्रयत्न के भास स दखकर असवन का 'अ' दृष्टि से? प्रोभन हो जाता है [जाद्र की नारी बहती है पर ऐम नहीं जैसे कि हवा, जो सागर की आद्रता को आकाश में हिम गिखरो के ऊपर पहुँचाती है व बहती हैं उन वाराआ की भाँति जो पवत स उतरती हैं नीचे का रिचती हैं और अपनी गति में लहरानी, तरंगित होती, बिनास स टकराती क्षत रिशत होने में पूणता और प्रीणता अनुभव करती रस सिद्ध होती, भरती, समाज के मानम सागर की ओर बटती है और वहा एर हल्की सी खलवलाहट उठाकर शात विलीन हो जाती है । जनेद्र अपनी कथाआ के द्वारा अपने को उदघाटित करत हैं । उनके चिंतन का ससार सेक्स के चारो ओर है । उसी में से प्रेम, अहिंसा, विद्रोह और दान का उदय होना है ।

कथाकार चिंतक होता है । उसकी कथाआ का यत्तित्व और आकषण उसके इसी चिंतन पर निर्भर होता है । इस चिंतन के दो स्थल हैं कथा की वस्तु और उसे उपस्थित करन की विधि । दोनों एक दूसरे को प्रभावित करती हैं पर उनकी बिलगा कर दखना बहुत कठिन नहीं है । कथावस्तु विषयक चिंतन को हम कथा का दार्शनिक पक्ष और दूसरे को उसका कला पक्ष कह सकत है । समय और हम' कथा नहीं है । निबध भी नहीं है वस जनेद्र एक प्रभावशाली निबधकार हैं । उसमें प्रश्ना स खडित निबधो के हल्क अश बिखरे हुए हैं । उसमें कला का अश स्वल्प है । यदि कुछ प्रधान है तो वह दार्शनिक पक्ष है । उसमें चिंतन की—विचार की—प्रधानता है । यहा उहान प्रश्ना के भीधे उत्तर दिए हैं यद्यपि अनेक प्रश्नों की आकृति ऐसी है कि उनमें उनका प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है ।

जनेद्र की कथाएँ केवल कथा मात्र नहीं हैं । उनमें एक प्रकार का विवेचन हाता है जो कथा को एक गरिमामय विचार उत्त्व और एक विनिष्ट वातावरण प्रदान करता है । कथा के दोनों पक्ष—दार्शनिक और कला—रचयिता के यत्तित्व को प्रतिबिम्बित करत हैं । दार्शनिक पक्ष के अतगत उसके चिंतन की क्षमता और उमुखता उसकी कल्पना की तक सगतता और स्पष्टता और उसके सृजन शक्ति की प्रीणता और प्रोत्थिता समाहित होती हैं । इसके द्वारा लम्बक सामाजिक विचारणा में अपना योग प्रदान करता है । लम्बक चिंतना ऊजस्वी होता है

उसकी रचना में उतनी ही तेजस्विता और विगिष्टता लक्षित होती है। जनेन्द्र ने अपनी कथाओं में किसी तेजस्वी निजी, विगिष्ट कृति का निर्माण नहीं किया है। उहो! अपना ससार नहीं बनाया है, और उसका वर्तमान की आलोचना के लिए उपयोग नहीं किया है। उन्होंने अपने आसपास से सामग्री को उठाया है, उसे अपनी दृष्टि में देखा है, अपने रंग से रंगा है अपनी तराश दी है, और स्या पित कर दिया है। वे परम्परा से मोहित हैं। वे पुरानी धारा के माग में बहे हैं। उसको तोड़कर उसके किनारे काटकर, नई धारा की रेखा डालने का विनोप प्रयत्न उनके यहाँ दृष्टिगोचर नहीं होगा। चिंतन की इस तेजस्विता का अभाव 'समय और हम' में भी विद्यमान है। भाषा के प्रश्न की बात करते हुए पृष्ठ २०७ पर, 'हिंदी का मोर्चा उदू से ठना, अंग्रेजी से नहीं', पृष्ठ ४७५ पर, 'अंग्रेजियत बढ़ रही है', पृष्ठ ४८१ पर, सरकार में हिंदी चलाना और टलाना शीपका के नीचे वे अपना वक्तव्य देते हैं। य वक्तव्य, अय वक्तव्या की भाँति कुछ ऐतिहासिक तथ्या की चर्चा करते हैं और तत्संबंधी विभिन्न घटनाओं और परिस्थितियों के विषय में जनेन्द्र के मत मात्र को प्रकट करते जान पड़ते हैं। वे समस्या पर आक्रमण नहीं करते। समस्याओं के साथ मानसिक रूप से जूझने का प्रयत्न वहाँ दिखाई नहीं देता। उनके कारण और उनसे संबंधित परिस्थितियाँ आदि के विश्लेषण और अध्ययन की ओर उनकी विशेष रुचि नहीं है। व्यक्ति विनोप द्वारा किसी समस्या में सम्बद्ध तत्वों के विश्लेषण का यह अर्थ नहीं होता कि उस त्रिया में से उसका समाधान निकल आएगा, पर समाधान निकालने के लिए यह अनि वाय है कि समस्या का समुचित विश्लेषण और मथन हो। वर्तमान सामाजिक समस्याएँ अत्यंत जटिल हैं। किसी फामूले या गुर विनोप के उपमाग से अथवा सदृच्छा मात्र से उनका समाधान नहीं प्राप्त किया जा सकता। उनका कायकारी समाधान प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि अनेक मनीषियों द्वारा विभिन्न पहलुओं से उनका विश्लेषण किया जाए और फिर उन विश्लेषणों पर अन्वयक दृष्टि डाली जाए। ऐसी स्थिति में ही यह सम्भावना ही सकती है कि समस्या विनोप का सुलभाने के लिए कोई उपयोगी सूत्र दृष्टिगोचर हो जाए। समय और हम से पाठक ऐसे विवचना की आगा कर सकता है, पर इनकी दिगा में उसमें प्रयत्न नहीं किया गया है। ऐसा प्रयत्न, जसा कि जनेन्द्र ने कथा साहित्य में हम आभास मिलता है, जनेन्द्र की प्रकृति में नहीं है। वे श्रद्धा से वातर है और सम-वय से अभिभूत। वे ससार-भरिता के तट पर खड़े होकर उसका प्रवाह को भावपूर्ण विनम्रता की दृष्टि से देख रहे हैं। उनकी दृष्टि बहती है—जा हा रहा है वह ठीक ही है उससे हम भाग नहीं सकते। हाँ मावधान, यह तत्र नहीं पर।

क नीचे से न निकल जाए नहीं तो हम और तुम जा धारा से अलग रहना ही उचित समझते हैं वहाँ के न रहें।

जनेन्द्र की जड़ प्राचीन म है पर नवीन ने उहें छुआ न हा एसी बात नहीं है। आधुनिक की भवभोर उहान अनुभव की है और उसत प्रति उनकी प्रति क्रिया बहुत स्पष्ट और प्राणवती हुई है। अनेक पार्थिव सुविधाआ स पूण ससार की नवीन विचारणाआ म जहाँ एक ओर आध्यात्मिकता की सिमक और बन्ना की बसक अनुभव की जा रही है वहाँ दूसरी ओर उमम चटिलता के ताल म गुम्फन उत्साह का उफान भी है। आधुनिक मनुष्य पर माना अपनी सम्यता की विजय का उमाद छाया हुआ है और वह अपनी इस विधिप्ल-मी अवस्था म मुझा की भोषण विभीषिकाआ स अपने इतिहास का रजित करता हुआ मुस्करावर आग बढ रहा है। ताजे घाव इतनी तजी से भर रह ह कि उमकी इस अमृत जीवनी शक्ति पर आश्चय हाता है। नवीन युग की इन प्राण म्निग्ध भावनाआ क प्रतिबिम्बन के लिए हिंदी का बाल-गद्य विनेप समय नहीं था। वह इन विम्बा का मँभालन का प्रयत्न करता था पर व जम उमकी भुजाआ म समात ही न थे। हिन्दी की आधुनिक की आत्मा की म्मिति और निलमिनाहट का वहन करन की क्षमता प्राप्त करने में जितनी सहायता जनेन्द्र न दी है उतनी किसी अन्य यक्ति ने नहीं। इस क्षेत्र म उनका योग साहसिक और अद्वितीय है। उन्होंने हिंदी क वाक्य को एक नई, स्वम्य और माथक उमुरता दी है। अंग्रेजी वाक्य रचना क कुछ असो को हिन्दी म उतार कर उसमे नई चटक और रगीनी उत्पन्न की है। वस हिंदी के मौलिक सौन्य म वृद्धि हुई है, उसम विविधता आर्क है और उमक प्राणा म एक ऐसी स्फुरणा का सवार हुआ है जिसने उगती राष्ट्रीयता की स नवीन मापा को पगु भावनाआ की परम्परा के आलिंगन पाग म पढ कर जड हा जाने ग बचा दिया है। इस क्रिया म जनेन्द्र की अपनी उम मापा गली का विकास हुआ है जा उनकी कलाकृतिया म—कथाआ और निबधों म—स्पष्ट अनुभव होती है और जिसके द्वारा जनेन्द्र के वाक्यों के कुछ ढाँच स्पष्ट अलग पहचाने जा सकते हैं।

समय और हम' म जनेन्द्र की गली क विहंसत बभव क प्रदान का विनेप अवकाग नहीं है। पर यहाँ भी उनके महत्वपूर्ण वाक्या की स्पग्वा और ध्वनि पर अंग्रेजी की छाया लिखाई दती है इसलिए कि चिन्तन की प्रक्रिया हिन्दी गरीर धारण करने पर भी आत्मा मे प्रेरणा म और निष्कप म इतनी अंग्रेजी है कि उसस बचा नहीं जा सकता। वास्तव म उसम उचकर भागना बतमान जीवन की वास्तविकता से मुह मोडना होगा सत्य स पसायन होगा। जनेन्द्र जीवन म आजाता के रूप म भल ही दृष्टिगोचर न हो, वे जीवन की वास्तविकता मे न मुह

मोड़ने वाले हैं और न सत्य व नाम से जा कुछ समझा जाता है उसमें ध्वरान वाले हैं। इस ग्रंथ में जनेन्द्र की गली सीधी है साफ भी है। उसमें जो वही-वहीं साहित्य सिक्त और मिट्टी की माधी भीनी गंध वाले देसी शब्दों का उपयोग है वह रस का त्थिचर वातावरण बनाता चलता है। पर उद्देश्यत यह चिंतन का, विचार का, ग्रंथ है और इसलिए इसमें स्पष्टता का स्वच्छता का वेधकता का, साथ वता का बहुत ध्यान रखा गया है। प्रपत्न यह रहा है कि जो कहा जा रहा है वह सामान्य हिंदी पाठक द्वारा समझ लिया जाए यद्यपि अंग्रेजी विन पाठक कभी सामन से ओभल नहीं हो पाया है। कारण दुर्बुह नहीं है। यह समझा जाता है कि जो कुछ जानता है वह अंग्रेजी जानता है और जो अंग्रेजी नहीं जानता वह कुछ नहीं जानता कम से कम इतना नहीं जानता कि उसकी ओर विशेष और गभीर ध्यान दिया जाए। इसलिए जहां मन में अंग्रेजी में उठी बात का पर्यायवाची मुनिदिचत नहीं हो पाया है वहाँ 'अपराध के साथ Thrill (पृष्ठ ५) बहुमतवाद के साथ Conformism (पृष्ठ ६५), 'यक्ति पूजा के साथ Personality Cult (पृष्ठ ६८), 'राजसिक् वृत्ति' के साथ Kineticenergy (पृष्ठ ६६) 'मानवताओं के साथ Humanities (पृष्ठ १०७), प्वाइट (पृष्ठ ५२८) क्नेटो मेनिया तथा सस्पेंस (पृष्ठ ५५६) और मेसोकिज्म, साडिज्म (पृष्ठ ६२८) शब्दों का उपयोग किया गया है।

समय और हम व्यवहार का ग्रंथ है। व्यवहार का संचालन मनुष्य के बुद्धि विवेक से कम और उसकी भावनाओं से अधिक होता है। पर यह बोध है जो विवेक को स्वच्छ और ताजा रक्त पहुंचाता है उसे स्वस्थ रखता है ग्राम बलाता है जिससे वह भावनाओं का प्राणाम चिर नूतनता डालता है उनका संस्करण करता है और उनके द्वारा व्यवहार का नय ग्रंथ और नय रूप प्रदान करता है। इस प्रकार का बोध नये समय की सृष्टि करता है हमारे द्वारा और यह समय हम से—अपने निमाताओं से—शांसा करता है कि हम उस गलत नहीं समझेंगे जो उसना पावना है वह उम देंगे और अपना वाक्य बना देंगे।

समय और हम निदचय ही एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। दादा धर्माधिकारी ने उमे तयारयित सर्वोदयी तोमा की दृष्टि में समाज सुदर और उपादेय कहा है। सतोप की बात है कि जनेन्द्र ने गांधी को ही सामने रखा है तथाकथित गांधीवाद से वे अपन को नहीं बाध पाए हैं। मैं ग्रंथ की उपयोगिता इस बात में समझता हूँ कि इसमें उन अनन्य प्रश्नों को स्पष्टता दी गई है जो जन मन में

संस्कृति का दार्शनिक विवेचन : सृजनात्मक मानववाद की भूमिका

डा० देवराज ने अब तक दशान और उपन्यास साहित्य में कई ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। दशान में उनकी प्रथम रचना, उनकी पी एच० डी० थीसिस के आधार पर लिखी हुई अंग्रेजी की पुस्तक 'शबर या नान शास्त्रीय सिद्धान्त है। इस प्रकार उन्होंने अपना दार्शनिक चिन्तन शंकर के अद्वैत वेदांत के अध्ययन से प्रारंभ किया। पर नान शंकर व नवीन पाश्चात्य दार्शनिक प्रभाव में अद्वैत वेदांत से दूर हटने लगे। पर विचार की परिपक्वता उन्हें नान शास्त्र एवं तत्त्व भीमासा में पाश्चात्य तक मूलक भाववादिया और नीतिशास्त्र में नवीन सापेक्षवादिया तथा गुणवादिया के अन्तर्गत से दूर ले गई। ऐसी प्रवृत्तियों में वे मानववाद (Humanism) की ओर आकर्षित हुए और साथ ही साथ एक चिन्तनशील दार्शनिक होने के कारण उन्होंने प्रायः समस्त मानवीय विद्याओं और कलाओं—धर्म, शिक्षा, राजनीति आदि—का गंभीर अध्ययन करने संस्कृति का दार्शनिक विवेचन—(सृजनात्मक मानवतावाद) पर अपना डी० लिट० प्रबंध प्रस्तुत किया। यह प्रबंध उनके दोनो परीक्षका, अमरीकी प्रोफेसर एफ० एस० सी० नाथरॉप और डब्ल्यू इ० हॉकिंग को बहुत पसंद आया। प्रोफेसर नाथरॉप ने पाया कि प्रबंध-लेखक ने विज्ञान दार्शनिक साहित्य को भली भांति पढ़ा और उस पर मनन किया है और उसका विदलेपन तथा उसकी आलोचनाएँ और निष्पत्तियाँ विषय से सम्बंधित हैं। इसी प्रकार प्रो० हॉकिंग ने प्रमाणित किया कि विषय वस्तु की गंभीरता सकारण भर की प्राचीन और नवीन सम्बंधित विचार धाराओं की व्यापक जानकारी विचार क्रिया में साहस और स्वातंत्र्य मानव की समस्याओं के प्रति सहानुभूति, सत्य की

निकपट साज तथा प्रतिपादन की गैली की स्पष्टता आदि गुणा के कारण लेखक ने अपने विषय में असाधारण गुणा का परिचय दिया है।

अपने निष्कर्षों तक पहुँचने के लिए लेखक को अनेक वादों का विस्तृत अथवा संक्षिप्त रूप में खंडन करना पड़ा है अथवा भिन्न भिन्न मतों में अपना भेद प्रकट करना पड़ा है। एमे वाद अथवा मत सभ्यता में हैं — बीमबी सदी के अबुद्धिवाद, सापेक्षवाद और सशयवाद, प्रत्ययवादियों का अतिमानववाद गिजर और लमाट के मानववादी-दशन आत्म निष्ठावाद आदम मूलक मूल्य सिद्धान्त माना-मूलक पद्धतिया नवीन नर विज्ञान का दृष्टिकोण माक्सवादी मतव्य तक-मूलक भाववाद, राच के कला सबधी मत, मनोविश्लेषणवादी मतव्य, सशयवादी सिद्धांत मनोवैज्ञानिक तथा समाज शास्त्रीय सिद्धांत, कला में प्रभाववादी सिद्धांत तथा अभिव्यजनावादी सिद्धांत, दगन सबधी स्पेनसर का मत, ईश्वर-सबधी एम० एलेक्जेण्डर की उक्ति, वैज्ञानिक यथायवाद, वर्तमान भोगवाद, बगवाद, प्रोफेसर लास्की का राय विषयक मत आदि।

उक्त खंडन के साथ ही साथ लेखक ने दगन के विस्तृत क्षेत्र में अनेक वादों पर अपना स्वतंत्र दृष्टिकोण, आशिक मंडन के रूप में, व्यक्त किया है। ऐम विषयों की संक्षिप्त सूची तथा उनके मुख्य शीपक निम्नलिखित हैं —

मानवीय मृजन शीलतावाद, मानवीय मृजन शीलता का अभिव्यक्तिया ह— संस्कृति और सभ्यता विज्ञान और दगन मानवीय विद्याशा की तीन विधेय ताएँ—अमृतता मूरपात्मवता, ऐतिहासिकता, सभ्यता का अर्थ है उद्योग तथा की प्रगति तथा सस्या-वद्ध जीवन संस्कृति की परिभाषा—व नियमों जिन्हें द्वारा मनुष्य वास्तविक या कल्पित यथाय के निरूपयोगी रूपा में सम्बन्ध स्थापित करता है सभ्यता सांस्कृतिक क्रिया की ही उपज है, विद्रोही और क्रानिकारा का भू प्रतिभा और पाहित्य का भेद, कला में यथाय के प्रति संबंध रहता है। कला की परिभाषा—रोगात्मक सायकता वात जीवन क्षणा की मृष्टि या अभिव्यक्ति समीक्षा की परिभाषा—कला-कृति के विश्लेषण, वाक्या और मूल्याकन का प्रयत्न, चिन्तन के उदय का कारण अनुभवा में समति की खाज दगन की परिभाषा—सांस्कृतिक अनुभूति के विश्लेषण, व्याख्या और मूल्याकन का प्रयत्न सभ्य व्यवहार कनव्य-पानन है साधुता सांस्कृतिक क्षेत्र की चीज है जेम्स का यह प्रस्ताव कि हम अध्यात्म क्षेत्र की प्रतिभाशा का अध्ययन कर उपयुक्त है धार्मिक या आध्यात्मिक अनुभूति की परिभाषा—एक रहस्यपूर्ण परिणति लक्ष्य अथवा उपस्थिति (मत्ता) का प्रतीति—जा जावन के समस्त मूल्या का आधार समझी जाती है। शिक्षा की

परिभाषा—शिक्षा सार्वजनिक विरासत का नियंत्रित और चयनात्मक संप्रेषण है, विविध मूल्यों के उत्पादन, उपभोग और रक्षण की क्षमताओं का संपादन ही शिक्षा का ध्येय है व्यक्ति, समाज और राज्य केवल जननप्रिय सरकार ही अपनी शक्ति बम बर सकती है आत्मिक मूल्यों पर गौरव की आवश्यकता—आत्म परिष्कार पर गौरव होना चाहिये सभ्यता और सस्मृति में समबल होना चाहिये—यही विश्व शांति और प्रभावशील विश्व व्यवस्था का आधार है।

अब हम प्रस्तुत पुस्तक के लक्ष्य एवं विषय का सारांश प्रायः विद्वान् लेखक के ही शब्दों में देने का यत्न करेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक में एक नये जीवन दर्शन की रूपरेखा देने का प्रयत्न किया गया है। इस जीवन दर्शन को मृजनात्मक मानववाद की संज्ञा दी गई है और उसके प्रकाश से मानवीय अनुभूति के कुछ महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों का स्वरूप समझने की कोशिश की गई है। एक नई जीवन दृष्टि के प्रतिपादन के रूप में युग की कुछ जरूरतें रहती हैं। हमारे युग की जरूरतें या समस्याएँ अनेक और विविध हैं। हमारी सबसे बड़ी जरूरत है—जीवन मूल्यों के प्रति एक भावात्मक दृष्टिकोण। आज के मनुष्य के मन में यह धारणा धीरे धीरे घर कर गई है कि हमारे नैतिक तथा दूसरे मूल्य अधिवाश में सपेक्ष हो गए हैं। प्रस्तुत पुस्तक का एक प्रयोजन है मूल्यों के मन में यह धारणा धीरे धीरे घर कर गई है निराकरण। इसका दूसरा प्रयोजन है मनुष्य की उन क्रियाओं की जिनके द्वारा वह विभिन्न मूल्यों की पूर्ति के लिए लेखक द्वारा किये हुए व्यवस्थित प्राप्त करना। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लेखक द्वारा किये हुए व्यवस्थित विवेचन के प्रयत्न में क्रमशः एक व्यापक सस्मृति दर्शन का रूप धारण कर लिया। यह समझा गया कि इस प्रकार का दर्शन ही उन अनेक समस्याओं का समुचित समाधान दे सकता है जो हमारे युग को आन्दोलित कर रही हैं।

आज के वैज्ञानिक मनोवृत्ति के विचारक जिनमें अधिवाश नर विज्ञानी और समाज शास्त्री हैं सब प्रकार के मूल्यों पर आधारित सिद्धांतों के प्रति शंका का भाव रखते हैं। उनकी धारणा यह है कि मूल्यों की बात करना वास्तविक अर्थवैज्ञानिक होता है। इस प्रचलित मतवाद या फणन के विरुद्ध प्रस्तुत निबंध में यह प्रस्तावित किया गया है कि दर्शन को विज्ञान से भिन्न ही होना चाहिये। मनुष्य की समस्त क्रियाओं का लक्ष्य मूल्यों का उत्पादन है। मनुष्य जानने की इच्छा करता है—या तो इसलिये कि जानना अपने में एक सतोषप्रद अनुभव है अथवा इसलिये कि उसके द्वारा बाह्य प्रवृत्ति को धरना जरूरत है; अतः प्रत्येक मानव को दो प्रकार का होता है वैज्ञानिक

और दार्शनिक । बौद्धिक बोध हम मुख्यतः परिवर्तन गत वस्तुओं तथा घटनाओं पर नियंत्रण देता है । इसके विपरीत दार्शनिक बोध वह है जो हम अनुभूति एवं कृतना के उच्चतर तथा निम्नतर रूपों में विवेक करना सिखलाय । इस दृष्टि में हम दान की परिभाषा इस प्रकार से कर सकते हैं । दान का वाय मनुष्य के जीवन से सम्बन्धित चरम मूल्यों का समझना है । जिन हम वैज्ञानिक व्याख्या कहते हैं वह कारण मूलक तथा वस्तुओं के अस्तित्व से संबंध रखने वाली होती है । अर्थात् वह उन स्थितियों या दशाओं का संकलन करती है जो वस्तुओं या घटनाओं के आविर्भाव, विनाश और विनाश अवधि तक चल रही हैं । इससे विपरीत दान का वाय मनुष्य की निरुपयोगी सांस्कृतिक क्रियाओं की व्याख्या और मूल्यों का समझना है । इस दृष्टि में नीति शास्त्र, मोक्षशास्त्र और अध्यात्मशास्त्र उसी प्रकार दान के अंग हैं जैसा कि वेदशास्त्र और ज्ञान-मीमांसा ।

प्रस्तुत पुस्तक का मूल प्रयोजन रचनात्मक है । फिर भी संस्कृत का पग-पग पर विपरीत वादा का खंडन करना पड़ा है । आरंभ ही में एक मूलक भाव-वाद से मतभेद प्रकट करते हुए उसकी पराप्ता लेखक का करनी पड़ी है । कारण यह है कि उक्त सम्प्रदाय केवल एक शास्त्र की प्रामाणिकता को स्वीकार करता है और वह नीति शास्त्र, मोक्षशास्त्र तथा अध्यात्म-दान का सद्व्यवहार की दृष्टि में दृष्टता है अर्थात् यह कहता है कि वे प्रामाणिक विचारों नहीं हैं ।

एक मूलक भाववादियों की यह निश्चित धारणा है कि दान को सौम्य नतिकता आदि के संबंध में मतभेद प्रकट करने का कोई अधिकार नहीं है । इसका अर्थ यह है कि दान के अध्ययन में हम किसी प्रकार के जीवन विवेक को पाने का यत्न नहीं करना चाहिये ।

दान की यह वर्तमान स्थिति संकट की स्थिति कही जा सकती है । यदि दान को जीवन के मूल्यों के दार में कुछ नहीं कहना है । यदि वह हम जीवन-विवेक नहीं दे सकता यदि वह विज्ञान का सहकारी-साथी है और उसका विज्ञान में कुछ वैसा ही सम्बंध है जैसा स्वामी में सेवक का होता है । यदि दान का वाय बौद्धिक चिंतन के माग का साफ़ करना भर है, तो यह स्पष्ट है कि उसका जीवन के उन पहलुओं में जो हम महत्त्वपूर्ण लगते हैं कोई सम्पर्क या लगाव नहीं रह जाता । अतः हम मानवीय व्यवहार का अध्ययन उन पद्धतियों में नहीं कर सकते, जिनसे प्रकृति का अध्ययन किया जाता है । अतः प्रस्तुत पुस्तक में इस प्रकार की वैज्ञानिक अथवा गणितात्मक पद्धति की आलोचना की है । किंतु साथ ही साथ लेखक रहस्यमय वापनिक अथवा

तत्त्व बल्पना में मग्नचित्त (Metaphysical) पद्धति से उतना ही परहक करता है जितना कि गणितात्मक पद्धति से। कई आध्यात्मिक विचारकों की पद्धति बुद्धि विलासी (Speculative) है अथवा रहस्यवाद के समीप पहुँच जाती है जबकि प्रस्तुत लेखक को दार्शनिक चिंतन की वह सीमा पसंद है जो परिचित अनुभव में अधिक दूर नहीं जाती।

अनेक विचारकों के मत में दार्शनिक विषय कोई इद्रियातीत तत्त्व पदाय नहीं है। दार्शनिक का काम मानवीय चेतना में उन सामान्य रूपों का विश्लेषण और व्याख्या है जो स्वयं में मूल्यवान् समझे जाते हैं।

इस पुस्तक में लेखक ने प्रमाणा पर अधिक बल देते हुए अनेक मता और वादों से मतभेद प्रकट किया है। जहाँ उसने एक और प्रवृत्तिवाद तथा भौतिकवाद को अस्वीकार किया है वहाँ वह किसी श्रेणी में अध्यात्मवाद या प्रत्ययवाद को भी स्वीकार नहीं कर सका है। प्रस्तुत पुस्तक में दार्शनिक चिंतन और बोध का प्रमुख ध्येय मानव व्यक्तित्व को अधिक परिष्कृत और इलाय्य बनाना ही बनाया गया है।

प्रस्तुत लेखक के विचार में यह तो उचित ही है कि हम अपनी प्राचीन दार्शनिक धरोहर पर गौर करें और अपने देश में अनेक मनीषियों, जैसे स्वामी विवेकानंद लोकमान्य तिलक श्री अरविंद गांधी जी आदि की विचार धाराओं का भी आदर करें, किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि आज हम, नये युग के नये बोध और प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए नवीन साहसपूर्ण चिंतन न करें। आज हम ज्ञान विज्ञान के किसी भी क्षेत्र में पश्चात्य देशों की सांस्कृतिक उपलब्धियों की उपेक्षा नहीं कर सकते। हम उपेक्षा कर भी नहीं रहे हैं जनतंत्र तथा समाजवाद के सम्बद्ध प्रयोगों एवं बढ़ते हुए औद्योगिक प्रयत्नों के रूप में आज पश्चात्य संस्कृति हमारे जीवन के भीतरी कक्षा में प्रवेश कर चुकी है।

इसका यह मतलब बदापि नहीं है कि हम प्राचीन दार्शनिक और विचारकों की उपेक्षा करने चाहिए या उनसे हम कुछ नहीं सीखना है। आज के मनुष्य को उपयोगी जीवन विवेक प्राप्त करने के लिये मानव श्रुति के समस्त सचित बोध की आवश्यकता है। अतः हम प्राचीन यूनान, चीन ईरान आदि देशों की सत्कृतियाँ या भी तुलनात्मक आकलन करना चाहिये। विशेषतः हम विनम्र भाव में इन प्राचीन देशों की आध्यात्मिक परंपराओं को समझने का प्रयत्न करना चाहिये।

आज के भारतीयों को एक बात विशेष रूप में याद रखनी चाहिए हमारी

वर्तमान संस्कृति का माप और मूल्यांकन केवल हमारी प्राचीन धराहर के आधार पर नहीं किया जायेगा, बसा करन के लिए देखना होगा कि साम्प्रतिक स्थिति क्या है। वस्तुतः हम समृद्ध प्राचीन धराहर को ठीक सतभी समझ और सम्हान रखन है जब हमम पर्याप्त विचार गवित और आत्मिक प्रिया गीलता तथा लगन हा। यह गुण हमारे आगे ब्रहन और दूसरे दशा के बीच पुन गौरव-गुण स्थान पान की आवश्यक शन है।

जो व्यक्ति एक नवीन जीवन-दशान या दृष्टि का विकसित करना चाहता है उस अनिवाय रूप म युग बाध और युगानुभूति व प्राय सभी क्षेत्रा की परीक्षा और समीक्षा करनी पडती है और यह बताना पडता है कि उनमे मे प्रत्येक का जावन के व्यापक प्रयाजन की दृष्टि स क्या और कहां स्थान है। अन इस पुस्तक म मानवीय मृजनगीलता का अध्ययन यह समझन के लिये किया गया है कि मनुष्य द्वारा किय गय मृत्या के उपादन और उपभाग मे उसका क्या हाप रहता है। यहा मृजनशीलता की धारणा का उपयोग जहां एक ओर मानवीय संस्कृति के विभिन्न रूपा के बोध या व्याख्या के लिय किया गया है, वहा दूसरी ओर आधुनिक मनुष्य की प्रमुख समस्याओं के समाधान के लिय भी।

इस प्रकार इस पुस्तक की विषयवस्तु बडी व्यापक है। आरंभ म तो अनक प्रमाणा की समीक्षा करन हुए विद्वान् लेखक ने संस्कृति के दार्शनिक विवेचन का ठोस आधार दूना है, फिर संस्कृति के विविध क्षेत्रा की व्याख्या की है और अंत मे अपने सिद्धान्ता का प्रयाग आधुनिक जीवन की प्राय समस्त समस्याओं का हल करन म किया है। लेखक को अपना अभिप्राय प्रकट करन के लिए अनक गद्य तथा व्यजनाएँ गदनी पडी हैं और अपने मत की स्थापना के लिए अनक विद्वाना व सिद्धान्ता के सारगर्भित अंश का सहारा लेना पडा है।

अब लेखक की परिभाषाओं और उक्तिया के कुछ उदाहरण दिय जान हैं —
मानव निर्मित परिवेग की प्राय प्रत्येक ऐसी चीज जो मानव-जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण है, मानवीय मृजनशीलता म उद्भूत हुई है।'

× × × ×

यह मृजनशीलता वास्तविकता तथा आंतरिक जीवन दोनों की अपक्षा म व्यापृत होती है। पहली दशा म उसका लक्ष्य उपयोगिता होता है और दूसरी म मनुष्य के आंतरिक जीवन का प्रसार और समृद्धि उपयोगिता के धरातल पर प्रियागील होनी हुई मानवीय मृजनशीलता औद्योगिक वस्तु क्रम (Technological Order) को उत्पन्न करती है जो सभ्यता का एक आवश्यक अंग है, मानवीय जीवन का निरूपयोगी, किन्तु अपवती सभावनाओं का अवेपण करती हुई

वह मस्त्रुति की सृष्टि करती है जिसकी अभिव्यक्ति कला तथा चिंतन की कृतिपा में होती है।

× × × ×

‘मस्त्रुति का अर्थ है मृजनात्मक अनुचितन। उसका निर्माण उन क्रियाओं द्वारा होता है जिनके द्वारा मनुष्य यथाथ की साधक, किंतु निरूपयोगी छविपा की सम्बद्ध चेतना प्राप्त करता है। मस्त्रुति की दूसरी परिभाषा इस प्रकार होगी— वह उन क्रियाओं का समुदाय है जिनके द्वारा मनुष्य के आत्मिक (मानसिक) जीवन में विस्तार और समृद्धि आती है।’

× × × ×

यह आश्चर्य की बात है कि विभिन्न कोटिपा के मानववादी विचारक मनुष्य की गवितया तथा उपलब्धियाँ मगव की भावना रखते हुए भी उस आध्यात्मिक मनोवृत्ति की प्रकृति और साधकता का अन्वेषण नहीं करना चाहते जो सत चरित्र जैसी उच्च वस्तु को उत्पन्न करती है। इस चरित्र का महत्त्व कला तथा चिंतन की सृष्टिपा से किसी प्रकार भी कम नहीं है।

× × × ×

मूल्या की गुणात्मक चेतना का सर्वोच्च रूप माक्ष धम या आध्यात्मिक मनोवृत्ति है। यह मनोवृत्ति अपने को मुख्यतः दा स्या म यवन करती है— माधारण लोग जिन जिन छोटी चीजों की विनोय कामना करते हैं उनके प्रति वैराग्य भावना में और उत्तरता तथा त्याग की साधारण क्रियाओं में जो कि सत प्रकृति की अपनी विशेषताएँ हैं। वस्तुतः एक यवित उसा हृद तक उत्तर तथा परहितवादी हो सकता है जहाँ तक उसने सतो के विनिष्ट गुण—अपरिग्रह मूलक उदासीनता—का आवलन किया है।

× × × ×

‘धार्मिक तथा आध्यात्मिक अनुभूति हमारे मत में एक रहस्यपूर्ण परिणति, नश्य, उपस्थिति (सत्ता) की प्रतीति है जो जीवन में समस्त मूल्या का मूल या आधार समझी जाती है—धार्मिक आध्यात्मिक अनुभूति का साधक मनुष्य का संपूर्ण चेतना मूलक जीवन तथा अनुभूति से होता है। वस्तुतः वह अनुभव मनुष्य की संपूर्ण अथवती अनुभूतियाँ की प्रतीयमान एकता रूप होता है। इस दृष्टि में देखने पर यह जान पड़ेगा कि दगा तथा धार्मिक आध्यात्मिक अनुभूति में अनिष्ट सम्प्रथ है। धम चेतना में जिस एकता की धुंधली प्रतीति होती है उसे दगा तथा शास्त्राय तथा अथ मूल्योक्त आनोक में समझने का प्रयत्न करता है।’

× × × ×

जाता है। इसके विपरीत दार्शनिक चर्चाएँ उन सम्बन्धों का उदघाटन करती हैं जो तक सूत्रक आधार (Ground) तथा उसके निष्कर्षों (Consequences) में होते हैं और उन सम्बन्धों का भी जो दूसरे मूल्यात्मक मानों के प्रयोग में निहित हैं। धार्मिक आध्यात्मिक अनुभूति के उदय में दार्शनिक वही जाने वाली प्रतीतियाँ का महत्त्वपूर्ण हाथ रह सकती हैं।

×
 'यह प्रेम और मैत्री सांस्कृतिक जीवन का आवश्यक अंग है। वे उस जीवन की आवश्यक हेतु स्थितियों को भी निमित्त करती हैं।

×
 "एक मृज्जनीक व्यक्ति दूसरे मनुष्यों में इसलिये रुचि नहीं लेता कि वे सम्पर्क में अपने अस्तिव का समृद्ध कर सकती हैं। यदि राष्ट्र-संघ जैसी समस्याएँ मानव जाति की विभिन्न इकाइयों में एकता स्थापित करना चाहती हैं तो उन्हें चाहिये कि व्यक्तियों और जातियों में इस बात का प्रचार करें कि वे आध्यात्मिक-सांस्कृतिक क्रियाओं को अधिक महत्त्व दें और दूसरे देशों की बर्गी क्रियाओं में भाग्यदार बनें। यही विश्व शांति और प्रभावशील विश्व व्यवस्था का आधार है।"

श्रालोचना

एक अर लेखक भौतिकवाद में परहज करती हैं तो दूसरी ओर वे ईश्वरवाद का भी बहिष्कार करना चाहती हैं। भौतिकवाद के विषय में उनका मत है कि वे वास्तविकताएँ जो स्वयं तौर से मानवीय हैं भौतिकशास्त्र तथा रसायनशास्त्र जैसी विज्ञानों की परीक्षा में विनकुल ही नहीं आ सकती। इसलिये मानवीय जीवन तथा अनुभूति में प्रति भौतिकवादी दृष्टिकोण समीचीन नहीं है। इसके अतिरिक्त लेखक ने कई स्थानों पर समाधि' जैसी द्रव्यवादी अनुभवों का प्रयोग और मनुष्य के धार्मिक अनुभवों को मोक्ष के प्राप्ति के सुदूर अर्थवादियों के सुदूर विचारों का उदाहरण तथा व्यापक है।
 ऐसी दृष्टि में यह समझ में नहीं आता कि लेखक ने ईश्वर अथवा जैमिनी का बहिष्कार क्यों किया है। वह कहती हैं— हमारी अलौकिक अथवा अतिमानव वास्तविकताओं में आस्था नहीं है। इसका मतलब यह है कि हम

ईश्वर, ब्रह्म जैसे पदार्थों की जिनकी स्थिति मानवीय अनुभूति में परे ममयी जाती है कल्पना को उचित नहीं समझते। हमारी राय में लेखक का यह मकीर्ण दृष्टिकोण उनके अत्यन्त स्थानो भेद प्रदर्शित व्यापक और उदार दृष्टिकोण से मैन नहीं खाता। “अत्यन्त” अथवा “आत्मा” की प्राथमिकता की स्वीकृति भी तो मनुष्य के बौद्धिक एवं काल्पनिक अनुभवों के अन्तर्गत है। लेखक ने स्वयं सतीक इन्द्रिय-जय अनुभववाद का खटा किया है और यह भी माना है कि कुछ मानवीय अनुभूतियाँ गणित अथवा भौतिक विज्ञान की पद्धतियों में मिट्ट नहीं की जा सकती, और ऐसी स्थिति में विचारक को उतनी ही प्रामाणिकता स्वीकार करनी पडती है जो उस दगा में उपलब्ध हो सके। तब तो “आत्मा”, “ब्रह्म” आदि अनुभूतियों और कल्पनाओं का बहिष्कार लेखक की विचारावली में आत्म विरोध और अमर्गति के दोष प्रकट करता है। एमा नगता है कि लेखक केवल एक मुक्त के फेर में ‘खुश’ में जुगा हा गया है और उसकी दृष्टि में, महत्त्व के एक म्यल पर, थोडा-मा घुघलापन आ गया है।

इसी प्रकार विद्वान् लेखक के इस मत में, कि मनुष्य की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता उसकी मृजनशीलता में है, कुछ स्वेच्छाचार-सा दृष्टिकोचर होना है। हमारे विचार में मनुष्य के गुणा की वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक व्याख्या में अनेक गुण एमे मिल सकते हैं जिनका महत्त्व मृजनशीलता से कम नहीं है।

फिर भी, ममप्र दृष्टि से देखने पर हम इस बात पर बल देने में मवाच नहीं है कि प्रस्तुत पुस्तक की गणना हिन्दी में आधुनिक दार्शनिक साहित्य के उत्तम अंशों में होनी चाहिये।



कलम का सिपाही : एक युग का सन्दर्भ

प्रेमचंद एक व्यक्ति का नाम नहीं है—नवाबराय एक व्यक्ति का नाम है। प्रेमचंद एक युग का नाम है उसी सम्पूर्ण सदस्यों का नाम है। गरीब घराने में पैदा होने वाले जिन्दगी भर गरीबी में जूझने वाले हजारों व्यक्तियों का एक नाम है—प्रेमचंद। उसकी जिन्दगी बरोडो किसानों और मजदूरों की जिन्दगी थी। वह किसानों का किसान था, मजदूरों का मजदूर। वह मुद्ररिष था स्कूलों का सत्र डिप्टी इन्स्पेक्टर था सम्पादक था कलम का सिपाही था। चान-ढाल रहने-सहन, आचार विचार, बस भूषा में वह टिपिकल भारतीय था। गो कि गालिब ने लिखा है कि आदमी का भी मुयस्सर नहीं दस्ता होना लेकिन प्रेमचंद सबसे पहले इसान थे।

इन सत्र जिम्मेदारियों का निर्वाह करने वाला प्रेमचंद एक सरन सीधी रेखा की तरह था। उसमें न कोई बकता है और न उतार चलाव जसा बहुत स परिचामी लेखकों के जीवन में देखा जाता है। प्रेमचंद ने स्वयं अपने सम्बन्ध में लिखा है—'मेरा जीवन सपाट, समतल मदान है जिसमें कहीं कहीं गडों तो ह पर टीलो पर्वतों घने जंगल गहरी घाटियाँ और खडहरों का स्थान नहीं है। जो सज्जन पहाडों की सरके गौकीन है उ ह तो यहाँ निरागा ही हागी। इस पर जीवनी लेखक ने टिप्पणी की है—यानी कि जिसे आना हो समझ बूझ कर आये।

उसने आगे लिखा है— और सच तो यह है कि अगर ऐसी कुछ बात ही न आ पडनी तो शायद उस व्यक्ति न आने वार में इतना भी न जिया होता। कोई पूछता तो शायद वह कह देता मरी जिन्दगी में ऐसा है ही क्या जो मैं किसी को मुनाऊँ। बिलकुल सपाट समतल जिन्दगी इसी ही जमी देग के और करोने योग जीने हैं। एग सीया माधा गृहस्थी व पचडे में पँगा हुआ, तग दस्त

मुदरिस, जो सारी जिन्दगी कलम घिसता रहा इस उम्मीद में कि कुछ आसूदा हो सकेगा मगर न हो सका। उसमें क्या है जा मैं किसी को सुनाऊँ ? मैं तो नदी किनारे खड़ा हुआ नरकुल हूँ हवा के थपड़ों से मेरे अन्दर की आवाज पदा हो जाती है। मेरे पास अपना कुछ नहीं है जो कुछ है उन हवाआ का है जो भर भीतर बजी। मेरी कहानी तो वस उन हवाआ की कहानी है उ ह जाकर पकड़ो मुझे क्यों तग करते हो।'

कहना न होगा कि भ्रमृतराय न प्रमचद की चुनौती को स्वीकार किया और उनके भीतर वजने वाली हवाओं को पकड़ने तथा उ ह ग्रथ देने की कोशिश की। सपाट जिन्दगी को ऊपर में नहीं बल्कि भीतर से पकड़ना हाता है। कानरिज क विचार से यदि साधारण से साधारण मनुष्य की जिन्दगी को ईमानदारी और सच्चाई से पेश किया जाय तो वह रुचिकर और गम्भीर हो सकती है। किन्तु किसी साधारण व्यक्ति की जीवनी से कलाकार की जीवनी भिन्न होगी क्योंकि वह साधारण होने के साथ साथ असाधारण होती है। किसी लाकनायक मनापति या धमगुर की जीवनी से लेखक कलाकार की जीवनी अलग होगी। इसका कारण यह कि लेखक और कलाकार जीवन को समग्रता में ग्रहण करता है। इसलिए लेखक की जीवनी के सम्बन्ध में मुख्यतः तीन प्रश्न उठाये जाते हैं—

(१) क्या यह जीवनी उसके लेखन के मूल्यांकन में सहायक सिद्ध होती है ?

(२) क्या इससे लेखक नामधारी मनुष्य के नैतिक बौद्धिक तथा भावात्मक विकास का अध्ययन किया जा सकता है ?

(३) क्या लेखक की रचना प्रक्रिया के समझने में यह मूल्यवान् सिद्ध होगी ?

या तो इन तीनों प्रकार के दृष्टिकोणों से तीन प्रकार की जीवनियां लिखी जा सकती हैं और लिखी भी गयी हैं। किन्तु सूक्ष्म विचार करने पर ये एक ही प्रश्न के तीन आयाम हैं। हम कलम का सिपाही के सम्बन्ध में भी उठाया जा सकता है।

जहाँ तक पहले प्रश्न का सम्बन्ध है यह निश्चित है कि साहित्यिक रचना का जीवनीपरक अर्थानि खतरे से खाली नहीं है। रचना और जीवन का सम्बन्ध-स्थापन सूक्ष्म और समझारी पर निर्भर है। रचना जीवनी की अनुकृति नहीं है। इस अनुकृति मान लेने पर इमिली ब्राँट के मकबरा में कहा गया कि उसने हीथक्लिफ (Heathcliff) की अधवामना का स्वयं अनुभव किया था। कुछ लोगों का यहाँ तक कहना है कि बुदरिंग हाइट्स स्त्री द्वारा लिखा ही नहीं जा सकता। इस प्रकार के ऊन-जतूल तर्कों का उत्तर न्त हुए

एक लेखक ने कहा कि इन सिद्धांतों के आधार पर कहा जा सकता है कि शेक्सपियर पुरुष नहीं, स्त्री था। घाँटे की जीवनी लिखते समय उसकी रचनाओं के लम्बे उद्धरण दिए गए हैं। अमृतराय ने भी 'कनम का सिपाही' में इस पद्धति को अपनाया है।

जीवनी साहित्य दूसरे प्रश्न को ज्यादा सही रूप में उपस्थित कर सकता है। रचना प्रक्रिया का समझना उसका किंचित् योग होता है क्योंकि रचना प्रक्रिया को रचना के भीतर से समझना अधिक प्रामाणिक होता है। मेरा गमाल है कि लेखक की जीवनी का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन उसे युगोत्तम सद्म में प्रस्तुत करना है। उसमें उसकी रचना, वचारिकता, भावनात्मक विकास, रचना प्रक्रिया आदि पर प्रकाश पड़ता है इसमें सदेह नहीं। किन्तु जहाँ तक इन बातों का सम्बन्ध है जीवनी-लेखक और जीवनी के पाठक दोनों को पर्याप्त सतक रहना चाहिए।

जीवनी का सम्बन्ध हिस्ट्रियोग्राफी से है। अतः जीवनी लेखक के लिए आवश्यक है कि उसे तत्कालीन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का पूरा-पूरा बोध हो। इतिहासकार जिन प्रकार तथ्या का अनुसंधान तथा उसकी प्रामाणिकता की जांच करता है, उसी प्रकार जीवनी लेखक भी कलाकार की डायरी, जनन पत्र, स्मरण लेखन आदि की दाम्त्विकता का परखता है। उचित मद्दम में उनकर जीवनी को प्रामाणिक और रोचक बनाता है।

किन्तु जीवनी लेखक का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य होता है जीवनी की पुनरचना करना। डायरी पत्र आदि को अपेक्षित सद्मों में रख देना एक बात है और उनकी महामता में पुनरचना दूसरी बात। यह पुनरचना जीवनी को साहित्य की कोटि देती है। ममप्रत विचार करने पर कलम का सिपाही में प्रेमचंद की जीवनी का पुनर्निर्माण हुआ है यद्यपि कुछ चीजों को औचित्यपूर्ण सद्म नहीं मिल सका है।

पर, प्रेमचंद न डायरी लिखते थे, न जनल। इसलिए लेखक ने पत्रों, स्मरणों और उनका लेखन का उपयोग जीवनी के लिए किया है। प्रेमचंद का व्यक्तित्व निर्माण में उनके गाँव और गांधीवादी आंदोलन का विशेष योग है। इसलिए जीवनी की पृष्ठभूमि में तत्कालीन गांधीवादी आंदोलन (आन्तिकारी आंदोलन प्राप्ति भी) का इतिहास भी चलना रहता है। इस पृष्ठभूमि में जीवन चित्र की पूर्णता और प्रभावमयता बढ़ जाती है। पत्र में मनुष्य का निरन्तर निजी जीवन अभिव्यक्त होता है। इसके आधार पर साहित्यकार का मुख दुःख के शयन को पकड़ा जा सकता है उन स्थितियों को देखा जा सकता है जिनकी प्रतिक्रिया का

रूप में व क्षण पत्रबद्ध हुए हैं। इसमें प्रेमचंद के जीवन के कई पहलू उजागर हो रहे हैं। सम्मरणों को बहुत विचित्रनीय नहीं माना जाना चाहिए क्योंकि उनमें सम्मरण लेखक सम्मरणों की अपनी अपनी विवेकताओं और गौरव को प्रतिष्ठित करने लगता है। फिर भी सम्मरणों में प्रेमचंद को निचल सादगी और आदमियत का दर्ज़ा होता है। कुछ ऐसे भी हैं जो प्रगतिशीलता के लिए रहे गए हैं। इन समस्त बातों को अमृतराय ने प्रेमचंद के सम्पादकीय कहानियाँ तथा साहित्य आदि से मपुष्ट करने की कोशिश की है।

पृष्ठभूमि के रूप में जिस राजनीतिक उथल-पुथल का इतिहास लिखा गया है उसका समारंभ सन् १८५७ से होता है। कायस का १९१० का इतिहास लगभग चौदह पृष्ठों में प्रस्तुत किया गया है। आठवें अध्याय में अमृतराय ने लिखा है— या तो तिलक को अपना राजनीतिक गुरु मान लेने के बाद मन की दूसरी वृत्ति के रूप में गोखले का असर बहुत बाद तक शायद ताजिदगी बना रहा। गांधी और तिलक और गोखले का अद्भुत सम्बन्ध मिलता ही था। पर इसमें कोई संदेह नहीं कि गांधी जी ने दश प्रेम का पहला सबक गोखले से लिया। निगम का एक उद्धरण प्रस्तुत करते हुए अमृतराय ने प्रेमचंद का एक और रूप पेश किया है— 'प्रेमचंद का राजनीतिक भुकाव गरम दल की तरफ था—वह मिस्टर तिलक के तरफदार थे और मैं मिस्टर गोखले और सर फीरोजशाह मेहता का हामी था। हर वक्त यहम चलती थी, मगर दोनों अपनी जगह कायम रहे। छोटे-मोटे सुधारों को वह काफी न समझने थे और मिटो माल और माटंग्यू चेम्सफोर्ड स्कीम से आश्वस्त न थे। आगे चलकर अमृतराय ने उक्त स्पष्टतः गांधीवादी कहा है। एक और तिलक को राजनीतिक गुरु मानना दूसरी और ताजिदगी गोखले से प्रभावित होने रहना स्पष्टतः विरोधात्मक स्थिति है। इस अन्तर्विरोध को प्रेमचंद के सदम में नहीं देखा गया है। वहस करना और खुदीराम बोस की तस्वीर टाँग लेना किसी स्थिर वृत्ति के सूचक नहीं हो सकते हैं। इहू जीवन के आविष्ट क्षणों में सबद्ध किया जाना चाहिए। अमृतराय ने राजनीतिक आन्दोलन के अन्तर्विरोध का गांधी जी के व्यक्तित्व में समझित कर दिया, क्योंकि उनकी दृष्टि में गांधी जी के व्यक्तित्व में तिलक और गोखले के व्यक्तित्व का सम्बन्ध था। किसी के व्यक्तित्व को दो चार आदमियों के व्यक्तित्वों का सम्बन्ध बतला देना ऊपर-ऊपर से जितना सही लगता है भीतर-भीतर से उतना ही गलत है। किसी का व्यक्तित्व दूसरों में प्रभावित भले ही हो किन्तु होता है उसका अपना। यदि प्रेमचंद के अन्तर्विरोधों को तत्कालीन परिधि के परिप्रेक्ष्य में समझने की चेष्टा की गई होती तो उनका व्यक्तित्व अधिक सही मायने में प्रस्तुत हो

पाता।

जिसी भी लेखक की जीवनी और उसके लेखन का सम्बन्ध जटिल होता है। जीवनगत अनुभूतियाँ रचना प्रक्रिया में परिवर्तित हो जाती हैं। इसलिए रचना के मूल्यांकन के लिए जीवनगत तथ्य प्रायः उपयोगी नहीं होते, और यदि होते हैं तो आंशिक रूप से। रचना के आधार पर रचयिता को सब समय समझ लेने का दावा निरर्थक है। रचना के सरल व्यक्तित्व होने हैं जो भीतर बाहर से एक होते हैं। उह समझने के लिए एक सीमा तक रचनाओं का उपयोग है। रचनाओं द्वारा लेखक की विचारणा और चिंतन पर प्रकाश पड़ना स्वाभाविक है। परंतु लेखक के जीवन में घटी घटनाओं तथा रचनाओं में तात्त्विक बढाना छतरे से छाली नहीं है।

अमृतदास ने कभी रचनाओं में जीवन की घटनाओं को देखा है और कभी जीवन की घटनाओं में रचनाओं को ढूँढा है। प्रेमचंद की प्रारम्भिक रचनाओं में उनकी जिदगी की तलाश की गई है, वह सबथा श्रीचिंत्यपूर्ण है। 'चोरी' नामक कहानी उनके बचपन व नटखट पक्ष को उदघाटित करती है। किंतु 'प्रेमाश्रम' के मनोहर की कथा को प्रेमचंद के गुरो की खिलाडी टीम पर हल्का बोलन से जोड़ देना जबरदस्ती है। मनाहर किमान के मरजाद की रक्षा का संकल्प लेता है। प्रेमचंद ने उस देत में हिंदुस्तानी के मरजाद की रक्षा का संकल्प लिया था। देश की अहिंसक समर यात्रा में मनुष्य का परम धर्म को जोड़ना निहायत धेतुका है। इस कहानी का हवाला देने के पूर्व लेखक ने लिखा है—'देश अहिंसक समर यात्रा के लिए निवृत्त रहा था। लेकिन इस समय भी कुछ लोग ऐसे हैं या हम सबके भीतर कोई एक जीव ऐसा है जिसे केवल पट की चिंता है। उसकी मरम्मत करने की ज़रूरत है और मुग्गी जी ने पट्टी गिरोमणि पण्डित माटराम शास्त्री को अपन तीर का निगाना बनाने हुए एक मजे का चूटकुटा लिया— मनुष्य का परम धर्म। कहना न होगा कि अहिंसा सधाम और इस चूटकुल में कोई साम्य नहीं है।

हर रचना को किसी आंदोलन का पूर्व या पश्चात रूप मान लेना न तो रचना के माप-माप कर पाता है न रचनाकार के साथ और न आंदोलन के साथ। पक्ष परमेश्वर की चर्चा करते हुए लेखक उस कचहरिया का बहिष्कार करने वाले गांधीवादी आंदोलन का पूर्व रूप मानता है— उसी पचायत का अभिप्रेत मुग्गी जी की इस सुन्दर कहानी में है। 'उसी गढ़ को मैं रक्षाकित करना चाहूँगा। उसी गढ़ पर जो बल दिया गया है वह कितना गर मीजू है

इस पंच परमेश्वर का प्रत्येक प्रबुद्ध पाठक समझ सकता है। कचहरिया म इसका कोई सम्यक नहीं है। इसमें इस दश की पचासत-परम्परा में प्रेरणा ली गई है और पंच को परमेश्वर की तरह याद करन वाला सिद्ध किया गया है। वस्तुतः यह कहानी इसी आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए लिखी गई थी। अपनी साम्प्रतिक विरासत को नजर आंदाज कर हर धर्म को किसी राजनीतिक आन्दोलन में जोड़ने का फल यही होता है।

किन्तु गतरज के खिलाड़ी का नया अयापन इस कहानी का प्रमत्त चरित्र समसामयिक परिवेश से प्रभावपूर्ण ढंग में जाड़ देता है। लेखक की टिप्पणा है—
नवाबी जमान की पस्ती क दौर की यह कहानी जो तिरसी जा रही है सितम्बर—अक्टूबर १९२४ में, जबकि भारतीय राजनीति भी ऐसी पस्ती के एक लम्बे दौर में गुजर रही है, जबकि लोगों में उसी तरह राजनीतिक भावा का अघ पतन हुआ गया है, सब अपने अपने खेल तमाशे में, राग रग में लिप्त है दश की विता किसी को नहीं है राजनीति शतरज की विसात होकर रह गयी है जिस पर सब लोग सारे दल और गिरोह अपनी अपनी चालें चतन में तग हुए हैं सिद्ध मुसलमान को नीचा दिगाना चाहना है मुसलमान हिन्दू का जब दना चाहता है। असेंबली में, म्युनिमिपलिटि में, महा-बहा सब जगह मीठा के लिए गाटिया बटायी जा रहा है नौकरिया के लिए छीना भपटी हा रही है—और कम्पनी बहादुर का गारी सलतनत का, शिजजा किस तरह कसता चला जा रहा है इसकी किसी का फिक्र ही नहीं। 'उहाँ पर उनकी किसी पुस्तक के आधार पर निष्कप निवालय की कोशिश की गई है वहाँ उनका व्यक्तित्व की निगपताओं को बटुन सूची के साथ उभारा गया है—' रगभूमि प्रेमचंद की आज तक की जीवन उपलब्धि का महाकाव्य है और उमम सूरदास ही प्रेमचंद है। वह एक आदर्श मत्याग्रही है लेकिन राजनीतिक आंदोलन के सीमित अर्थ में नहीं, जीवन की एक समग्र दृष्टि के व्यापक अभिप्राय में, और किसी के लिए न हो, प्रेमचंद के लिए सत्याग्रह का अभिप्राय यही है जीवन के कुछ सनातन मूल्य—दया, क्षमा, पराजकार, प्रेम, विनय '

पत्रों के माध्यम से प्रमत्त चरित्र के निजी जीवन के साथ साथ बहुत सा अन्य समस्याओं के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है। पढ़ने का उक्त कितना शौक था 'स एक सत में दक्षिण—' मैं मन्वजन माशा था वह आपन न भजा। कोई नाबन् गुन्दी बाजार में लिया हो तो वह भी बरन भेजिए। एक दूसरे सत में कितनी उतासी भरी है— जिन्दगी की उम्मीद यही भी कम है। मगर यह चाहता हूँ कि या तो साथ चरें या खोपीक सी तक्लीम आ-तालीर हा। मौत की फिक्र

मार डारती है। कितना चाहता हूँ कि परमात्मा पर भरासा रखू मगर दिल सूजी है समझता नहीं। किसी महात्मा की साहबत मित्रे तो रास्त पर आए। यही फिज़ है कि मैं आज मर जाऊँ तो इन बच्चा का पुरसाँ हाल कौन होगा।

यह तो हुई घरलू जिंदगी के बारे में उनकी चिन्ता। एक नवयुवक साहित्यकार को जो पत्र उहाने निराला है वह या ह— भाई यह सत्तर चुपक से राम भराम बठन के लिए नहीं है यहाँ भैंपू और मर जस शर्मा ने आदिमिया का गुजारा नहीं है। तुम अपने में यह ऐव न आन दो। हे भी नहीं। मैं तो बीडा दाम का नहीं हूँ। इसमें उनका सहज स्वभाव अभिव्यक्त हो उठा है।

जीवनी लेखक ने स्थान-स्थान पर प्रमचद के सम्बन्ध में लिख गये सम्मरणा का उपयोग किया है। सम्मरणा का चुनाव करने में सावधानी बरती गई है। फिर भी कुछ एस सम्मरण सन्निविष्ट हो गए हैं जो प्रदास्तमूत्रक लगते हैं। मौलवी अद्दुससत्तर तो अपने सम्मरण में गायी प्रमचद को अच्छाई का प्रमाण पत्र दे रहे हैं। मृत्यु गया पर पड़ प्रमचद के सम्बन्ध में जो सम्मरण इस पुस्तक में सगृहीत किए गए हैं वे अत्यंत मार्मिक हैं। इनमें भी निराला द्वारा लिख गए सम्मरणों का विशेष महत्त्व है। भारत में उहाने निराला था— हिंदी के युग

तर साहित्य के सबश्रष्ट रत्न अतप्रातीय ख्याति के हिंदी के प्रथम साहित्यिक प्रतिकू परिस्थितियों में निर्भीक वीर की तरह उठने वान उपयास समार के एकछत्र सम्राट रचना प्रतियोगिता में विद्वक अधिक से अधिक लिखने वान मनीषियों के समवक्ष आदग्णोय श्रीमान् प्रमचद जी आज महाव्याधि से प्रस्त होकर शैयाशायी हैं। कितने दुःख की बात है हिंदी के जिन पत्रों में हम राजनीति नेताओं के मामूली बुतार का तापमान प्रतिदिन पलते रहते हैं उनमें श्री प्रमचद जी की हिंदी का महान् उपकार करने वाले प्रमचद जी की अवस्था की साप्ताहिक खबर भी हम पढ़ने को नहीं मिलती। दुःख नहीं। यह उज्जा की बात है हिंदी भाषियों के लिए मर जाने की बात है। उहाने अपने साहित्यिक की एमी दगा नहीं होने दी कि वह हँसते हुए जीते और गानीवाँ दंत हुए मरते। यह क्या आन भी सच नहीं है? निराला के दिवगत हो जान पर बजारे आज़म का मौन रह जाना स्वयं में कितना बड़ा व्यग्य है। निराला को इस स्थिति का पहले ही में एहसास था— प्रमचद को न ता मगनाप्रसाद पारितो विव मितान न वाई अभिनदन। व हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति भी नहीं चुन गए। मन न कहा—तुम्हारे लिए भी यही फसना है जिसने जसा किया वसा पाया अग्न कुठ वाम कर मका तो नाम-यश मुझ नहीं चाहिए।

किसी भी विषय पर प्रमचद की राय स्पष्ट दोरूँ और आन मायन में

सहा हाथी थी। हिन्दी-उर्दू के सम्बन्ध में जहाँ कहीं उन्होंने अपनी राम जाहिर की है वह अब भी सही है। अपनी जातीय जवान की सबसे बड़ी स्कावट का जन्म करत हुए उन्होंने बताया है— 'इस कौमी जवान के रास्ते में सबसे बड़ी स्कावट अश्लील है उसका बन्ना हुआ प्रचार और हममें आत्म सम्मान की वह कमी जो युत्तामी की गम को नहीं महसूस करती।' आज भी शिक्षा आयाग के प्रतिवन्दना में वह बार-बार दिवाई दे रही है। बम्बईया फिल्मों पर की गई उनका विपणन इस जमाने में भी ताजा लगती है।

साहित्यकारों के लिए एक जरूरी बात यह भी है कि वे नई प्रतिभा का पड़चानें और उनके विकास में अर्पित शक्ति दें। बनारसीदास चतुर्वेदी के एक प्रश्न भविष्य किनका है? का उत्तर देते हुए उन्होंने लिखा है—

वह कभी-कभी मुँदरे गल्प लिख जाते हैं जो हमें लागा स नहीं बन पड़ती। हमारी जीत अम्यास में है। नवीनता और विचित्रता उनके साथ है।' इस मद्दे में जनद्र के निमाण में प्रेमचंद का योग स्मरणीय रहेगा। बालचन्द्र सिंह की नई कहानी पढ़कर मुँगी जी ने लिखा था— 'चाँद में आपकी कहानी पढ़कर बड़ा आनन्द आया। मैं आपकी पण्डई में विघ्न तो नहीं डालना चाहता लेकिन कभी-कभी कुछ लिखा करें ता एहमान समझूँगा। यह पत्र बी० ए० के छात्र को लिखा गया था। इससे जाहिर है कि नई पीढ़ी को मीचने के उम विवसित करने में प्रेमचंद को तितनी खुशी होती थी।

प्रेमचंद की आलोचनात्मक पकड़ के दा नमून देगिए— 'हिन्दी में गल्प साहित्य अभी अत्यन्त प्रारम्भिक दशा में है। कहानी लिखने वाला में मुत्तान कौशिक, जनद्र कुमार, उग्र, प्रसाद राजेश्वरी यही नजर आते हैं। मुत्तानेन्द्र और उग्र में मौलिकता और बाहुल्य के चिह्न मिलते हैं। प्रसाद जी की कहानियाँ भावार्थक होती हैं रियलिस्टिक नहीं। राजेश्वरी अच्छा लिखते हैं मगर बहुत कम। मुदशन जी की रचनाएँ सुन्दर होती हैं पर गहराई नहीं होती और कौशिक जी बात को बेजोरत बड़ा देते हैं।' नाटक के सम्बन्ध में उनके विचार हैं— 'नाटककार हमारे पास बहुत ही कम हैं। रोमांटिक स्कूल के प्रसाद हैं बुद्धिवादी स्कूल के पी० लक्ष्मीनारायण मिश्र, हाय्यरम के श्री जी० पी० श्रीवास्तव हैं। इस क्षेत्र में सबसे नए भुवनेश्वर हैं जिनके एकाकी नाटकों का संग्रह बारखा अभी हाल में ही प्रकाशित हुआ है। मेरी समझ में भुवनेश्वर सबसे अधिक प्रतिभासम्पन्न हैं दात एक ही है कि वह अपनी प्रतिभा को आलस्य, खयाली पुनाव पचाने सिगरेट फूँकने इन्कबाजी के चक्कर में खरबाद न कर दें। उनके पास अभिव्यक्ति की अमाधारण शक्ति है। "छोटे छोटे वाक्या में कहानीकारों की

शक्ति और नीचा के बारे में प्रेमचंद ने जो कुछ कहा है वह उनकी पनी दृष्टि और अचूक पकड़ का द्योतक है। भुवनेश्वर के सम्बंध में उनके विचार बिलकुल सगत और तलमपर्शी हैं। कारवाँ की तीखी अभिव्यक्ति के सम्बंध में दो मत नहीं हैं। इस प्रेमचंद ने बहुत पहले समझा था। यहाँ उनकी साहित्यिक समझदारी का ठोस प्रमाण है।

व साहित्य में सास लत थे, उसी में जीत थे। साहित्य उनकी जिंदगी थी और उनकी जिंदगी साहित्य। दोनों में कोई भेद नहीं था। निरंतर लिखत रहना साहित्यिक समस्याओं से जूझने रहना उनका दैनंदिन पापार था। उनकी दृष्टि में शुद्ध साहित्य का महत्व नहीं था। वह जीवन से अपृथक है। उन्होंने समय पर राजनीति में समस्याओं के बारे में भी अपने गम्भीर विचार व्यक्त किए हैं जिन्हें जागरण और हंस की टिप्पणियों में देखा जा सकता है। 'हंस और जागरण का प्रवाण उनका अटूट साहित्यिक निष्ठा का द्योतक है। 'हंस और जागरण का प्रवाण उनका अटूट साहित्यिक निष्ठा का द्योतक है। बट सिल कर पर चल रहा था। उस पर जमानत पर जमानत लग रही थी। सरकारी आना की प्रतीक्षा थी। फिर भी जागरण के निकालने का लोभ वे सवरण नहीं कर सकें— इस बीच मैंने जागरण' को ले लिया है। जागरण के बारह अक्ष निकले लेकिन ग्राह्य मर्यादा दो सौ स आगे नहीं बढ़ी। विनापन तो ध्यास जी ने बहुत किया लेकिन किसी वजह से पत्र न चला। अक्ष वह बढ़ करी जा रहे थे। मुझमें बाल यदि आप इसे निकालना चाहें तो निवाँ। मैंने उसे ले लिया। हंस में कई हजार का घाटा उठा चुका हूँ। लेकिन साप्ताहिक के प्रलोभन को न रोक सका। वाशिग कर रहा हूँ कि सब साधारण के अनुकूल पत्र हो। इसमें हजारों का घाटा ही होगा पर वह मुझ ही खूँ ह। दूसरे दब्बों में वह तो वह सकते हैं जागरण के उद्देश्य के सम्बंध में प्रेमचंद ने जो कुछ लिखा है वह बारा वि. वह मुँगी जी की आंतरिक विवकता थी ठीक वसी ही जमी नेख के सबध में थी—

वह निर्भीक हागा पर दुस्साहसी नहीं। वह सत्यवादी हागा सत्य से जो भर न टलेगा पर पक्षपात से अपना दामन बचायगा। वह बूढ़ा म बूढ़ा, जवानों में जवान और बालक में बालक होगा। वह जिस दृष्टता से पाय का पक्ष लेगा, उतनी ही दृष्टता में अपाय का विरोध करेगा। वह राजा की ओर से हाँ समाज की ओर से हाँ अथवा धर्म का धार स। समाज का दुली और दुबल भग उम मंग अपनी बकानत करते हुए पायगा। वह बीरा पायवादी,

गम्भीर और गुप्त न रहगा। वह मनुष्य बवल आधा ही जिन्दा है जो कभी दिल खोलकर नहीं हँसता वह हँसन की बातें कहगा, खुद हँसगा दूसरा को हँसाएगा।"

इस उद्घोष में तीन बातें द्रष्टव्य हैं। अयाय क मोत क्या है?—राजा, समाज और धर्म। उस समय का राजा कितना 'यायी था, यह किसी में छिपा नहीं है। राजा ने प्रेमचन्द का अभिप्राय बिलकुल साफ है। समाज भी कम अयाय नहीं कर रहा था। स्त्रियों के साथ, विधवाओं के साथ समाज क अयाय की बात सबविदित थी। महाजनी समाज और जमींदारों का जल्पा जनता का खून चूस रहा था। धर्म के नाम पर अत्याचारों का भीमा नहीं थी। प्रेमचन्द ने जीवन भर इन अयायों का विरोध किया। उनका सम्पूर्ण लेखन इनके विरुद्ध तड़ाई नहीं तो और क्या है? उक्त घोषणा में स्पष्ट कहा गया है कि 'समाज का दुखी और दुबल अंग उसे सदा अपनी बकालत करता हुआ पायगा। बन्तुत इसा उद्देश्य का लेकर 'जागरण' का प्रकाशन हुआ था। व जनता के आत्मीय दुखी जनता क। यही उनका धर्म था यही उनका साहित्य था, यही उनका विचार था। जन जीवन में अतग करक उह नहीं ग्या जा सकता।

अमृतराय ने इस जीवनी में प्रेमचन्द को उनके पूरे परिवर्ग में रखने की कोशिश की है। जहाँ तक हो सका है लेखक ने पूरा तटस्थता धरती है। इस तटस्थता का जगह-जगह उसकी टिप्पणियाँ में दगा जा सकता है। जब पुत्र पिता की जीवनी लिख रहा हो तो यह काम और भी जोखिम का हा जाता है। लेकिन कुल मिलाकर लेखक ने जिस तटस्थता का परिचय दिया है वह इलाध्य है। हार की जीत कहानी पर उसकी टिप्पणी द्रष्टव्य है—' कहानी कमजोर है आदर्शवादी ढंग से उसका समापन होना है। मुसीबी के कोप में त्याग और सेवा प्रेम क ही पर्यायवाची शब्द हैं। इससे ज्यादा वह कुछ नहीं जानते न उहान जानने का वागिश की। वह गली उनक लिए अनजानी है।

या प्रेमचन्द का सही अर्थ में चित्रित करने के लिए जिस राजनीतिक परिवर्ग की लिखा गया है वह उल्लसत से उगादा विस्तृत हो गया है। उसक स्थान पर साहित्य से सम्बद्ध जीवन विस्तार अधिक सगत प्रतीत होता। फिर भी हिंदी में इतने धर्म से लिखी गई प्रामाणिक जीवनी यह अकली है।

भापा और गैली तो लेखक को प्रेमचन्द से विरासत में मिली है। सारी जीवनी अद्भुत प्रवाहमयता से युक्त है। यह लेखक का महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। जीवनी-साहित्य के लिए उसने भापा का नया आदर्श प्रस्तुत किया है।

भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास · भारतीय राष्ट्रवाद का रोमांचक सत्य

भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का यह इतिहास आज स लगभग छब्बीस वर्ष पहले लिखा गया था । पर तु उस वकत यह पुस्तक छपत ही जल्द कर ली गई थी । इसके बाद यह सन् १९६० मे श्री बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा संपादित 'हिंदी प्रेममाला' के चौथे पुष्प के रूप में प्रकाशित हुई है । यद्यपि कहने को तो यह पुस्तक का दूसरा संस्करण है पर तु जहां तक हिंदी-जगत का सम्बन्ध है, उससे सामने यह पुस्तक पहली ही बार आई है । यह पुस्तक एक ऐसे विषय को छूती है जिसके बारे में हिंदी ही क्या भारत की अन्य क्षेत्रीय भाषाओं और अंग्रेजी में भी बहुत कम सामग्री उपलब्ध है । पर तु इसमें भी महत्वपूर्ण बात यह है कि यह पुस्तक एक ऐसे लेखक द्वारा लिखी गई है जो न केवल हिंदी का उच्च कोटि का लेखक और पत्रकार है बल्कि जिनकी जवानी क्रांतिकारी आन्दोलन में बाध करत होती है और जिन्होंने बरसात तक काकोरी पड़ोस वस के कंदी के रूप में ब्रिटिश सरकार की जेल यातना मही है । श्री ममयनाथ गुप्त को एक और भी विशेष सुविधा प्राप्त है जो क्रांतिकारी आन्दोलन में खपन वाले अन्य बहुत-से वीरों को नहीं थी । श्री गुप्त बंगाली हैं और उत्तरप्रदेश के सांस्कृतिक गढ़ काशी के निवासी हैं । उनका जीवन काशी और इलाहाबाद की जेलों में बीता है । इसलिए एक और जहां व क्रांतिकारी आन्दोलन व बड़े-बड़े उत्तरभारतीय नेताओं जैसे श्री चन्द्रशेखर आज़ाद और श्री भगतसिंह आदि, व सम्पर्क में आए तो दूसरी ओर उनका सम्बन्ध बंगाल के क्रांतिकारियों में भी रहा है और उन्होंने बंगाल के क्रांतिकारी आन्दोलन का बड़ा सूक्ष्म अध्ययन किया है । इस दृष्टि में भारतीय आन्दोलन का यह इतिहास एक अत्यंत

प्रामाणिक और समीक्षात्मक इतिहास बन जाता है।

प्रस्तुत पुस्तक को एक और बड़ी भारी विशेषता है। प्रांतिकारी आंदोलन से उस आंदोलन का अर्थ समझा जाता है जो श्री खुदीराम दास की फासी से लेकर सरदार भगतसिंह की फासी अथवा अमर शहीद चंद्रशेखर आज़ाद की शहान्त के काल के बीच में हुआ। परंतु श्री ममयनाथ गुप्त ने सन् १९४२ के विद्रोह से आज़ाद हिंद फौज के कायकलाप को तथा फरवरी, १९४६ के भारतीय नौसना के विद्रोह को भी इस पुस्तक में सम्मिलित कर लिया है। इस प्रकार भारत में १७६५ से लेकर १९४६ तक जिनसे प्रांतिकारी आंदोलन हुए उनका सवागौण इतिहास हमको एक स्थान पर मिल जाता है। इस पुस्तक का एक बहुत बड़ा भाग बिल्कुल ही नया रखा गया है—सन् १९४२ के विद्रोह तथा उसके बाद का हिस्सा जिस लक्षक ने लगभग २०० पृष्ठों में पूरा किया है। इस दृष्टि से 'भारतीय प्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास' का यह संस्करण वास्तव में नितान्त नई रचना है।

भारतीय नान्ति के सम्बन्ध में इस दश में बहुत ही गलत धारणा है। ऐसा कथाल किया जाता है कि बंगाल, पंजाब और उत्तरप्रदेश के कुछ छुटपुट दशभक्ता न देशप्रेम के आवेग में आकर कुछ अंग्रेजों की हत्या की अथवा डाकजनी व लूट की कुछ घटनाएँ का। बड़े बड़े जागरूक व्यक्ति भी भारत के स्वतंत्रता-संग्राम में इन प्रांतिकारियों के सही योगदान से या उनके काम के माप को ठीक तरह से नहीं समझते। स्वयं प्रांतिकारियों ने अपनी काम इतना गुप्त रखा कि जनता को उसका ठीक ठीक पता न था। दूसरे यदि कभी कोई चीज लिखी भी गई या प्रकाश में आई तो ब्रिटिश सरकार ने तुरंत उसको जप्त कर लिया। ब्रिटिश शासन की मर्यादा के पश्चात् अत्यंत ऐसा वातावरण आया था जबकि हम इतिहास को जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया जा सकता था परन्तु उस समय हमारे राजनायकों पर और जनमत के अर्थ अवयवों पर गांधी जी की अहिंसा का कुछ ऐसा जादू चढ़ा था कि वे यह समझने लगे कि भारत यदि स्वतंत्र हुआ है तो अपने अहिंसात्मक आंदोलन के कारण। गांधी जी के अर्थ आंदोलन कितने ही अहिंसात्मक क्या न रहे हों सन् १९४२ का आंदोलन केवल हिंसात्मक आंदोलन नहीं था प्रांतिकारी आंदोलन भी था। यदि वह सत्काल सफलता नहीं प्राप्त कर सका तो उसका कारण केवल यही था कि जनता को नान्ति के लिए आह्वान ता द दिया गया पर कोई कायक्रम नहीं दिया गया। जनता ने जो कुछ किया अपनी स्वेच्छा से किया, और जो किया गया उसका ब्रिटिश शासन के ऊपर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा।

अभी हाल ही में भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने एक पत्रकार सम्मेलन में कहा था कि हम लोगों का जीवन बहुत मुलायम रहा है। हम आंग और नरक के बीच में होकर नहीं गुजरे हैं, जो एक देश के विकास के लिए आवश्यक है। सम्भवतः उनका यह वक्तव्य इसी कारण था कि उनको इस बात का सही नहीं आया ही नहीं है कि भारत की आजादी के आंदोलन में भारत के कितने हजारों लाखों नर-नारियाँ ने नरक-कुण्ड की घोर मातनाएँ सही हैं, कितने लोग गोली के शिकार हुए हैं कितने फाँसी चढ़ा दिए गए। भारत की स्वतंत्रता के लिए कितने ही नवयुवकों ने, जो भारत में ही नहीं विदेशों में उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे थे या व्यापार में लगे हुए अतुल धनराशि कमा रहे थे देश में शक्ति लाने के लिए अपना सब कुछ छोड़ दिया था।

हम श्री गुप्त के अत्यंत कृतज्ञ हैं कि उन्होंने हम बताया है कि प्रथम महायुद्ध के समय विदेशों में जर्मनी में, अमरीका में, अफगानिस्तान में ईरान में, थाईलैंड में, इण्डोनेशिया में और जापान में भारत के शक्तिकारी बंधन रहे थे और किस प्रकार उन्होंने एक दिन सार भारत में सैनिक विद्रोह करने का अनुष्ठान किया था। किस तरह से यह प्रयास भारतीय विश्वासघातियों, मुखबिरों, भेदियों और कमजोर सहयोगियों के कारण असफल हो गया और किस प्रकार हजारों व्यक्तियों को दण्ड भुगतना पड़ा इसका भी अत्यंत रोचक इतिहास इस पुस्तक में है।

इस पुस्तक में इतिहास का प्रामाणिकता है और उपन्यास की रोचकता। इस दृष्टि से यह पुस्तक हिंदी जगत का एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है जो पचास साल तक याद रहेगा। यदि हम तुलना ही करना चाहें तो केवल एक अन्य ग्रंथ है जो इसकी बराबरी में रखा जा सकता है। वह ग्रंथ है श्री शचींद्रनाथ सायल का 'बंदी जीवन'। यह लगभग चालीस वर्ष पहले प्रकाशित हुआ था। परंतु यह मूलतः बंगाल के शक्तिकारियों की गतिविधियों पर विशेष प्रकाश डालता है। इसका विवरण मुख्यतया सन् १९२२ तक की घटनाओं तक ही सीमित था। द्वितीय संस्करण में, जो सन् १९३८ में प्रकाशित हुआ, श्री सायल ने कुछ संशोधन भी किए। परंतु यह पुस्तक मुख्यतया उनकी आत्मकथा था जिसके परिप्रेक्ष्य में शक्तिकारी जीवन और गतिविधियों का परिचय दिया गया था। श्री मधुनाथ गुप्त की पुस्तक की यह विशेषता है कि वह आत्मचरित नहीं है बल्कि विगुह इतिहास है। हा उसकी गौली में प्रमुख ही रामाचक्रता है। श्री मधुनाथ गुप्त कभी-कभी तो इनके अधिक ऐतिहासिक हो गए हैं कि हमें कुछ खटना भी। बाकीरी केम के सिलसिले में उन्होंने एक जगह लिखा है

'काकोरी ट्रेन डकती'—ममथनाथ ने इसका जो वर्णन लिखा है वह या है। हमारी समझ में यह तटस्थता नहीं आई। हो सकता है कि काकोरी ट्रेन डकती का यह वह विवरण हो जो डकती के छोटे दिन बाद ही किसी समाचार पत्र में श्री ममथनाथ ने लिखा हो और उन्होंने उसे यहाँ उद्धृत कर दिया है। पर जिस पुस्तक के वे स्वयं ही लेखक हैं और इस विषय पर लिख रहे हैं तो 'ममथनाथ' नाम का उल्लेख कर इस प्रकार वर्णन करना अपनी तटस्थता दिखाने के लिए एक औपचारिकता मात्र ही है। हमारी समझ में तो यदि गुप्त जी इसको सीधे इसी प्रकार लिखत कि 'काकोरी ट्रेन डकती की घटना इस प्रकार थी या मैंने घटना के तुरन्त पश्चात् यह लिखा था' तो पुस्तक की ऐतिहासिक प्रामाणिकता में कोई कमी नहीं होती। यह ठीक है कि इतिहासकार वह व्यक्ति होता है जो घटना में दूर होता है और इसलिए वह प्रत्येक वस्तु का वस्तुवादी दृष्टिकोण से देखता है। श्री ममथनाथ उस घटना से इतने सम्बद्ध थे कि वह कितना ही प्रयत्न क्यों न करें उनके विवरण में अथ यत्निमा का तो यह कहना का अवसर हो ही सकता है कि इनका इस घटना से निकट सम्बन्ध था। परन्तु इस बात को मानत हुए भी यह कहना पडगा कि लेखक ने अपनी भावनाओं को दबाकर, जहाँ तक बना है ऐतिहासिक दृष्टि से इस पुस्तक के तथ्यों की प्रामाणिकता दी है।

इस पुस्तक में कुल ४८ अध्याय हैं। पुस्तक डबल फ़ाउन्ड साइज का ५३६ पृष्ठों में छपी है। पुस्तक का अध्यायों की सूची ही उसकी व्यापकता का प्रमाण होती है। यह इस प्रकार है

१-क्रान्तिकारी आन्दोलन का सूत्रपात २-बंगाल में क्रांति का प्रारम्भ ३-दिल्ली और पंजाब में क्रांतिकारी लहरें और गदर पार्टी, ४-दिल्ली पटमंत्र के बाद, ५-उत्तरप्रदेश में क्रांतिकारों का दालन, ६-मनपुरी पडयंत्र, ७-लडाई के समय विदेश में भारत के क्रांतिकारी ८-बिहार उड़ीसा में क्रांतिकारी हलचल, ९-बर्मा और सिंगापुर में क्रांतिकारी लहरें, १०-मद्रास में क्रांतिकारी आन्दोलन ११-मध्यप्रान्त का क्रांतिकारी आन्दोलन, १२-मुसलमान क्रांतिकारी दल, १३-क्रान्तिकारी समितियों का संगठन तथा नीति १४-प्राक् असहयोग युग का परिशिष्ट १५-असहयोग का युग, १६-असहयोगोत्तर क्रांतिकारी आन्दोलन, १७-काकोरी पडयंत्र १८-काकोरी के समसामयिक पडयंत्र १९-लाहौर पडयंत्र और सरदार भगतसिंह, २०-जेलों में साम्राज्यवाद का विरुद्ध युद्ध, २१-प्रथम लाहौर पडयंत्र के बाद २२-चटगाव शस्त्रागार काड तथा उसके बाद की घटनाएँ, २३-बंगाल में आतंकवाद का उग्र रूप, २४-अय

प्राप्तो म क्या हो रहा था, २५-जगल की कुछ क्रांतिकारिणिया, २६-धारा वा
 अत २७-द्वितीय महायुद्ध और भारत, २८-प्रगस्त क्रांति का जन्म, २९-
 बम्बई ने क्रांति का विगुल पूका, ३०-उत्तर प्रदेश म क्रांति, ३१-उत्तरप्रदेश
 व निना का इतिहास ३२-आसाम क्रांति की गिरफ्त म ३३-जगल म अगस्त
 क्रांति ३४-उड़ीसा मे आन्दोलन ३५-बिहार मे क्रांति ३६-मयप्रात का
 आन्दोलन ३७-दिल्ली मे कुछ आन्दोलन ३८-राज्य और सीमा प्रात का
 आन्दोलन ३९-गुजरात सिव, काठियावाड, ४०-महाराष्ट्र और कनाटक,
 ४१-प्राध केरल तामिलनाड दक्षिण के राज्य, ४२-फुटकर स्पानो का
 आन्दोलन ४३-१९४२ और कम्युनिस्ट पार्टी ४४-प्रगस्त क्रांति मे सिव्यो
 का बलिदान ४५-जेलो मे अगस्त-विद्रोह पर अत्याचार, ४६-१९४२ की क्रांति
 पर एक रोशनी, ४७-प्राजाद हिंद फौज, ४८-नवम्बर प्रदान, फरवरी प्रदान
 नौ-सैनिक विद्रोह।

उपयुक्त सूची को देखने मे ही पता लगता है कि भारत का क्रांतिकारी
 आन्दोलन कितना पुराना है तथा कितना सव्यापी रहा। इस क्रांतिकारी
 आन्दोलन की एक बड़ी भारी विशेषता यह रही है कि इतने हिन्दू और मुसलमान
 दोना ने बडे मनोयोग के साथ सहयोग किया और साथ ही साथ पासी के तस्तो
 पर भले या गोराराही की गोलियों का झंकार हुए। लेखक ने तो यही बताया
 है कि भारत म सशस्त्र क्रांति के प्रारम्भ मे ही हिन्दू और मुसलमान साथ थे।
 पुस्तक के प्रारम्भ म ही बताया गया है कि १७६५ म ३ सितम्बर को बंगाल सेना
 के १५वें बटालियन को हुकम दिया गया कि वह फौरन तमलुक खाना हो जाए
 जहा पर फ्रेंच नौसेना से लडने के लिए जहाज तयार थे। ब्रिटिश सरकार उस समय
 नेपालियन के साथ युद्ध म रत थी और उसकी पराजय होती जा रही थी। उस
 समय इस सेना ने जहाजो पर चढन मे इन्कार कर दिया। इस बटालियन को
 तोड दिया गया। बोटमाल ने विद्रोहियों के नेता रघुनाथ सिंह उमराव गिरि
 कर दिया गया। बोटमाल ने विद्रोहियों के नेता रघुनाथ सिंह उमराव गिरि
 और घूसुप खा को तोप के मुह पर बाध कर उडा दिया। इस बटालियन को
 बरखास्त कर दिया गया। इसके बाद १८०६ म मद्रास के वेल्लोर स्थान मे मद्रास
 सेना के देशी सैनिको ने विद्रोह कर दिया। यह विद्रोह बहुत व्यापक था और
 लान बिलियम बटिक जैसे गवर्नर जनरल को इसके कारण अपनी नौकरी मे
 हाथ धोना पडा। लाड बटिक न बहा था कि क्यों से मुसलमानो मे जो विद्रोह
 की आग भडक रही थी, यह उसका परिणाम था। परन्तु लेखक के अनुसार यह
 विद्रोह, नदी दुग आदि ऐसे स्थानो मे फैल गया था जहा पर हिन्दू सेना थी और

हिन्दू और मुसलमान दोनों न सम्मिलित होकर ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह किया था। इसके बाद सन् १८५५ में २१ सितम्बर को निजाम की फौज की तृतीय घुड़सवार सेना ने अपने अग्रेज अफसरों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह के नेता मुसलमान थे। लेकिन न इसका पता बहावी आन्दोलन का जिम्मेदार है और बताया है कि किस प्रकार बरेली के रहने वाले सयद अहमद नामक एक मुसलमान ने भारतवर्ष में अंग्रेजों के विरुद्ध बहावी आन्दोलन का प्रचार किया। इस आन्दोलन को बंगाल के तीतू मिया ने स्वीकार कर लिया और बंगाल में तीतू मिया ने किसानों का संगठित कर अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलन चलाया। इसी तरह फरीदपुर के बहावी नेता गुरियतुन्ना तथा उनके पुत्र दूह मिया ने भी एक विद्रोही गिरोह खड़ा किया। लेकिन न यह आतंककारी मुसलमानों का भी जिम्मेदार है। उनके अनुसार पटना के अमीर खाँ को बंगाल के १८१८ के तीसरे रंगुलेशन के अनुसार नजरबंद कर दिया गया। उन पर 'याथाधीश नारमन की अदालत में मुकदमा चला और जब वह मुकदमा हार गए तो अब्दुल्ला नामक एक बहावी ने रात को नोरमन पर हमला किया जिसमें नोरमन मारा गया। उस अब्दुल्ला को फाँसी हुई। लेकिन कहा है कि १८७८ की ८ फरवरी को जिस समय लाड मया अडमान के दौर में थे, शेर अली नामक कदी न मार डाला यह गैर अली खबर घाटी का रहने वाला था और मामूली इतिहास में शेर अली को एक मामूली अपराधी के रूप में दिखाया जाता है। पर वह बहावी था और उसका उद्देश्य राजनीतिक था। कुछ भी हो यह कहा जा सकता है कि भारतवर्ष में आतंककारी आन्दोलन का सूत्रपात अब्दुल्ला और गरीबाली ने किया।

इस सम्बन्ध में हमका एक निवेदन करना है। लेकिन न बहुत ही पुराने तथा अपात तथ्यों का हिन्दी जगत के सम्मुख उपस्थित किया है परन्तु कभी कभी साधारण तथ्यों के सम्बन्ध में भयकर भूलें हो गई हैं। पहले निरता जा चुका था कि एक बहावी ने लाड मया की हत्या की। लेकिन 'सी पुस्तक के ३२वें पृष्ठ पर जब लाड मिया के ऊपर बम की चर्चा की गई तो एक वाक्य आता है "इतिहास के पाठकों को पता होगा कि यही लाड मिया जो आतंककारियों के बम से बचे थोड़े ही दिनों बाद अडमान का निरीक्षण करते हुए एक पठान कदी की छुरा में मारे गए।" कभी कभी इस प्रकार की भूलें बड़ी खटकती हैं। नाम की हा गलती नहीं थी। एक स्थान पर कोयम्बतूर के पास बरूर का जिक्र आया है। लेकिन थोड़ा दूर पर वह बरूर, बसूर हो गया। क्योंकि बसूर भी पंजाब का एक महत्वपूर्ण नगर है इसलिए इस प्रकार की गलती भ्रम पैदा कर सकती है और खटकती

है। प्रूफ की गलतियाँ कभी कभी बड़ा भयंकर रख ने गई हैं। उदाहरण के लिए अर्धमास्य २७ को देखिए। इसका शीर्षक है—“द्वितीय महायुद्ध और भारत”। इसमें एक पराग्राफ है—सबहारा श्रान्ति का भय। उसमें लिखा गया है “यदि जर्मनी में साम्राज्यवादी श्रान्ति होने दी जाती।’ इसी तरह और आगे लिखा है कि ‘जिन शक्तियों ने लड़ाई जीती थी वे ऐसी भूल बच होने दे सकने थे। वे तो रूस में साम्राज्यवादी राष्ट्र की स्थापना से ही बौगलाए हुए थे। स्पष्टतः यह प्रूफ की गलती है क्योंकि साम्राज्यवादी’ से अर्थ ‘समाजवादी ही हो सकता है और अगली पंक्ति में यह स्पष्ट भी हो गया है जबकि लिखा है कि ‘उन्होंने प्रथम महायुद्ध के बाद समाजवादी रूस पर एक साथ २१ तरफ से हमला किया। इसी तरह इटली में फासीवाद का उल्लेख करते हुए लिखा है कि साम्राज्यवादी इतने शक्तिशाली हो गए थे। यहाँ भी उनका मन्ना समाजवादियों से ही है। जो पुस्तक तथ्यों की दृष्टि से इतनी महत्वपूर्ण और प्रामाणिक हो उसमें इस प्रकार की गलतियाँ खटकती हैं और अगले संस्करण में उनका निराकरण अवश्य हो जाना चाहिए। ये ऐसी गलतियाँ हैं जिनसे अर्थ का अर्थ हो जाता है।

इस पुस्तक से हम को पता लगता है कि श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा तथा श्री विनायक दामोदर सावरकर किस प्रकार लंदन में ही भारतीय श्रान्तिकारी आंदोलन को संगठित करते रहे और अनेकों यवित्तियों को इस आंदोलन में निमग्न किया। चाफेवर बच्चुप्रो, सरदार सिंह राणा मदनलाल दीगरा मादाम कामा और वीरेन चट्टोपाध्याय जैसे भारत के अत्यंत मेधावी नवयुवकों और नवयुवतियों ने इंग्लैंड की शिक्षा दीक्षा के साथ भारत में सशस्त्र श्रान्ति का जो व्रत लिया उसकी गौरवपूर्ण गाथा हम इस पुस्तक में मिलती है। चूकि बंगाल, महाराष्ट्र और पंजाब के लोग पहले विदेशों में गए तो उन्होंने किस प्रकार बहा से देश की स्वतंत्रता प्राप्त करने का बीड़ा उठाया यह भी पुस्तक में बड़े विस्तार से और मनोरंजक ढंग से दिया हुआ है। लाला हरदयाल, श्री रासबिहारी बोस मास्टर भवध विहारी लाला दीनानाथ आदि के आत्मोत्सव की प्रेरणामयी कहानी इस पुस्तक में मिलेगी।

चंद्रशेखर आज़ाद भगतसिंह, शचीन्द्रनाथ सायान बन्हाई लाल, श्री राजेन लाहिड़ी, श्री रामप्रसाद बिस्मिल, श्री शचीन्द्रनाथ बरनी, अमर गहौड़ अशाफाकुल्ला, तथा देश की स्वतंत्रता की लड़ाई में जो सहयोग बलिदान हुए, उनकी यह एक कहानी है। इस पुस्तक से पता लगता है कि श्रान्तिकारी आंदोलन को, जिसमें सन् १९४२ का विद्रोह भी शामिल है दवाने के लिए ब्रिटिश सरकार ने कितने अत्याचार किए। किस प्रकार मिर्गापुर के हिंदुस्तानी सिपाहियों ने

सात दिन तक सपना विद्रोह किया, किस तरह जमनी स भारत म सगस्त्र क्रांति क लिए हथियार मगाए गए और किस प्रकार मुग़लबिरो के कारण भारत का सगस्त्र विद्रोह सफ़र नहीं हो सका—इस सपने को एक साथ एकत्रित करन क लिए श्री ममयनाथ गुप्त बघाई के पात्र हैं।

परन्तु कुछ ऐसे तथ्य भी हैं जो न जाने क्या गुप्त जी क हाथ स छूट गए। उगान बायमराय लाड हार्डिंग पर बम फेंके जान बानी घटना का उल्लेख किया है। उस सिलसिले म राजस्थान के प्रसिद्ध क्रांतिकारी श्री प्रतापसिंह बारहठ का कोई उल्लेख नहीं है। श्री बारहठ राजस्थान के मेवाड राज्य क एक बहुत बड़े जामीरदार क पुत्र थे। उन्होंने श्री गचीन्द्रनाथ सायान क साथ दिल्ली म क्रांतिकारी काय किया था। दिल्ली पडयत्र के सम्बन्ध म व पकडे भी गए थ और कुछ ही दिन बाद कोटा पन्थत्र क सिलसिले म उनके पिता सरदार केसरी सिंह को भ्राम्जम काले पानी की सजा हुई और उनके चाचा के नाम वारंट निकला। उन दोनों भाइया की सारी सम्पत्ति जब्त हो गई। प्रतापसिंह न अपने परिवार पर कष्ट-सहन का नान करने के बान भी जो वीरता दिखाई उसकी श्री गचीन्द्रनाथ सायान न बड़ी प्रशंसा की है। २२ बपकी उम्र मे ही बरेली जेन म उनका स्वगवास हो गया। राजस्थान म प्रताप क आत्मोत्सग न बडा उत्साह पैदा किया। परन्तु श्री ममयनाथ की पुस्तक म उनका कोई गौरवपूर्ण उल्लेख नहीं मिलता। हो सकता है कि इस प्रकार के श्रम भी कुछ मामले हो उनकी पूर्ति की आवश्यकता है।

श्री ममयनाथ गुप्त न क्रांतिकारी आंदोलन के प्रारम्भ पर एक गका की है। उन्होंने लिखा है कि श्री केगवचन्द्र सैन स्वामी दयानन्द रामकृष्ण परमहम तथा श्री विवेकानन्द ने देग म जो नवजागृति का बीज फूका उसने लोगो का आत्मविश्वास बढाया और इसी विचार ने राष्ट्रीयता की उम्र भावनाओ को जन्म दिया। परन्तु इनकी यह गिकायत है कि यह सब तो हुआ। पर साथ ही ये लोग हिन्दू थ इनकी भाषा हिन्दू थी इनके व्याख्यानो म एम दृष्टान्ता तथा एस युगों का उल्लेख रहता था, जिस हिन्दू ही समझ सकते थ। नतीजा यह हुआ कि इनकी वाणिया म पुष्ट होकर जो राष्ट्रीयता बनी उसका रूप बहुत कुछ हिन्दू हो गया। यह बहुत ही बुरा हुआ और यहीं स मानो जिन्ना की राज नीति के लिए गुनाइग पदा हो गई। श्री गुप्त के इस निष्कष म हम सहमत नहीं हैं। हम यह भा नहीं समझ पाए हैं कि उनकी भाषा किस प्रकार हिन्दू थी और उनके कौन-स एम दृष्टान्त थ जिस हिन्दुस्तान म रहने वाले मुसलमान नहीं समझ पाते थ। एक तरफ हम दखते हैं कि स्वामी विवेकानन्द के भाषणो

ने अमरीका और यूरोप तक क लोगो को भारतवर्ष की ओर आकर्षित किया और दूसरी तरफ कहा जाण कि उनके भाषण भारतवर्ष के मुसलमानो की समझ म नही आत थे तो यह बात कुछ गले नही बैठती । हम यह तो मान सकते है कि श्री दयानन्द ने इस्लाम पर जो आभेप किए उनके मानने वाला म तथा मुसलमानो म कुछ मनोमालिन्य होना स्वाभाविक था परंतु जहा नव मनातन धम या हिंदू मन्त्रदाया का सम्बन्ध था उसके साथ तो सभी धर्मो का बडी आसानी के साथ सहअस्तित्व सम्भव था । बहुत प्रारम्भ म गुप्त जी न ऐसा लिखा है पर जब उन्होंने धनन किया है तो साफ मानूम होता है कि मोलाना अबेदुल्ला बरकतउल्ला और अशफाकुल्ला जम मुसलमान फिर आतिकारी आन्दोलन म सम्मिलित रह है । साथ ही पञ्जाब के सिखा न जो गानदार बलिदान किया उसकी तो कहानी ही अलग है । हमारा तो ऐसा मत है कि जब तब और जब भारत का आन्दोलन आतिकारी रहा यानी जनता की शक्ति के बल पर विदेशी सत्ता को हटाने का प्रश्न आया तब-तब भारतीय आन्दोलन साम्प्रदायिकता से मुक्त रहा परंतु जब शक्ति और अहिंसा के नाम पर आन्दोलन म गतिहीनता आ गई तो साम्प्रदायिक शक्तिया न अपना सिर उभारा । श्री गुप्त जी भी इस प्रकार का एक सकेत देने है जब वह कहत है कि सन् १९०१ के असहयोग आन्दोलन म जो स्वामी श्रद्धानन्द खिलाफत पधियो का साथ दे रहे थे वही आन्दोलन क समाप्त होन पर शुद्धि का वाय करने लगे । इस दृष्टि से हम लेखक के इस मत से सहमत है कि सन् १९४० के विद्रोह म नताओ ने ठीक प्रकार के दिग्ग निर्देश नही दिए ।

विद्वान् लेखक ने इस बात का अच्छी तरह प्रकट किया है कि किस प्रकार आतिकारी आन्दोलन हिंदू पुनजागृति के रूप म प्रारम्भ होकर समाजवादी की ओर बढ़ता रहा । यह सरदार भगतसिंह ही थे जिन्होंने सत्रस पहले देण म इकलान जिंदाबाद और शक्ति चिरजीवी हो का नारा दिया और अपनी भारतीय गणतन्त्रात्मक स्वातन्त्र्य सना को समाजवादी सना का नाम दिया । यही नही सरदार भगतसिंह न अपने माधियो म किस प्रकार समाजवाद का प्रचार किया इसका भी बडा सुन्दर विवरण है ।

पुस्तक की छपाई के सम्बन्ध मे हम यही निवृत्त करना है कि यह पुस्तक के गौरव के अनुकूल नही है । प्रूफ की गतिया भयकर ह । छपाई और बटाई म सुधार की बहुत गुजाण है । छपाई ठीक नही हुई है । परंतु सबसे अधिक शिकायत हम इसकी जिल्दबन्दी से है । ५५० पृष्ठ की इस सुन्दर पुस्तक की बपटे की जिंदाबाद की ओर हम यदि चित्रा की मध्या

अधिक होती तो पुस्तक का आवरण बढ जाता । इन कमिया के बाद भी यह निर्विवाद है कि भारतीय प्रातिकारी आन्दोलन का इतिहास निम्नकर श्री ममथनाथ गुप्त ने भारतीय जनता की बहुत बडी सेवा की है । इस पुस्तक के लेखन के लिए हम उ हे, और शहीद ग्रथमाला के सम्पादन के लिए श्री बनारसीदास चतुर्वेदी को धन्यवाद दत है । हम यह भी आशा करत हैं कि पुस्तक म जो कमिया हैं व अगले संस्करण म दूर कर दी जाएगी ।



डॉ० रघुबीर का अंग्रेजी-हिन्दी पारिभाषिक शब्दकोश : भारतीय कोश-विज्ञान में युगान्तर

अंग्रेजी हिन्दी कोशों की परंपरा काफी पुरानी है। गत शताब्दी में प्रकाशित इस प्रकार के कोशों में फनन, ग्रियसन मथुराप्रसाद मिश्र आदि के कोश उल्लेखनीय हैं। सन् १८७६ में विलियम क्रुफ का ग्राम जीवन और कृषि के शब्द, सन् १८८८ में इलियट, विल्सन और रीड का आजमगढ़ ग्लामरी १८८५ में ग्रियसन का बिहार पजेंट लाफ (ग्राम जीवन), सन् १८८७ में पट्टिक कान्गो का कचहरी भूमि व्यवस्था दस्तकारी के शब्दों का और १८९७ में फलन और १८८४ में प्लाट के प्रसिद्ध शब्दकोश निकले। इनमें विविध काम धंधों के शब्दों का बहुत ही अच्छा संग्रह था और इस दृष्टि से ये पारिभाषिक शब्दों के सफलतापूर्वक बड़े महायक हो सकते हैं। पारिभाषिक या शास्त्रीय कोशों की रचना भी १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से शुरू हो गयी थी। प० सुधाकर द्विवेदी ने गणित और ज्यामिति और श्री नवीनचंद्र राय ने इजीनियरी विषय की अनेक पुस्तकें रची थीं जिनमें पारिभाषिक शब्दावली भी थी। काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने भी इस शताब्दी के दूसरे दशक में कृषि, भौतिकी, रसायन आदि विषयों के छोटे छोटे अंग्रेजी हिन्दी शब्दकोश प्रकाशित किए। प्रयाग में प० दयाशंकर दुब की अथर्गात्र शब्दावली भी इसी समय निकली। प्रयाग की विद्यालय परिषद ने भी वैज्ञानिक शब्दावली की रचना में योग दिया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आयुर्वेद के साथ आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की पढाई भी सन् १९२६ के करीब प्रारंभ हो चुकी थी और उसके लिए हिन्दी में पाठ्य पुस्तकें तैयार की गयी थीं, जिनमें पारिभाषिक शब्दों की भी रचना हुई।

२स शताब्दी के तीसरे दशक तक हिन्दी म विज्ञान, साहित्य और समाज विद्यामा पर काफी साहित्य प्रकाशित हो चुका था । मुल्कुल कागरी और काशी विद्यापीठ जसी राष्ट्रीय संस्थामा म हिन्दी के माध्यम से उच्च शिक्षा दी जा रही थी और इस हेतु अनेक विषयो पर हिन्दी म पुस्तकें तयार हो चुकी थी ।

अनेक देशी राज्यों म भी शासन का बहुत कुछ काम हिन्दी या देश भाषा म हो रहा था और उनकी ओर स भी पारिभाषिक शब्द रचना क प्रयत्न हुए थे । कश्मीर के महाराज रणवीर सिंह ने सना और शासन क शब्द संस्कृत से संकलित कराने का प्रयत्न किया था । दूसरी ओर हैदराबाद म निजाम ने अरबी फारसी के आधार पर उर्दू म पारिभाषिक शब्दा के संकलन का विंगाल आयोजन किया था । ग्वालियर आदि हिन्दू राज्यों म भी हिन्दी म याय और शासन का काम होता था, परन्तु ये शब्द अधिकांशत मुसलमानी शासन के समय से चले आए अरबी फारसी शब्द थे ।

या ता नागरी प्रचारिणी मभा क हिन्दी शब्द मागर म अय शब्दा क साध-साध पारिभाषिक शब्दा का भी संग्रह हो गया है, पर इस कौशल के प्रकाशन के बाद भी बहुत से शब्द चलन मे आए । इसलिए आवश्यकता ऐसे कौशल की थी, जिसम विषयवार या अकारादिप्रम संश्रेणी क पारिभाषिक शब्द और उनक हिन्दी पर्याय दिए ह। इस प्रकार के कुछ छोटे कौशल भी निकल जसे डा० सत्य प्रकाश का समाचार पत्र शब्दकौशल । किन्तु वृहत् अग्रजी हिन्दी पारिभाषिक कौशल की तयारी के उल्लेखनीय प्रयत्न थी मुखसपत राय भण्डारी, डा० रघुवीर म० प० राहुल साकृत्यायन और अब केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के ही हैं । इनम सबसे पहला नाम थी मुखसपत राय भण्डारी का है । प्राय अनेका प्रयत्न होने क नात भी थी भण्डारी का काम प्रशंसनीय है । उन्होंने पहली बार बडे पैमाने पर विभिन्न विषयो की अग्रजी हिन्दी पारिभाषिक शब्दावली का संकलन करन का उपक्रम किया था । उनके इस वृहत् २०वीं सदी इंग्लिश हिन्दी डिक्शनरी का प्रकाशन सन् १९३० म शुरु हो गया । इस कौशल की विघेपता यह है कि इसम नए शब्द गन्ने के साथ ही प्रचलित शब्दा का भी काफी संग्रह किया गया है और केवल अग्रजी शब्दा के हिन्दी पर्याय ही नहीं दिए गए हैं, बल्कि उनका अय भी समझाया गया है ।

डा० रघुवीर का काम सन् १९४२ म शुरू हुआ, परन्तु इसम गति स्वतंत्रता क बाद ही आई और स्वर्गीय श्री रविशंकर शुक्ल की प्रेरणा स मध्य प्रदेश सरकार ने इस काम म पूरी महायता दी । सन् १९४७ स ५४ तक साहित्यकी वाणिज्य अथशास्त्र तकशास्त्र सरल विज्ञान पदो-नामावली आदि अलग अलग

कोशा का और सन् १९५० म ग्रंट इंग्लिश इंडियन डिक्शनरी नामक ८० हजार शब्दों के बृहत् कोश का प्रकाशन हुआ। इसी कोश के परिवर्धित संस्करण बाद में निकले और अब भी परिवर्धन का काम चालू है।

डा० रघुबीर के इस काम के प्रकाशन के साथ ही हिंदी जगत में एक तूफान सा आ गया। उद्दान अंग्रेजी शब्दों के जो पर्याय गये वे अत्यंत क्लिष्ट और कृत्रिम और बोलचाल से दूर मान गये और रघुबीरों हिंदी दुर्बुद्ध और अप्रचलित संस्कृत शब्दों में बोधिल भाषा का पर्याय बन गयी। मजाक के लिए कण्ठ लगे और अग्निरेख-नामन आगमन मूचक-लाहाट्टिका (सिगनल) जस शब्द गढ़ गए उल्लेखनीय है कि डा० रघुबीर के कोश में ये शब्द नहीं हैं बल्कि उद्दाने कोश में भूमिका में स्पष्ट कहा है कि हिंदी पर्याय खाजन में यथासंभव छोट और एकदम शब्द दिए गए हैं बड़े समास नहीं। सिगनल के लिए उद्दान सजेत शब्द रखा है अग्निरेख लोहाट्टिका नहीं।

इसलिए डा० रघुबीर के काम का समीक्षा करने में पहले हम उनके मूल सिद्धान्त भी समझ लेने चाहिए। डा० रघुबीर न संस्कृत का अपने कोश के शब्द सकलन का आधार बनाया है। जिन विषयों का साहित्य उद्दाने संस्कृत प्राकृत व पाली में मिल सका उनका पारिभाषिक शब्द उद्दाने इस स्रोत में लिए। जहाँ एक शब्द से अर्थ शब्द बनाने की जरूरत थी वहाँ उद्दाने मूल संस्कृत शब्द या धातु को लेकर उसमें उपसर्ग और प्रत्यय लगाकर शब्द बनाए—जैसे 'ला के लिए विधि और ला से बनने वाले लीगल, लॉफुल, लेजिस्लेटिव आदि के लिए विधिवत वच, विधायी आदि शब्द बनाए। यहाँ यह आलोचना हो सकती है कि प्रचलित 'कानून' शब्द क्या नहीं लिया गया, दूसरे विधि हिंदी में तरीक या उपाय के अर्थ में अधिक प्रचलित है। परंतु कठिनाई यह है कि एक कानून शब्द को लेने में काम नहीं बन सकता उससे बनने वाले बोसिया शब्द भी उसके साथ निश्चित कर लिए, जस अलमुनियम, प्लटिनम आदि धातु नाम के अर्थ में प्रत्यय के लिए उद्दाने प्रातु निश्चित किया और इस आधार पर मग्नीशियम के लिए भ्राजातु शब्द बनाया—मग्नाशिया ग्रोक नगर का नाम है इसी से प्रातु चमन शब्द को लेकर उसमें 'प्रातु जोडकर इस धातु का नाम बनाया गया। भौतिकी और गणित के सूत्र या फारमूला को लेकर बहुत भगडा होता है। कहा जाता है कि ये सूत्र अन्तराष्ट्रीय हैं इसलिए इनका नागरी अक्षरों में लिखन के बजाय ज्या का त्या ले लेना चाहिए। इस सम्बन्ध में डा० रघुबीर का कहना

ह कि भौतिकी क सक्ताभर या सूत्र अग्रेजा शब्द क आधर या सक्त ह जस अग्रेजी का a अक्षर ऐपलोक्युट और एक्सेलरेगन का, g ग्राम का, दूसरे अग्रेजी म केवल २६ वण है, इसलिये उनको सक्ताक्षर की कमी पड जाती है जैस ग्रेविटी क लिये व g कम लिखें, इसलिये वे बडे अक्षर (कपिटल) G लिखन लगत ह । नागरी अक्षर म यह कठिनाई नही है, क्यकि मात्रा लगाने स सक्डा अक्षर उपलब्ध हो जात ह और अलग अलग सकेत दिए जा सक्ते हैं । इसी प्रकार वनस्पति और प्राणिशास्त्र गणना क बारे म है । अग्रेजी म पढ़ना शब्द जानि का नाम होता है, दूसरा विगेषण और तीसरा उपजातिका, जस तुतसी का लैटिन शब्द है 'ओसीमम । ओसीमम सक्टेस हिन्दी मे सामान्य तुलसी हो जाएगा क्यकि हिन्दी म विगेषण पहले आता है । जा लोग लैटिन शब्दावली को ही रखने पर जोर दत ह उह याद रखना चाहिए कि जापानी भी वनस्पति और जीव जतुओ का वैज्ञानिक नाम अपनी भाषा म ही दत है और हिन्दी की भांति उनकी भाषा मे भी विशेषण विगेष्य के पहले लगता है । हिन्दी मे नाम देन का लाभ यह है कि इसस पना चल जाता है कि किस वनस्पति या जीव का वणन हो रहा है जबकि अग्रेजी म सामान्य व्यक्ति लैटिन नामा क कारण यह नही जान पाता कि किस वस्तु की चर्चा हा रही है । वस्तुतः डा० रघुबीर के सारे काम का आधार यही है कि दग म सभी विषयो की पूरी शिक्षा हिन्दी और दग की भाषाओ के द्वारा होनी चाहिए और इसलिये उहोने सस्कृत का सहारा लिया है क्यकि द्रविड भाषाओ म भी सस्कृत के बहुत से शब्द समान रूप से व्यवहार म आते हैं ।

डा० रघुबीर म गणित के सूत्रो या सक्ता के बार म बडे विस्तार स विचार किया है । उहान बताया है कि गणित के सूत्र कुछ तो रोमन और ग्रीक अक्षर स बने हैं जस ग्रीक अक्षर पाई जो व्यास और परिधि क अनुपात ३ १४१६ को प्रगट करता ह । डा० रघुबीर इसके लिये 'प्या सकेत दते हैं । स्मरण रहे कि सबसे पहले व्यास-परिधि के इस अनुपात का हिसाब सन् ६७० ई० म भारत क महान् गणितज्ञ आय भट्ट उही लगाया था । डॉ० रघुबीर ने गणित के इन सब रोमन और ग्रीक सक्ताभरो क देवनागरी सक्ताक्षर निश्चित किए हैं । भारत की सभी भाषाएँ इन सूत्रा का व्यवहार कर सक्ती हैं । अक्षर सक्ता के प्रतिरिक्त जो आकृतिमूलक घन (+), ऋण (—), गुणन (×) और समता (=) आदि सकेत ह, व ता हिन्दी म भी ज्या क त्या दिए जाएगे । भौतिकी और गणित के सूत्रा की डॉ० रघुबीर न पूरी सूची दी है ।

गणित उन शास्त्रा म है सौभाग्य मे जिमम प्राचान काल म हमारे ग म काफी काम हुआ था । वग मूल का चिह्न (✓) भारत म ही अरब लोगा द्वारा

यूरोप में गया। आधुनिक गणित का आधार शून्य (०) है, जिसका आविष्कार भारत में ही हुआ था। इसलिए यदि डॉ० रघुवीर गणित के शब्दों के लिए प्राचीन संस्कृत प्रथा का सहारा लेते हैं तो यह सबथा उचित है। वास्तव में अपने ही आविष्कृत भारतीय शब्दों और संकेतों को छोड़कर तथा कथित अंतरराष्ट्रीय शब्दों का सहारा लेना राष्ट्र के लिए लज्जा की बात है। डॉ० रघुवीर ने प्राचीन गणित के अनेक ऐसे शब्दों को दिया है, जो बीजगणित, रेखागणित और अक्षरगणित में अग्रजों शब्दों की जगह प्रयुक्त हो सकते हैं और जो संस्कृतवादी को तो ज्ञात हैं, परंतु जन-साधारण जिनका भूल चुके हैं। जैसे—
 'यूनकाण (acute angle) अधिकोण (obtuse angle), कण (hypotenuse) घात (power) छेदा (logarithma), ज्या (cosine of an angle in a right angled triangle) चरण (quadrant)

गणित का तरह वनस्पतिशास्त्र के लिए भी डॉ० रघुवीर ने प्राचीन आयुर्वेद का सहारा लिया है। अग्रजों नाम वास्तव में लैटिन के हैं और अग्रजों छात्रों के लिए भी ये दुर्बोध हैं। उदाहरण के लिए मूफीवियाक ई के बजाय एरड कुल, रताचिण के बजाय निडू कुल, विकटाजिनाए के बजाय पुननवा कुल, भारतीय विद्यार्थियों के लिए अशुभ सहज हैं। कोई कारण नहीं है कि भारत के बच्चे इन भारतीय नामों को छोड़कर लैटिन के अजीबोगरीब नामों को रटें।

वनस्पति और प्राणिशास्त्र कणनात्मक विज्ञान हैं भारणात्मक या कल्पनात्मक नहीं। यूरोपीय विद्वानों ने जब लैटिन और ग्रीक नाम उत्तम कर लिए तो वे उनको तोड़ मरोड़कर नए नाम गढ़ने लगे। कुछ नाम तो ऐसे गढ़े गए जिनका कोई अर्थ ही नहीं निकलता। भारतीय विद्यार्थी इनको बवल रट लेता है समझता नहीं। इनके स्थान पर यदि भारतीय नामों का प्रयोग किया जाए तो विद्यार्थी तुरंत समझ जाएंगे। जैसे विदेगी नाम 'ऐसर' के बजाय इस उसक लिए सहज है। 'हम प्रजाति के अर्थ भेदों के नाम भी उनकी विनयता के अनुसार सहज बनाए जा सकते हैं जैसे रत्तपाद हंस। उल्लेख्य है कि जापानी लोग ने भी ऐसा ही किया है। उन्होंने पाश्चात्य तीन नामों के बजाय दो नाम रखे हैं—जैसे 'ब्लोरिस सिनिका सीबोमा' के लिए उन्होंने बवल दो नाम 'इबोतो कवाराहिवा' रखे हैं। सीबोमी जो बालनिक का नाम है उन्होंने छोड़ दिया है।

स्तनपायी पशुओं के नामों में हिन्दी के तद्भव नामों के बजाय डॉ० रघुवीर ने तत्समा को पसंद किया है जैसे 'हाइना' (लकड़बग्घा) का उन्होंने 'तरशु' प्रजाति रखा है। इसी तरह 'हर्पेस्टेस' (नेबला) को 'नकुन' किया गया है। तब यह है कि सिंधी और मराठी में 'तरशु' से उत्पन्न 'तरस' शब्द चलता है, इसी

तरह 'नकुल' से निकले हुए नेवला, नूल (काश्मीरी) गण है। नेवले के लिए ग्रीक भाषा म कोई गण नहीं है इसलिए नया गण्ड हर्पेस्टेम अर्थान रेंगेने बाला गढ़ा गया। सुतरा, इसका कोई औचित्य नहीं कि हिंदी म ग्रीक गण बया रखा जाए। नकुल बश क विभिन्न उपभेदा क नामकरण म भी डॉ० रघुवीर न भ्रधानुवाद करने के बजाय उनकी विगपताओं क सूचक नाम दन की पद्धति प्रपनायी है जो वास्तव म बड़ी बचानिक है। यथा नेवले की एक प्रजाति है 'एडवडसाइ'। इस प्रजाति का नेवला चितकबरा होता है इसलिए इसका हिंदी नाम दृष्ट्या 'विदुक्कित नकुल'। इसका एक और उपभेद किया गया है इसक स्थान क अनुसार, जैसे इपरस्टस एडवडसाई फरजिनियस'। यह मरुभूमि म पाया जाता है इसलिए डॉ० रघुवीर न इसको मर बिदु नकुल नाम दिया है। यह पद्धति सबथा वैज्ञानिक और बुद्धिसम्मत है। यह आग्रह वेतुका है कि एसा न करक इसका पाश्चात्य नाम ही रखा जाए। यह दुराग्रह दग म शिक्षा और विज्ञान क प्रसार म बाधक भी है। अवश्य ही विशेषता क अनुसार भारतीय नामकरण करने म काफी मेहनत और अध्ययन की जरूरत होगी।

लटिन या ग्रीक नामों को स्वीकार करन मे एक और कठिनाई है। कई लटिन नाम एक-से हैं, अंतर केवल उनकी बतनी या स्पेलिंग म है। इसस विद्यार्थी क चकरा जान की गुजाइश रहती है। जस लटिन म मुस्टेला-बीजल (सरगोण के समान जंतु) और मुस्टेलस-डागफिश' (एक मछली का नाम) है। इन दोनों क बग को 'मुस्टेलिडाइ कहत हैं। इसी प्रकार हमीगलस (विलाव) और हमीगलियस (शाक मछली) है। इसलिए जंतुओं के नामकरण म संस्कृत या दगा भाषा का सहारा लेना अधिक उचित है। हो सकता है कि ये नाम अपरिचित और कठिन लगें फिर भी लटिन-ग्रीक नामों से तो हर हालत म के कम कठिन और ज्यादा सुबोध हागे। जस चूह की विभिन्न प्रजातियों के लिए लरू मूपिका, गृहमूपिका, क्षत्रमूपिका कण्टमूपिका आदि।

अंग्रेजी या तयाकथित अंतरराष्ट्रीय पारिभाषिक गण्डों को ज्या का तया लेने क समयका के बोध हतु डॉ० रघुवीर ने चीनी भाषा म पारिभाषिक शब्द-निर्माण के कुछ उदाहरण दिए हैं। जस फिल्म=जान पिएन (मुलायम दफनी), वोल्टाज=तिएन मोटरवार=चिच रलय=त्य-ताओ (लोहा माग), टून=लिए बे (गाढिया की पात) एटलस=यू-नू सीमट=गुद-बी (पानी मिट्टी), क्वरोट=हून निग तू ए० सी० (विजली)=चिआओ लियु, टेलीफोन=तिएन हुआ ची (विजली बाणी मनीन), टेलीविजन=तिएन शीह (विजली दृष्टि), हाइड्राजन=चि इग, गैस=चि, भावसीजन=याग।

ध्यान रहे कि चीनी भाषा में प्रत्येक शब्द के लिए अलग चिह्न है—हाइड्रोजन आक्सीजन आदि गैसों के लिए जो चिह्न बनाए गए हैं, उन सबमें गैस का चिह्न जुड़ा हुआ है।

जो लोग यह शोर मचाते हैं कि अंग्रेजी या तथाकथित अंतरराष्ट्रीय शब्दांश का पटना छोड़ दें हम विज्ञान में पिछड़ जाएंगे उनको चीन या जापान में हुई वैज्ञानिक प्रगति का देखना चाहिए।

डा० रघुवीर के मूल सिद्धांतों पर विचार करना के बाद अब हम उनके काव्य के कुछ नमूने लेकर विचार करना चाहिए। सबसे पहले एक शब्द 'ऐक्य' (action) का लें—डा० रघुवीर के काव्य में इसका बीस से अधिक प्रयोग किए गए हैं, जैसे 'नीगल, क्रिमिनल, पसनल, मिक्स्ड' आदि। श्री राहुल साहू व्याख्यान द्वारा सम्पादित शब्द काव्य में इसके करीब १२ प्रयोग दिए गए हैं। ऐक्य' नाम का काव्यवादी है राहुल जो न इसका मूल रूप कारवाई भी दिया है। राहुल जी के बोझ में कारवाई के साथ अलग अलग अर्थ में अलग अलग शब्द जुड़ते गए हैं जैसे कानूनी कारवाई, लीवानी कारवाई जयन्ति डा० रघुवीर ने बाद और व्यवहारवाद शब्द दिए हैं। दूसरा शब्द लीजिए 'इनलड रेक्व्यू'। डा० रघुवीर ने इसके लिए 'अतर्देशीय आगम' और राहुल जी ने अतर्देशीय आय' लिखा है। साथ ही डा० रघुवीर ने 'इनलड के लिए दशम्यंतर' भी लिखा है। उल्लेखनीय है कि 'आगम' शब्द 'आगम निगम' के रूप में हिन्दी में दूसरे अर्थ में प्रचलित है इसलिए अर्थ बताने से भ्रंति होता स्वाभाविक है। दूसरी प्रवृत्ति जिसकी बहुत आलोचना की गयी है सच जगह उपसर्ग लगाने की है जैसे डिफेंस के लिए प्रतिरक्षा। आचार्य किशोरादास राजपूरी ने इस पर आपत्ति की है कि प्रति उपसर्ग यहाँ व्यर्थ है क्योंकि रक्षा स्वयं आक्रमण के प्रति रक्षा है, रक्षा की प्रतिरक्षा क्या होगी। यदि साधारण रक्षा और रक्षा रक्षा में अन्तर ही करना हो तो राष्ट्र रक्षा या देश रक्षा शब्द ज्यादा अच्छा होगा। परन्तु प्रतिरक्षा' के मामले में अबले डा० रघुवीर दोषी नहीं राहुल जी ने भी यही शब्द दिया है और शिवा मन्त्रालय ने भी अपने बोध में इस शब्द को स्वीकार किया है।

एक प्रचलित शब्द लीजिए डिपॉजिट। इसका प्रचलित पर्याय जमा है, डा० रघुवीर और राहुल जी दोनों ने इसके लिए 'निक्षेप' को पसंद किया है। इसका नतीजा यह हुआ कि 'डिपॉजिट एट बँक' के लिए डा० रघुवीर को याचनाइय नि १५ जैसा शब्द मढ़ना पड़ा, जबकि 'नि ११ मन्त्रालय ने 'माँग जमा' जग सरल शब्द में काम चला दिया।

एक लाख शब्दों के कोश में से एक-दो शब्दों को लेकर पूरे कोश को बुरा-भला नहीं कहा जा सकता, परन्तु धानगी के तौर पर हम कुछ ऐसे शब्दों का लेंगे, जिनसे डॉ० रघुवीर के कोश की प्रवृत्ति का पता चल सके। एक शब्द लीजिए 'इनकम टैक्स'। डा० रघुवीर ने इसके लिए 'आय कर' को स्वीकार किया है, जो सरल भी है और प्रचलित भी। परन्तु मूल शब्द में अनक समास भी बनन है। जैसे—

इनकम टैक्स डिडक्शन	—व्यवकलन (डा० रघुवीर) कटौती—प्रचलित
इनकम वेअरिंग ब्लाक	—आय प्रदायी-खण्ड (डॉ० रघुवीर) आय वाले खण्ड—प्रचलित
इनकम टैक्स रिटन	—आयकर प्रतिवरण (डॉ० रघुवीर) हिंसाब—प्रचलित
इनकम टैक्स रिफ़्ट	—आयकर प्रत्यपण (डा० रघुवीर) वापसी—प्रचलित

स्पष्ट है कि उपयुक्त उदाहरणों में डॉ० रघुवीर ने प्रचलित व सरल शब्दों को ले लेने के बदले नए शब्द गठना पसंद किया, जो अर्थ की स्पष्टता की दृष्टि से भी इनसे बहतर नहीं।

इसी प्रकार का एक और शब्द 'पास्ट' है जिसके लिए 'डाक' शब्द प्रचलित है। डा० रघुवीर ने भी 'गुट' में इसी शब्द को स्वीकार किया जस पोस्टज = डाक, पोस्टेज पेड = डाक व्यय देकर, परन्तु इसके साथ ही उन्होंने एक विकल्प भी दिया है 'पत्र प्रेष गुल्क' और आगे के शब्दों में उन्होंने 'डाक' के बदले 'प्रेष' का ही अपनाया। जैसे—

पोस्ट कार्ड—प्रेष पत्रक
रिप्लाइ—सोत्तर (जवाबी)
पोस्ट पासल—प्रेष परिवेष्ट
पोस्टल अधिकारी—प्रेषाधिकारी
पोस्ट इन्स्पेक्टर—प्रेषालय आगोप

इन सब उदाहरणों में 'डाक' शब्द का बखूबी प्रयोग हो सकता था। इसका योगिक बनाने में भी कोई कठिनाई नहीं थी।

इसी तरह का एक और शब्द है 'इन्स्पेक्टर'। इसने लिए डॉ० रघुवीर ने प्रचलित बीमा के बजाय आगोप शब्द बनाया है और इसी के बचन पर उन्होंने अग्नि आगोप, स्वास्थ्य आगोप आदि शब्द गठे हैं। बनारी बीमा के बजाय उन्होंने

वृत्तिहीनता प्रागाप', वामा दलाल व लिए 'प्रागोप मध्यम' आदि शब्द गढ़े हैं। एक बात उनका पक्ष में कही जा सकती है कि 'इश्योड' के लिए 'प्रागोपित' प्रासानी से बनता है, जबकि बीमा में इन प्रत्यय लगाने में कठिनाई है। परंतु हम इस सिद्धान्त को मान चुके हैं कि विदशी शब्दों का अनुशासन हिन्दी व्याकरण के अनुसार होगा, इसलिए हमें बीमित या बीमापित, गजटित फिलिमत आदि शब्द भी बनान पड़ेंगे।

डाक के प्रलावा एक और प्रचलित शब्द है रेल। डा० रघुवीर न इसके लिए अयोगान (लोहा गाड़ी) या सयान और रलवे के लिए अयोगाग गढ़ रखा है। यह ठीक है कि जमन, फ्रेंच और रूसी भाषाओं में भी इसी अर्थ के समास आइसेनवान चिया द पर और जेलजनाया दरोगा प्रचलित हैं और हमारे देश में भी बोलचाल में 'धुआ गाड़ी' शब्द प्रचलित था। पर हम इस तथ्य को भी अनदेखा नहीं कर सकते कि 'रेल शब्द भी देश में सभी भागों और भाषाओं में प्रचलित हो गया है इसलिए तक अयोगान' व पक्ष में होना पड़गा।

डा० रघुवीर के कोश में या या कहीं कि उनकी वायपद्धति में एक ऋटि को चाना ही पड़ेगा और इसी से अर्थ शब्दों का समास करना पड़गा। डा० रघुवीर के कोश में या या कहीं कि उनकी वायपद्धति में एक ऋटि है। उन्होंने सस्त्रुत प्रयोग तो शासन विधि और विभिन्न भागों में प्रचलित खतीयाड़ी की खोज की, परंतु इस समय देश में विभिन्न भागों में प्रचलित खतीयाड़ी दस्तकारी व्यापार महाजनी आदि विभिन्न धंधों के शब्दों के संग्रह का प्रयत्न नहीं किया न इस प्रकार के जो प्रयत्न क्रुव प्रियमन और अर्थ विद्वानों द्वारा हुए हैं उनका ही लाभ उठाया। उदाहरण के लिए डा० मोतीचंद्र और रायचरण दास ने चित्रकला और मूर्तिकला के बहुत-से प्रचलित पारिभाषिक शब्दों की सूची अपनी पुस्तकों में दी है। बनारस में मल्लाहा में नाव और नौचालन व बहुत-से शब्द चलते हैं यथा गलही (नाव का भाग का भाग) मोनरया (मस्तूल) डाडा (चप्पू) पाता (डांडे में लगा लकड़ी का चोड़ा पत्ता जो पानी काटता है) किलवारी (पतवार), सेवाई (लोह का टुक जिसमें डांड डाल कर चलाते हैं) बाहा (रस्सी, जिसमें फसा कर डांड चलाते हैं) गुन (रस्सी, जिस मस्तूल में बांध कर नाव खींचते हैं) चह (नाव लगाने की जेटी) आदि। इसी तरह पनसुइया डोगी, घटहा (घार-पार जान वाली केरी) बजरा आदि विभिन्न प्रकार की नावों के नाम हैं। इसी तरह देग के और भागों में समुद्री और नदी की मछलियों व जीव जंतुओं के नाम हैं। केरल में समुद्री शब्द जैसे कयल [(बक-बाटर), गढवाल कुमायू में पहाड़ी शब्द जैसे धार (रिज) दरड (पत्थर का सीपीदार चट्टान) धूरा (ऊँचा पहाड़), धून (लोहा

अयस्क) गाड (पहाडी नदी) गडेरा (छोटी नदी), मुणाल (पहाडी रग गिरगा पथी) आदि हैं। पशु पक्षियों का भी प्रचलित नामा का संग्रह करने का प्रयत्न नहीं किया गया है यहाँ भी प्राचीन संस्कृत नाम दे दिए गए हैं जम बस्टड के लिए पुराना संस्कृत नाम 'सारग' दिया गया है। इससे यह पता नहीं चलता कि यह बड़ा सारस है गुनुरमुग की तरह का जो अच्छे में पाया जाता है और अब मिट रहा है। इसका कोई स्थानीय नाम जरूर होगा।

रगा को लीजिए। डा० रघुवीर ने रगा के संस्कृत नामों की एक बड़ी सूची कोश के प्रारम्भ में दी है परन्तु उनके प्रचलित नामों के संग्रह का प्रयत्न नहीं किया है। जैसे 'ब्राउन ओकर का अनुवाद वह करते हैं 'बभ्रुगैरिक' जबकि रगसाजा में प्रचलित नाम है—मलयागिरी, मुनहरा वत्थई। बीवर ग्रे का प्रचलित नाम है करजुआ डा० रघुवीर के काश में इसका नाम नहीं है। 'बोडो' का वह देते हैं 'कपिशक', जब कि इसका नाम है पनगी क्योंकि यह पतंग की लकड़ी के अंक से बनता है। ब्लड रेड का वह गढ़ते हैं रक्तापीत जबकि वास्तविक चलन में यह है 'क्रेजई'—भेड़ की कलजी का रंग। इसी तरह बट अम्बर (Burnt umber) के लिए डा० रघुवीर दग्ध बभ्रु ही देते हैं जब कि असली शब्द है किशमिश। संस्कृतीकरण की प्रवृत्ति यहाँ तक चली गई कि है तदभव शब्दों को भी डा० रघुवीर तत्सम बना देते हैं छुरी को व क्षुरी लिखते हैं। अश्वोरेंस का व प्रगोप और इशरेंयोस को वे आगोप कहते हैं जबकि व्यवहार में दोनों का एक ही अर्थ है और एक शब्द बीमा पहले से प्रचलित है। हमारा उपसर्गों का भंडार अंग्रेजी से कम नहीं है इसका यह अर्थ तो नहीं कि हम लवाहमखवाह उनका प्रयोग करते चले जाए। हर जगह अंग्रेजी के अलग अलग शब्दों के लिए हिन्दी के अलग अलग शब्द देने की क्या जरूरत है, न अंग्रेजी में ही ऐसा हा सकता है। हिन्दी के घिया लोकी के लिए अंग्रेजी में दो शब्द तो नहीं दिए जाएंगे। जिस तरह अंग्रेजी में लटिन फ्रेंच एंग्लो सक्सन आदि अनेक भाषाओं से शब्द आए हैं उसी तरह हिन्दी में भी आए हैं। इसलिए उस प्रकार के शब्दों का बायकाट करके उपसर्ग व प्रत्यय जोड़ जोड़कर शब्द गढ़ते जाना भी उचित नहीं। जैसे अंग्रेजी का अटैक एग्जेशन इनवजन, इनवजन आनस्लाट नेड इनरोड असाल्ट और बटरी के लिए डा० रघुवीर ने जमश आक्रमण अम्याक्रमण या अशाक्रमण अभियान, क्षिप्राक्रमण अम्याघात सहस्राक्रमण, अभिद्रव प्रहार और सप्रहार शब्द दिए हैं जबकि इनके लिए हमला आक्रमण चढ़ाई घुसपठ धावा छापा, अतिक्रमण प्रहार या मार और घमामान आदि शब्दों को काम में लाया जा सकता था। मध्ययुग की प्रौढी और जमीन शब्दावली में

इस सबक लिए अच्छे शब्द मिल सकते हैं। इसलिये मूल प्रश्न कायविधि का है। सबसे पहले हमें हिन्दी प्रदेशों के विभिन्न भागों में प्रचलित शब्दों का संकलन करना चाहिए, फिर हिन्दी की सगोत्र भाषाओं से और संस्कृत से लेना चाहिए। अंग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाओं से आए और आने वाले शब्दों का जो वायकाट सम्भव नहीं है। रजिओ स्पुतनीक, हाराकोरी, जेट आदि ऐसे ही शब्द हैं। शब्द निर्माण की क्रिया प्रतिदिन नए-नए शब्दों के आगमन के साथ कदम मिलाकर नहीं चल सकती। अखबार और रजिओ के कमचारी नए शब्दों के पर्याय के गठे जान और वाग म छप कर भाग वा इतवार नहीं कर सकते। उह ता तत्काल गण चाहिए, या तो व उस अर्थ से मिलन जुलन वाले अपने देनी शब्द में काम बनावेंगे, नहीं तो उसी शब्द को लेकर पचा लेंगे।

एक बात और है यह सभी को मालूम है कि इस समय हिन्दी की गड़ी सभी शब्द निर्माण के प्रश्न पर अटक गयी है। मान लिया गया है कि हिन्दी का विश्वविद्यालय शासन और व्यापार उद्योग का माध्यम बनाने से पहले उक्त विषयों के सारे शब्द हिन्दी में बन जाने चाहिए। इसी आधार पर शिक्षा मंत्रालय में काम भी हो रहा है, परन्तु जमा कि पिछले १०-१५ वर्षों के अनुभव में सिद्ध हो गया है यह काम कभी खतम होने वाला नहीं, इसलिए यह धन भी कभी पूरी होने वाली नहीं कि पहले शब्द बन जाएँ, तब काम शुरू हो।

दूसरी तरफ यह मत है कि हमें हिन्दी में काम शुरू करना चाहिए और जो शब्द न बन सकें उन्हें अंग्रेजी से ही किन्हाल से लेना चाहिए। इससे यह होगा कि हिन्दी में पढ़ाई लिखाई और कामकाज शुरू होने से चिन्तन हिन्दी में होने लगेगा, नए विचारों के साथ नए शब्द भी आएंगे, कुछ अंग्रेजी के शब्द भी रह जाएंगे, कुछ वाद में हटाए जा सकते हैं। तमिल में मकडा वर्षों से प्रचलित शब्दों का हटाने का प्रयत्न हुआ है। यह भी स्मरण रहे कि डॉ० रघुवीर और शिक्षा मंत्रालय के लोगों के बनने के पहले भी हिन्दी में विभिन्न विषयों पर ग्रन्थ लिखे जा रहे थे और अब भी सार लेखक इन लोगों का हा सहारा नहीं लेते। सबको हज़ारों शब्द अर्थवारा के दफ्तरो में, कारखानों में और वाजार में गड़ लिए गए और चलन लगे और भाज भी ऐसा हो रहा है।

परन्तु उपयुक्त सिद्धांत को मान लेने के बाद भी डॉ० रघुवीर के कोण की महत्ता और उपमांगिता में लेन-मात्र की कमी नहीं होती। डॉ० रघुवीर ने जिन सिद्धांतों को स्वीकार किया उही पर शिक्षा मंत्रालय का हिन्दी निदेशा साथ भी काम कर रहा है। डॉ० रघुवीर के बोश ने आगे के कोशकारों का माग प्रस्तुत कर दिया है। उनको इस बात का ध्य है कि उन्होंने पहली बार एक

जगह ज्ञान विज्ञान की सभी शाखाओं व पारिभाषिक शब्दा का संग्रह किया और इस काय की पद्धति निर्धारित की।

कोई भी पर्याय दूधत समय डॉ० रघुवीर का कोश प्रकाश स्तम्भ का काम करता है। उनके कोश से हम अर्थ का बोध हो जाता है और अधिक उपयुक्त शब्द खोजने म मदद मिलती है। इस रूप म डॉ० रघुवीर का कोश नीव का पत्थर है। उनके उपसंग प्रत्यय जोड़े हुए शब्दों की हँसी भले ही उड़ाई जाए किन्तु शास्त्र निमाता को सहारा इसी क्रिया का लेना पडता है। हाँ उनका काम की पूर्ति अवश्य की जा सकती है। सभी प्रचलित शब्दों का संग्रह करने गये हुए दो शब्दों के स्थान पर उनका प्रयोग करना उचित है फिर भी हज़ारों शब्द ऐसे रह्य जिन्हें गडना ही होगा प्रचलित शब्दों के भी योगिक बनाना ही हागा और इस काय म डॉ० रघुवीर का कोश हमें पथ प्रदर्शन करेगा।



हिन्दी साहित्य कोश : महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थ

(१)

हिन्दी साहित्य के अद्भुत वृद्धिमान भंडार को देखते हुए यह सवथा वाछनीय था कि आक्सफोर्ड कम्पेनियन ऑफ इंगलिश डिक्शनरी की तरह का एक विंगाल सन्दर्भ ग्रन्थ अविस्तम्ब हिन्दी में भी निकले। साहित्यिक विधि के साथ यह भी अपरिहाय हा जाना है कि साहित्य सेविता का वगारथ भी अपने अपने कुछ विशिष्ट क्षेत्रों तक ही सीमित होता जाए और इसी कारण दोष भंडार को हस्ता मस्तक रगन व लिए आज के युग में सन्दर्भ ग्रन्थों का तयार किया जाना युग की मांग बन गया है। विद्या का कठ मे लेकर चलने वाले प्राचीन युग के आचार्यों के लिए भले ही ऐसा सम्भव रहा हा पर आज यह कदापि सम्भव नहीं है और वरनुत विद्या के सवधष्ठ सुरभित भंडार आज सन्दर्भ ग्रन्थों में ही सँजो कर सवार कर रसे जाते हैं। समग्र जानकोप पर आपका अधिकार होना आवश्यक नहीं। आवश्यक यह है कि आपके पुस्तकालय में श्रेष्ठ सन्दर्भ ग्रन्थों के अद्यतन मस्करण उपलब्ध रहें। यत जब आवश्यकता पडी समाधान कर लिया।

युग की इस माग की पूर्ति की दिशा में हिन्दी साहित्य कोश' (दो खण्डों में) का प्रादुर्भाव हिन्दी जगत की एक बहुत बडी घटना है। उसकी प्रगति की इयत्ता का यह एक निश्चित मानदंड और मीन प्रस्तर है। पिछले पचास साठ वर्षों में हिन्दी साहित्य के मृजनारमक और आलोचनारमक सभी पहलुओं में और अध्ययन अध्यापन अनुसंधान के सभी क्षेत्रों में जेजका साहित्य-सेवियों और विद्वानों की एक साधनारत शृंखला के अथक योगदान से व्यापक विस्तार तो आया ही है, साथ ही उसमें विविधतापूण सम्पन्नता और एक महान् साहित्य की उपलब्धिया

के लिए अपरिहायत अपक्षित गरिमा और गहराई का भी मन्त्रिण हुआ है। इन सब उपलब्धियों के सम्यक् निरूपण के लिए एक मुनियोजित साहित्य कोंग की आवश्यकता को इस हिन्दी साहित्य कोंग द्वारा बहुत सीमा तक पूर्ति हा गई है।

इस साहित्य कोंग के प्रथम भाग की योजना इस प्रकार है हिन्दी साहित्य कोंग के विषय विस्तार को समित रखन हुए इनमें हिन्दी साहित्य की प्राचीन और नवीन पारिभाषिक शब्दावली का प्रामाणिक ग्रन्थ साहित्यिक गतिविधि का संचालित और प्रभावित करन वाले विविध वादा और प्रवृत्तियों का ऐतिहासिक और शास्त्रीय परिचय गिण्ट तथा लोक-साहित्य के विविध रूप का विवरण साहित्यिक भाषा तथा बोलिया का भाषावैज्ञानिक परिचय तथा हिन्दी भाषा और साहित्य से सम्बन्धित अन्वय भाषाशास्त्र और उनका साहित्य का सामान्य ज्ञान प्राप्त करान का प्रयास किया गया है। इस कोंग में सामान्यत नीचे लिखे विषयों की पारिभाषिक और गिण्ट शब्दावली को दिया गया है

- १ प्राचीन साहित्यशास्त्र—रस ध्वनि अलंकार रीति छन्द आदि।
- २ पाश्चात्य साहित्यशास्त्र—प्राचीन तथा नवीन।
- ३ साहित्य के विविध वाद तथा प्रवृत्तियाँ—प्राचीन तथा आधुनिक।
- ४ साहित्य के विविध रूप—प्राचीन तथा नवीन प्राच्य तथा पाश्चात्य।
- ५ हिन्दी साहित्य के इतिहास के विभिन्न काल युग तथा धाराएँ।
- ६ साहित्यिक मन्त्र में प्रयुक्त दार्शनिक भूनादानिक राजनीतिक तथा समाजशास्त्रीय सिद्धांत।
- ७ लोक-साहित्य—शास्त्रीय विषय तथा प्रचलित रूप।
- ८ आधुनिक भारतीय भाषाशास्त्र तथा संस्कृत फारसी और अंग्रेजी के साहित्य का इतिहास।
- ९ हिन्दी भाषा उसकी जापनीय बोलिया प्राचीन तथा भारतीय ग्राम भाषाशास्त्र और सम्बद्ध ग्राम भाषाशास्त्र का परिचयात्मक विवरण।

सम्पादकों का यह श्रम नहीं है (संभव भी नहीं है) कि इन विषयों की सम्पूर्ण पारिभाषिक और गिण्ट शब्दावली को इस कोंग में निरूपण कर दिया गया है। कुछ बातों के बारे में अभी सर्वसम्मति निणयन हुआ मन्त्र में विषयगत परिनिष्ठितता नहीं आई है तो कुछ बातों के बारे में प्रामाणिक सामग्री का अभाव है। सम्पादकों के लिए यह भी आवश्यक था कि विषय निवाचन और प्रतिपादन के लिए अपने आदर्श और प्रतिमान स्वयं निश्चित करें और अपने माग का स्वयं निर्माण करें। पहले भाग की निष्पत्तियाँ अस्मिन् गुं ऊपर अधिकांश

विद्वाना द्वारा लिखी गई है। इसमें विविध क्षेत्रों के विद्वानों का समुचित प्रतिनिधित्व हुआ है और इस दृष्टि में भी कोंग की सामग्री यथासम्भव प्रामाणिक और उपयोगी बन सकी है।

दूसरे भाग में साहित्य के अध्ययन में प्रयुक्त होने वाली नामवाची शब्दों की सूची ली गई है जिसमें नीचे निम्ने वर्गों के नाम प्रमुख रूप में आये हैं

- १ लेखक
- २ कृतियाँ
- ३ प्रधान पात्र (रचनाओं के)
- ४ प्रमुख साहित्यिक संस्थाएँ
- ५ प्रमुख पत्र-पत्रिकाएँ
- ६ पौराणिक तथा ऐतिहासिक पात्र तथा कथा-सदृश (हिन्दी साहित्य में प्रयुक्त)

इन नामों में अनूदित रचनाओं और अनुवादकों के नाम छोड़ दिए गए हैं। लेखकों में एस. लेखकों की ही ली गई है जिनका जन्म १९१५ ईसवी तक हो चुका था और उनकी भी वही कृतियाँ ली गई हैं जिनका प्रकाशन १९५० ईसवी तक हो चुका था। इस प्रकार सूची में इसमें १९५० तक प्रकाशित सामग्री ली गई है। कोंग का मुख्य उद्देश्य साहित्य और साहित्यकारों की रूढ़ि पर उनके साथ हिन्दी भाषा तथा साहित्य के प्रतिष्ठित विद्वानों को प्रचारित, सविया तथा विभिन्न विषयों के माध्यम से निखन वाले विद्वानों को भी प्रस्तुत कोंग में सम्मिलित किया गया है।

सम्पादकों को माना है कि दूसरे भाग का कार्य-क्षेत्र पहले कार्य की तुलना में ज्यादा कठिन था। बहुत-से लेखकों तथा ग्रन्थों के बारे में अभी तक स्पष्टता स्थिरता नहीं है। प्राचीन मध्ययुगीन और कुछ आधुनिक लेखकों के बारे में हमारे पास कुछ कम प्रामाणिक सामग्री है। तिथियाँ तथा जीवनवृत्तों के बारे में स्थिति ज्यादा अनिश्चित है। इन दृष्टियों में दूसरे भाग की सामग्री का मूल्यन सम्पादन ज्यादा दुर्लभ और श्रमसाध्य कार्य रहा है और उसकी सामग्री के बारे में विनियत बहुत कुछ कहा जा सकेगा। इस भाग में सत्तर में उपर टिप्पणी लेखकों का योगदान है जिनमें से अधिकांश प्रतिष्ठित विद्वान हैं।

हिन्दी साहित्य कोंग के दोना भागों को देखकर पहला प्रभाव यही पड़ता है कि एक महान् और उपयोगी भवन के निर्माण की योजना बनाते समय और आधार गिला रखते समय वास्तुपतिवियों के सामने उम भवन का आवश्यकताओं और प्रसार का पूरा ध्यान रखना स्पष्ट नहीं था और उसका निर्माण कर आगे बढ़ चुकने

क बाद हा यह अनुभव किया गया कि कुछ ग्रन्थ उपयोगी बातों की व्यवस्था करने के लिए पाम म एवं दूसरा उपभवन भी बनाना पड़ेगा। यह उपभवन यद्यपि पाच वष बाद तयार हुआ और इसके लिए मूत्र भवन म कुछ हर फर करना मभव न था फिर भी कुत्र म्यापनिषा न दूसर उपभवन का पहले के मथ वतनी दशता म जाट लिया कि सहसा यह भान न हा पाए कि शोना की याजना एक माय नहीं बनाइ गर। दूसर भाग की मपानकीम भूमिका म इस म्बीवार भी किया गया ३

'हिन्दी साहित्य का' (जा अर द्वितीय मस्करण म भाग १ के रूप म प्रकाशित होन जा रहा है) क प्रकाशन क समय इस अनुभव कर रह थ कि प्रस्तुत प्रयास म हम कुछ ग्रन्थ ग्रन्थत उपयोगी विषया का सम्मिलित नहीं कर सक और उसा समय मन म यह भी विचार था कि हिन्दी साहित्य क लेखका रचनाया प्रथान पात्रा तथा पीराणिक सदभों का एक दूसरा भाग तयार करने पर ही यह काय पूण हो सकगा।

इसका अर्थ यह हुआ कि पहले भाग की भूमिका लिखन समय सम्पादका क नामन यह स्पष्ट न था कि इस काय की पूर्णाहुति हान स पहले एक दूसरा भाग भी आवश्यक हागा अथवा दूसर भाग क बारे म यथावश्यक उल्लेख पहले भाग म भी होना ही चाहिए था। इस सम्बन्ध म यह बात निर्विवाद रूप म मानी जाएगी कि ऐम महान् ग्रन्था की पूरा याजना सर्वांगीण रूप म पहल-पहल न बना सन स बड़ी गटबन्धी की गुजारण रहनी है। कम ता छोटे मे-छोट ग्रन्थ क सख्त भी अपने पूरे ग्रन्थ की सर्वांगीण याजना बनान क बात ही अपना काम गुरु करत हैं पर एम महान् ग्रन्थ म ता यह अपरिहाय रूप म आवश्यक हा जाता है।

याजना न बनान का ही यह प्रतिफल ३ कि पूरा ग्रन्थ विषयानुसार दो खण्डा म विभाजित है। विषयानुसार लिखा का विभाजन हिन्दी भी बड़े आयोजन म एक आम बात है और इस विराय म वस्तु कुछ बहा नी नहीं जा सकता। बड सग्रह ग्रन्थ म एमा प्राय हाता ही है परनु इस तरह का कोई भी कोण-ग्रन्थ आज तक नहीं बना ३। काण ग्रन्थ म जिला का विभाजन विषया नुसार नहीं हाना बल्कि वणश्रम के अनुसार हा हाता है। कोणों म विषय और निरूपण की समग्र मायताया का छाटन आज की दुनिया म बदल वणश्रम का ही सहारा लिया जाता है। कम मस्कृत काण ग्रन्था म वणश्रम का महत्व न था और शाण का सग्रह करने म वणश्रम का और ध्यान न दन थे बल्कि गणा का मकसन मपान विषय की दृष्टि म किया जाता था। स्वय अमरकोण

म स्वयवग और भूमिवग आदि क प्रम स सामग्री को सज्जित किया गया है वणक्रम यदि वही माना भी जाना था तो नानायवग आदि म शब्द के अन्तिम वण के प्रम की और ध्यान रखकर एक ही अक्षर म अत होने वाले शब्द इकट्ठे मजाए जात थ । पर आज कोग प्रयो मे निरूपण विषयानुसार न होकर वणक्रम क अनुसार हाता है । इस प्रमग मे यदि समग्र प्रथ व दो भागा मे निपटाना प्रयोजनीय था तो उदाहरण क लिए अ स लेकर ज तक क शब्द पहले खण्ड मे आते और ट से म लेकर ह' अक्षरों म गुफ होने वाले शब्द दूसर खण्ड मे । इस प्रकार स जिल्दा का विभाजन होने पर ही पूर प्रथ को सुगठित रूप मे यात्रनावद्ध कहा जा सकता था । किन्तु हिन्दी साहित्य कोग क विषय म ऐसा नहीं हुआ ।

जैसा मैंने ऊपर कहा बाद म पूरे कीदाल के साथ दोनों खंडों को इस प्रकार जोड़ दिया गया जिससे परस्पर किसी प्रकार की असंगति या असंबद्धता न ध्यान पाए । पहले खंड म व्यक्त नामों का उल्लेख बिलकुल न करने म यह काम ख्याता कठिन भी न था किन्तु ऐसी स्थिति म एवाध खामी रह जाना बहुत ही संभव था और ऐसा हुआ भी । जब नाम वाली शब्दावली का पहले खंड म कोई संबंध नहीं है, तो फिर उस खंड म 'भरथरी' नाम का उल्लेख क्या ? स्पष्ट है कि बहुत प्रयत्न करने पर भी जो हा चुका था सुधार योग्य न रहा था ।

(२)

पहले भाग म सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं पर टिप्पणियाँ दी गई हैं । आधुनिक भारतीय भाषाओं क अलावा 'नम सस्कृत, पालि प्राकृत अंग्रेजी और फारसी भाषाएँ भी शामिल हैं । अग्रणी सबधी टिप्पणी छ स्त्रियों तक चलती है । स्वभावतः हिन्दा सबधी टिप्पणी सबसे बड़ी है और वह लगभग बारह स्त्रियाँ तक व्याप्त है । इन टिप्पणियों क अंतगम प्रत्येक भाषा के भाषागत विवास और मौखिक की चर्चा करते हुए उसका साहित्य की प्रमुख धाराओं और उसका प्रमुख साहित्यकारों और साहित्यिक कृतियों का उल्लेख किया गया है । किन्तु इन भाषाओं की सूची म सिन्धी का अभाव खटकता है । सामान्यतः य [टिप्पणियाँ सपादकों की व्यापक दृष्टि की ही परिचायक हैं अथवा हिन्दी साहित्य का] म केवल हिन्दी या ख्याता से ख्यात प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय भाषाओं का ही उल्लेख एक दृष्टि संपर्याप्त माना जा सकता था । न जाने म हिन्दी के साहित्यकारों की सदैव यही व्यापक और अविच्छिन्न भारतीय दृष्टिकोण अपनाता होगा । वह दिन दूर नहीं है जब अथ ममग्र भारतीय भाषाओं क साहित्य की

महान् कृतिया न अनुवाद हिंदी म अविलंब उपलब्ध हो जाया करेंगे और इस प्रकार हिंदी साहित्य समग्र भारतीय साहित्य की श्रेष्ठतम कृतियों से समृद्ध रहेगा। साथ ही इसका परिणाम यह होगा कि किसी भी भारतीय भाषा भाषी का किसी भी दूसरी भारतीय भाषा के साहित्य से परिचय प्राप्त करने के लिए हिंदी का माध्यम लेना होगा और हिंदी श्रुतला भाषा के रूप में अपने दायित्व का समुचित निर्वहन करके ही रहेगी।

हिंदी साहित्य की प्राचीन और मध्यकालीन प्रवृत्तियों की भीमसा करन वाली टिप्पणियां न साथ साथ उसकी आधुनिकतम प्रवृत्तियों पर भी टिप्पणियों का संकलित किया गया है। इस प्रसंग में कुछ साहित्यिक दार्शनिक धारणाओं को भी लिया गया है। अभिव्यजनावाद पर तीन स्तंभों की टिप्पणी है तो अतियथाथ वाद सम्बंधी टिप्पणी भी प्रायः इतनी ही बड़ी है। अस्तित्ववाद की साहित्यिक प्रवृत्ति का विवरण भी तीन स्तंभों में दिया गया है। अद्वैतवाद अनात्मवाद आत्मावाद अनीश्वरवाद अद्विष्टतपरिणामवाद आर अरविद ज्ञान आदि पर भी पृथक् पृथक् टिप्पणियां ग्रहित की गई हैं। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि इनमें से अधिकांश का सम्बंध साहित्य से नाममात्र का या उतना ही है जितना समाजशास्त्र की कि ही अर्थ इकाया से। यह ठीक है कि एक साहित्यकोण दशानकोण मानविकी कोण या समाजशास्त्र कोण का स्थापन न हो सकता फिर भी साहित्यिक चिंतन को प्रभावित करने वाली दार्शनिक विचारधाराओं का एक साहित्यकोण में निरूपण अनुचित भी नहीं ठहराया जा सकता।

इस दृष्टि से कोण की प्रवृत्तिगत एकरूपता की रक्षा के उद्देश्य से सम्पादक महान की ओर से प्रत्येक शब्द या शब्द समूह के लिए सामान्य और विविष्ट रूपरेखाएँ अवश्य प्रस्तुत की गई थीं। हाँ दृष्टि और विषयगत अध्ययन की दृष्टि से अवितिगत लेखकों ने अपने अनुकूल ही इन रूपरेखाओं का उपयोग किया अतः सम्पादक के ही गन्तव्य में विभिन्न टिप्पणियों के आकार विस्तार तथा प्रस्तुतीकरण को पद्धति और गली में विविधता होना स्वाभाविक है। फिर भी एकरूपता के लिए सम्पादक राजग रहे हैं और टिप्पणियों में पर्याप्त संगोपन-परिवर्धन भी किए गए हैं। ऐसे विविष्ट और उपयोगी आयोजना में यह स्वाभाविक भी है कि महत्त्वपूर्ण शब्दों का विषय प्रतिपादन और विषयचिंत्य की दृष्टि से सम्यक् विस्तार किया जाए, ज्यादा महत्त्वपूर्ण विषयों के परिपूर्ण निरूपण के लिए पृष्ठा का संकोच विलकुल न किया जाए बल्कि उनका सर्वत पूर्ण विवचन ही टिप्पणी लेखन का लक्ष्य रखा जाए। इससे एक लाभ यह भी होता है कि सम्बंधित सदभ ग्रंथ के पाठक या अनुसंधितों की अथाश्रयता

समाप्त या कम हो जाती है और उमे समूची महत्त्वपूर्ण नामची उपयुक्त रूप में एक ही स्थल पर सन्तलित और सवारि हुए रूप में उपलब्ध हो जाती है। साथ ही कम महत्त्वपूर्ण विषयों का औचित्यपूर्ण विवचन ही सम्पादन का लक्ष्य होता है, जिसे ग्रथ की सन्तुलित मयादा और विस्तार का भी निर्वाह होता है। इस बारे में प्रस्तुत बोध ग्रथ बहुत दृष्टियों में सराहनीय है।

टिप्पणियाँ की लंबाई विषय के महत्त्व पर आधारित रही है। इस प्रकार सम्यग्धी शब्दों की व्याख्या में लगभग त्रानौग स्तंभ दिए गए हैं और नाटक के लिए तीस स्तंभ। इस प्रसंग में स्थालीपुताव 'याय से कुछ ग्रथ बढी बढी टिप्पणियों का भी नामालेख किया जा सकता है आलोचना और आलाचना भेद २० स्तंभ उपयास (कुलमिलाकर) १६ स्तंभ, बहानी ११ स्तंभ ध्वनि २० स्तंभ महाकाव्य १५ स्तंभ अष्टछाप ६ स्तंभ। टिप्पणियाँ व इस विषय सापक्ष विस्तार में सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि विषय के सम्यक् निरूपण व लिए स्थान सक्च आडे नहीं आया है और यथावसर महत्त्वपूर्ण विषयों का विवेचन सागोपाग और सविस्तार किया गया है। इस प्रकार व बोध ग्रथों में यह नितात आबदयक भी है क्योंकि ये कौग ग्रथ ववल पारिभाषिक शब्द का संक्षेप में अभिप्राय बताने वाले ही नहीं होन बल्कि उसमें सम्बन्धित विचारधारा और परिप्रेक्ष्य की भी यथातथ्य और प्रामाणिक विवचना प्रस्तुत करते हैं।

आत्मकथा संबंधी टिप्पणी पढ़कर सपादकीय कौगल का एक और नमूना सामन आता है। हिन्दी में आत्मकथा साहित्य के तयाकथित प्रभाव की दृष्टि में इस टिप्पणी सम्बन्धी सामग्री को जुटाने सजान में काफी दक्षता की अपक्षा थी जहा अंग्रेजी में कई जीवनगाथाया का कई जितदा का राष्ट्रीय कौग तक उपलब्ध है वहा हिन्दी में उत्कृष्ट आत्मकथाओं की सरुया अब भी अगुलिया पर ही गिनी जा सकती है। आत्मकथा का विधा पर दबपात बरत हुए इस टिप्पणी में हिन्दी की कुछ प्राचीन आत्मकथाया का उल्लेख किया गया है और इस प्रकार हिन्दी में आत्मकथा साहित्य के सूत्रपात की भावी दी गई है। अतः में बडे कौगल क साथ महाायक ग्रथा की सूची के रूप में हिन्दी की उत्कृष्ट आत्मकथाया की एक प्रामाणिक सूची द दी गई है।

इसी प्रकार एवाकी सम्यग्धी टिप्पणी भी बडी है। रोचक और महत्त्वपूर्ण है। प्रारम्भ में एवाकी व विकास का जिग्र बरत हुए पश्चिम के प्राचीन नाट्य रूपा मिरेबरत और मोरलिटीज का सबत किया गया है और फिर उनीसवीं सदी व 'बटेन रेजर' का। इस टिप्पणी व लेखक न यह माना है कि हिन्दी साहित्य में भी आधुनिक एवाकी का रूप इसा पश्चिमी रूप व निकट है। इस

लिए उसने सस्कृत नाट्य-कला के सिद्धांतों के अनुसार इसका स्वरूप का प्रतिपादन नहीं किया है। एकाकी के रूप विधान की चर्चा करते हुए उसने त्रिक्सगति का भी उल्लेख किया है। यह चर्चा बड़ी ही व्यापक और विस्तृत है और एकाकी के अनेक पहलुओं पर रोचक सामग्री प्रस्तुत करती है। रंगमंच के लेखों का भी समुचित प्रतिपादन किया गया है। सस्कृत के नाट्य सिद्धांतों की चर्चा भले ही नहीं की गई हो, किंतु सस्कृत के एकाकी नाटकों का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का उपयुक्त विवरण दिया गया है और उसके बाद लेखक ने भारत-दु युग के एकाकी नाटकों की परम्परा का विस्तृत विवरण किया है। वर्तमान युग के लगभग सभी प्रमुख हिंदी एकाकी लेखकों की और उनके प्रमुख एकाकी नाटकों की चर्चा इस सिलसिले में की गई है। कुल मिलाकर यह विवरण बड़ा ही रोचक और जानकारीपूर्ण है।

इसी प्रकार 'कहानी' सम्बन्धी टिप्पणियाँ भी बड़ी ही मनोमग्न से लिखी गई हैं। एकाकी नाटकों की भाँति ही जहाँ एक ओर प्राचीन पौराणिक कहानियाँ, पुराण, रामायण, महाभारत, अथर्ववेद, जातक, बृहत्कथा, पञ्चतन्त्र और हितोपदेश की कहानियाँ का उल्लेख किया गया है, वहाँ चामर की कटरबरी टेल्स का भी उल्लेख है। आधुनिक कहानी के विकास का परिप्रेक्ष्य भी परिचय में अंकित करते हुए हमें उस हिंदी कहानी के विकास की ओर लाया गया है। वेद और पुराणों के बाद स्वभावतः सस्कृत की कथा और आख्यायिका की विधाओं का निरूपण है और द्वापयुगकालीन और गुप्तकालीन आदि कथाओं का भी उल्लेख दिया गया है। मध्यकालीन कथाओं और प्रमाख्याओं की भी चर्चा की गई है किंतु लेखक के विचार से हिंदी के आधुनिक काल का कहानी कथा के विकास में एक नवीन दिशा है। हिंदी कहानी के प्रसंग में 'शनी कतकी की कहानी' से लेकर रामचंद्र गुबल की ग्यारहवें वर्ष का समय तक की अनेक कहानियाँ का उल्लेख है। लेखक ने बंग महिला की 'दुलाई वाली कहानी' का हिन्दी में प्रथम मौलिक आधुनिक कहानी माना है। हिन्दी की परवर्ती कहानियाँ को अनेक माट बर्गों में बाँट कर निरूपित किया गया है। लेखक के विचार से आधुनिक काल की कहानी अनेक संचित्र, चित्र से विश्लेषण और विश्लेषण में सूक्ष्म विश्लेषण की ओर बढ़ रही है।

इन दो समृद्ध टिप्पणियों के बाद स्थलीय काल में जब हमारी दृष्टि 'आधुनिक काल' पर पड़ती है तो कुछ निराशा हुई। हिन्दी के समग्र साहित्य में आधुनिक काल का विविध महत्व है और उससे सम्बन्धित टिप्पणियों को तीन स्तंभों में चलते चलते निपटार देना कभी भी उपयुक्त नहीं कहा

सकता। फिर केवल आचार का ही प्रश्न नहीं है, आधुनिक काल की पीठिका, परिप्रेक्ष्य विवास और समृद्धि व एकाग का जिज्ञ भी इस टिप्पणी में नहीं हो पाया है। लेकिन यह चप्टा अवश्य की है कि वह इस काल के स्थूल मील पत्थरों का निरूपित कर दे और भारत दु आचार्य द्विवेदी, सुमित्रानंदन पंत रहस्यवाद छायावाद प्रगतिवाद प्रयागवाद आदि के नाम चलते चलते आ गए हैं। साथ ही रानी बतवी की कहानी सलेवर प्रेमचंद वृत्त गोदान तक नवीन नवीन रूप धारण करने वाली इस काल की कहानी की चर्चा भी एक बाक्य में कर दी गई है। किंतु यह टिप्पणी न तो कोई उपयोगी जानकारी ही देती है और न सम्यक्त विषय का ही सम्यक निर्वाह करती है। इसी प्रसंग कामेडी और ट्रेजेडी इन दो शब्दों की टिप्पणियों का भी उल्लेख किया जा सकता है। दोनों ही के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का सम्यक निबन्धन किया गया है। कामेडी के भेदों और उपभेदों की भी सम्यक चर्चा की गई है किंतु उनके विवास का निरूपण करने की ओर विनोद यान नहीं दिया गया। इस प्रसंग में शेक्सपियर की कामेडी व सम्बन्ध में कुछ चर्चा भी उपादेय रहती। ट्रेजेडी सम्बन्धी टिप्पणी इस बारे में ज्यादा उपयुक्त है। ट्रेजेडी शब्द की विभिन्न आचार्यों द्वारा की गई व्याख्याओं के अलावा उसके प्रमुख भेद और उपभेदों को भी वर्णित किया गया है और साथ ही जहाँ एक ओर अस्तू व कथासिद्धि का चित्रण है वहाँ दूसरी ओर जोला गा और चेतव की ट्रेजेडी विषयक धारणाओं का भी निरूपण कर दिया गया है। शेक्सपियर व ट्रेजेडी विषयक दृष्टिकोण का विस्तृत निरूपण यद्यपि यहाँ भी नहीं हो पाया है तथापि अथ दृष्टियाँ स यह टिप्पणी प्रायः परिपूर्ण है।

गान' शब्द की टिप्पणी को भी बड़े सम्यक में निपटा दिया गया है। यद्यपि अमरकोश के उद्धरण द्वारा गीत और गान को समान घोषित किया गया है, तथापि गान की इस टिप्पणी का गीत की टिप्पणी से परस्पर सम्बन्ध नहीं बताया गया। गान की संकल्पना की अविवाश वाता को गीत शब्द की टिप्पणी के अधीन लिया गया है परंतु केवल गान शब्द की टिप्पणी दर्शने वाले का सम्यक समाधान नहीं होता।

टिटोवाद शब्द पर नीच लिखी टिप्पणी दी गई है —
 अंतरराष्ट्रीय कामिनफाम स मूगोस्ताविया के मागन टिटो साम्यवादी होत हुए भी राष्ट्रीय धर्मो म चाहत थे। यही सिद्धान्त टिटोवाद का मूल आधार है। ट्राटस्कीवाद की भाँति सभी प्रगतिवादी इस भाँति दा-बचन के रूप में प्रयुक्त करत हैं।"

इस टिप्पणी पर टिप्पणी निरर्थक होगी।

इसी प्रकार की एक दूसरी टिप्पणी है 'ट्राटस्कीवाद' शब्द पर। इसका भी भविष्य उद्घरण देने का मोह सवरण नहीं कर पा रहा है। 'ट्राटस्की सोवियत शक्ति की सफलता के उपरांत यह चाहता था कि सोवियत शक्तियाँ अथवा पूँजीवादी देशों पर आक्रमण करें। वह शक्ति को रोकना नहीं चाहता था। इसी शक्ति को चिरन्तन शक्ति (permanent revolution) के रूप में उसने व्यक्त किया है। कुछ समय तक प्रगतिवादी आलोचक इस शब्द को निन्दा-वचन के रूप में प्रयुक्त करते रहे हैं।"

अच्छा यह होता यदि इन दोनों टिप्पणियों का ही समावेश इस प्रथम में न किया जाता। समाजवाद और साम्यवाद का हिंदी साहित्य से सम्बन्ध है, किन्तु उनकी ऐसी व्यक्तिनिष्ठ सामान्य प्रशंसाओं पर अलग टिप्पणी देना हिंदी साहित्य की 'क' लिए ग्राह्य नहीं ठहराया जा सकता।

'ढोला मारू' सम्बन्धी टिप्पणी बड़ी ही सक्षिप्त, किन्तु बहुत उपयुक्त है। चार छोटे छोटे पराश्रयों में इस सम्बन्ध में उपलब्ध समूची सामग्रियों को बड़ी योग्यता के साथ लेखबद्ध कर दिया गया है। इस टिप्पणी का अनुसमर्थन ढोला शब्द पर अलग दी गई टिप्पणी भी करती है और दोनों टिप्पणियों को मिलाकर पूरी बात स्पष्ट हो जाती है। किन्तु महा पर भी यह प्रश्न उठता है कि क्या ढोला मारू से पृथक् ढोला शब्द का कोई स्वतंत्र अस्तित्व भी है? यह ठीक है कि ढोला एक अलग प्रकार का लोक-वाक्य है, किन्तु वह भी तो ढोला मारू की कहानी पर ही आधारित है। इन दोनों टिप्पणियों को एक शब्द के अंतर्गत ही काफी उपयुक्त रूप से निपटाया जा सकता था।

हिंदी के मध्यकाल में सत कवियाँ तथा अथवा कवियाँ द्वारा सूक्तिकाव्य का भी निर्माण किया गया था। नीतिकार्य शब्द के अंतर्गत कई प्रमुख सूक्ति-रचयिताओं को लिया गया है। इनमें कबीर नरहरि, तुलसीदास बाघ, रहीम, वृद्ध, गिरिधर आदि की सूक्तियों का विशेष परिचय दिया गया है।

'गर्वा' (गुजराती) और वाउल (बंगला) जैसे भारतीय लोक गीतों पर भी टिप्पणियाँ हैं। पर वाग, भारत के सभी प्रमुख लोक गीतों का नामोल्लेख इसी रूप में कर दिया जाता, तो ज्यादा उपयोगी होता। 'भुजरिया' जैसे कम प्रचलित शब्दों की भी उपयुक्त साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में चर्चा की गई है।

सम्पादन कौशल के ही एक उदाहरण के रूप में अथवा दोष शब्द-दोष और रस-दोष विषयक टिप्पणियों को लिया जा सकता है। इन मूल शब्दों के ही

अतगत समग्र अर्थ-दोषा, शब्द-दापो और रस दोषो को झटके निपटा दिया गया है और फिर प्रत्येक व्यक्तिगत दोष का नाम बणत्रय के अनुसार यथास्थल देकर उनके भागे इस विवेचन का निर्देश कर दिया गया है। पर इस बारे में खटकने वाली बात यह है कि 'वाच्य दोष' जैसे मूल शब्द की चर्चा के अंत में वही भी यह उल्लेख नहीं किया गया कि दोष भेदों का विस्तृत निरूपण इस कोण में अमुक शब्दों के अतगत देखा जा सकता है। सारी बात पाठक की कल्पना शक्ति पर छोड़ दी गई है, जो इस प्रकार के कोशा की रचना के सिद्धांततः विरुद्ध है।

ऊपर दंगनशास्त्र के कुछ शब्दों की टिप्पणियाँ की चर्चा की गई थी। उसी प्रसंग में राजनीतिशास्त्र के कुछ पारिभाषिक शब्दों को भी लिया जा सकता है। राजनीतिशास्त्र के ऐसे प्रमुख शब्दों, जनतंत्र, पूँजीवाद, यत्किवाद, समष्टिवाद, समाजवाद, समूहवाद, उदारवाद, जनतंत्र, पितृप्रधान समाज आदि। यह ठीक है कि इनमें से कई विचारधाराओं का साहित्य से सीधा संबंध है, पर यह बात भी नहीं भुलाई जा सकती कि यह साहित्य कोश है समाजशास्त्र या राजनीतिशास्त्र का कोश नहीं।

इस साहित्य वाङ्मय के प्रधान संपादक के रूप में एक भाषाशास्त्री को देखकर यह अनुमान लगाना अशुभ नहीं था कि यह साहित्य कोश साहित्य शब्द का सङ्ग्रहित अर्थ न लेगा और इसमें भाषाशास्त्र की शब्दावली को भी सम्मिलित किया जाएगा। इस सदन ग्रंथ में भाषाशास्त्र की शब्दावली—भाषा, भाषण भाषा परिवार, वाक्य विचार, रूप विचार ध्वनि ध्वनि विचार, अर्थ विचार, व्युत्पत्ति शास्त्र, शब्द समूह, बोलियाँ आदि पर भी टिप्पणियाँ शामिल करना सबका उचित होता। कम से कम 'लिपि' पर तो एक उपयुक्त टिप्पणी नितान्त अपेक्षित थी। इस शब्दावली को शामिल करने से इस कोण ग्रंथ में एक सर्वांगपूर्णता आती और सदन ग्रंथ के रूप में सग्रहणीयता के नाते उमका महत्त्व और भी बढ़ जाता। पता नहीं क्यों, याजना से इस शब्दावली के बाहर होते हुए भी 'भारत यूरोपीय' शब्द पर एक टिप्पणी दी गई है। इसी विषय के अर्थ सगत शब्दों पर टिप्पणियाँ के अभाव में इस मात्र एक शब्द का ग्रहण बसा ही भ्रामक और अपूर्ण लगता है, जैसी प्रथम खण्ड में 'भरखरी' शब्द पर टिप्पणी। क्या हम सुधी संपादक से यह आशा करें कि इस साहित्य वाङ्मय का एक तीसरा खंड और संपादित किया संपन्न व्यक्ति के लिए यह क्यादा दुःसाध्य भी नहीं है। इस प्रकार विषय निरूपण की दृष्टि में जब य तीन खंड निकल जाए तो फिर अगले संस्करण में इन तीनों

खंडा का विषयाश्रित विभाजन खत्म करके सभी का मात्र वषणक्रम में समावेश किया जाना चाहिए और तदनुसार उपयुक्त खंडों में इसे बांटा जाना चाहिए।

इस प्रसंग में कुछ छोटी मोटी बातों की ओर भी ध्यान आकर्षित किया जा सकता है। 'आदर्शवाद' शब्द दो बार दो अर्थों में (एक बार प्रत्यय-वाद के अर्थों में और एक बार अंग्रेजी आइडियलिज्म के अर्थों में) आया है पर उसके आगे सख्या नहीं दी गई है। दूसरी ओर गजल शब्द दो बार सख्या देकर आया है, पर उसका अर्थ दोनों जगह पर एक ही है। अंग्रेजी के कुछ अप्रचलित शब्द भी यथारूप दे दिए गए हैं—जैसे रिब्यू आर्टिकल पत्ती बूजुआ।

एक बात में यह कहने की गुंजाइश तो सत्त्व बनी रहती कि अमुक शब्द को बहुत संक्षेप में निपटा दिया गया है या अमुक शब्द की व्याख्या बहुत ज्यादा विस्तार के साथ की गई है। फिर भी 'अनुकरण' जैसे शब्द को जिस पर अस्तु का प्रसिद्ध काव्य सिद्धान्त आधारित है आगे स्तंभ में निपटा देना बहुत खटकता है। मुद्रण के दिनों में एक बात विशेष रूप से कही जा सकती है कि मूल शब्दों के लिए जो बारह प्वाइंट का काता टाइप चुना गया है उसी टाइप को उस शब्द के अंतर्गत आने वाले उपशीपकों के लिए भी प्रयुक्त करना उपयुक्त और औचित्यपूर्ण नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिए 'अपभ्रंश' शब्द के अधीन ध्वनि-विकास, व्याकरण और शब्द भंडार शीपक भी उसी टाइप में दिए गए हैं जिस टाइप में मूल अपभ्रंश शब्द। इस तरह के और भी असह्य उदाहरण हैं। इसके लिए कोई औचित्य नहीं है और इससे काफी गड़बड़ी पदा कर दी है।

(३)

नामवाची शब्दावली वाले दूसरे भाग में कुछ शब्दों की टिप्पणियाँ तो निश्चय ही बड़ी रोचक और उपयोगी हैं। अनेक में इन नामों को साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में ही लिया गया है। उदाहरण के लिए 'अगद' संबंधी टिप्पणी की है। इसमें डेढ़ स्तम्भ में नीचे लिखे ग्रंथों का उल्लेख किया गया है—वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, हनुमन्नाटक दूतागद अगद पत्र, रामचरितमानस रामचंद्रिका और रावण महाकाव्य। इसी प्रकार 'दशरथ' संबंधी टिप्पणी के अंतर्गत इन ग्रंथों का उल्लेख है—दशरथ जातक, वाल्मीकि रामायण दशरथ कथावचन, जन साहित्य, स्वदपुराण, रघुवंश, रामचरितमानस, साकेत और कोशल किंगडम आदि।

इस ग्रंथ में प्रमुख लेखकों के प्रमुख ग्रंथों के प्रमुख पात्रों पर भी टिप्पणियाँ हैं। अनेक उदाहरणों में सभी प्रमुख पात्रों पर इससे अंतर्गत आ गए हैं और

उन पर उनके चरित्र चित्रण की दृष्टि से बड़ी उपयोगी टिप्पणियाँ दी गई हैं। कुछ टिप्पणियाँ को बड़े ही सीमित शब्दों में और सक्षिप्त रूप में बड़ी कुशलता के साथ निपटाया गया है। उदाहरण के लिए 'पद्म' शब्द के छ ग्र्यों का निरूपण मात्र सात पंक्तियों में बड़ी दक्षता के साथ कर दिया गया है। 'गुरु ग्रयसाहिब' सबधी टिप्पणी भी बड़े मनोयोग के साथ लिखी गई लगती है और बड़ी ही सुंदर है।

'कालयवन' शब्द पर एक छोटी सी उपयुक्त टिप्पणी है जिसमें उससे सम्बद्ध पौराणिक कथा को सीमित शब्दों में निपटा दिया गया है। 'सूरसागर' के जिन पदों में इस कथा का उल्लेख है, उसकी ओर भी उपयुक्त संकेत द दिया गया है। 'कुणाल' पर एक बहुत ही छोटी टिप्पणी है, जो इस प्रकार है 'सम्राट अशोक का प्रथम पुत्र, जिसकी श्रौं उसकी सीतेली माँ तित्प्यरक्षिता ने अपनी वासनापूर्ति न करने के कारण ईर्ष्यावश फुड़वा डाली थी। इसका प्रामाणिक वृत्त अप्राप्य है। काल्पनिक कथा-सघटनों के आधार पर पण्डित सोहनलाल द्विवेदी ने हिन्दी में कुणाल नामक खण्ड काव्य की रचना प्रस्तुत की है।' यह संक्षेप कुछ उपयोगी तो है परंतु कहानी पूरी तरह स्पष्ट नहीं होती।

'कुचुरमुत्ता निराला की एक विवादास्पद कृति है और इस शब्द से सम्बंधित टिप्पणी में उस भ्रम की ओर उपयुक्त संकेत किया गया है। निराला की व्यंग्य प्रधान कविताओं के इस संग्रह की अग्र कविताप्रा का भी सक्षिप्त परिचय द दिया गया है।

जयशंकर प्रसाद सम्बंधी टिप्पणी इस खण्ड की एक बड़ी ही उपयोगी और महत्त्वपूर्ण टिप्पणी है और होनी भी चाहिए थी। आकार की दृष्टि से भी प्रसाद को जो चार स्तम्भ दिए गए हैं व ठीक ही है और इतने कम में उनके जन्मे बहुप्राण और विविधतामयी प्रतिभा वाले लेखक का निरूपण हो भी नहीं सकता था। प्रसाद की आरम्भिक कवितायाँ से लेकर 'कामायनी तक उनका सभी काव्य ग्र्यों का समुचित और सक्षिप्त परिचय दिया गया है हाँ, उनके नाटक उपन्यास और निबंध केवल एक छोटे से पराग्राफ में निपटा दिए गए हैं जिसमें प्रत्येक का रच मात्र भी परिचय पाठक को नहीं मिल पाता और यह केवल एक छोटी सी सूची बनकर रह जाती है। यह बात अलग है कि इस सूची में से कुछ ज्यादा महत्त्व पूर्ण कृतियों का परिचय अलग से दिया गया है, किंतु एक ता समय कृतियों की अलग टिप्पणियाँ नहीं हैं और दूसरे यह कोई कारण नहीं है कि सामान्य टिप्पणी न भी उनके बारे में कुछ मोटी मोटी बातें न बताई जाए। प्रसाद के सम्पूर्ण साहित्य गिन्य और व्यक्तित्व पर संक्षेप में दो बड़े बड़े पराग्राफों में प्रकाश डाला

गया है। यह ठीक है कि प्रसाद के इस व्यक्तित्व की भाँकी की मात्र दो पैराग्राफों के सीमित स्थान में नहीं दिया जा सकता, फिर भी इन दोनों पैराग्राफों में उनका व्यक्तित्व के प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण अंगों पर प्रकाश डाला गया है।

'जवाहरलाल नेहरू' पर भी डॉ. स्तम्भ की एक टिप्पणी है जिसका शौचित्य लेखक के शब्दों में इस प्रकार है। 'भले ही जवाहरलाल जी ने अधिकतर अंग्रेजी में लिखा हो, वे हिन्दी के भी अच्छे ज्ञाता हैं। उनके मूल हिन्दी निबंध 'सरस्वती तथा विशाल भारत' में प्रकाशित हुए हैं। अपनी रचनाओं द्वारा उन्होंने हिन्दी साहित्य की समृद्धि और नवचेतना दोनों दी हैं। उनकी अपनी विंगिट गैली है अपना वाक्य विन्यास और शब्द चयन है। भाषा और साहित्य के सद्म में भी वे घोर जनतन्त्रवादी हैं और जनतन्त्र में अविचलन भाँसा के कारण ही जनभाषा में भी उनका झटूट विद्वान है।

'तुलसीदास' पर साठे पाँच स्तम्भों की टिप्पणी है और अन्त में १०-११ गिने तुने सहायक शब्दों की सूची भी दी हुई है। फिर वही प्रसंग उठाया जा सकता है कि इतने कम स्थान में तुलसीदास के साथ क्या नहीं किया जा सकता और अनेक दृष्टियों से लेखक को बहुत संक्षेप में काम चलाना पडा है फिर भी न केवल तुलसी से सम्बंधित सभी पुस्तकों की सूची और उनका जीवन और कृतित्व से सम्बंधित समस्याओं की करीब करीब पूरी पूरी भाँकी आ गई है बल्कि तुलसी के कृतित्व के विंगिट मानकों का भी संक्षिप्त निरूपण कर दिया गया है। प्रबंध और मुक्तक ब्रज और अवधो तथा तत्कालीन अनेक काव्य रूपा का प्रतिनिधित्व करने वाली उनकी रचनाओं पर उपयुक्त परिप्रेक्ष्य में समुचित आलोचना की गई है और इस टिप्पणी को पढ़ने वाला तुलसी में सम्बंधित मोटी-मोटी बातों से सुपरिचित हो जाता है। किसी को-ग्रन्थ में किसी भी टिप्पणी का यही एकमात्र गुण माना जाना चाहिए।

तुलसीदास सम्बंधी टिप्पणी की कहानी बहुत कुछ 'रामचरितमानस' सम्बंधी टिप्पणी से पूरी होती है जिसका विस्तार लगभग सात स्तम्भों में है। यह प्रसन्नता की बात है कि इस टिप्पणी के लेखक न रामचरितमानस की विंगेपताओं का निरूपण बाल्मोकि रामायण, अयात्म रामायण आदि के प्रसंगों से उसकी तुलना करते हुए किया है साथ ही उसने तुलसी की मौलिकता और उनके गिल्प के अर्थ गुणों पर भी उचित प्रकाश डाला है। रामचरितमानस की कथा का मक्षप भी कुछ विस्तार के साथ ही द किया गया है। टिप्पणी का आरम्भ रामचरितमानस के रचना मयत् और रचना-गली का उल्लेख करते हुए हुआ है और उसका अन्त रामचरितमानस की

लोकप्रियता का उल्लेख करें।

‘धनिया’ सम्बन्धी टिप्पणी काफी सक्षिप्त है और ‘मोदान’ के होरी की इस व्यवहार कुशल और निर्भीक अर्द्धांगिनी के चरित्र का सम्यक निर्देश करती है। उसकी अदूरदर्शिता, प्रतिशोध भावना, पति के प्रति स्नेह और जाति समाज आदि के प्रति निर्भीक होने की भावनाओं का सन्धेप में उल्लेख कर दिया गया है।

‘प्रबोधचन्द्रोदय’ नाम से हिंदी में अनेक नाटक और काव्य ग्रंथ उपलब्ध हैं, इनका निरूपण तीन अलग शब्दों के रूप में किया गया है। पहले शब्द के अन्तर्गत संस्कृत के इस नाटक के अनेक हिंदी अनुवादों का (जिनकी कुल संख्या छ बतार्ई गई है) परिचय दिया गया है। बाद के दोना शब्दों के अंतर्गत प्रमथ नानक दास और ब्रजवासी दास के प्रबोधचन्द्रोदय का (दोना ही छन्दोबद्ध है) अलग अलग परिचय दिया गया है। इस प्रकार तीन हिस्सों में इस टिप्पणी को बांट देने की प्रणाली का औचित्य कुछ कम ही समझ में आता है। या तो समग्र अनुवादों को अलग अलग वृत्ति मानते हुए उनका अलग अलग परिचय दिया जाना चाहिए या अथवा इन सभी को एक मात्र प्रबोधचन्द्रोदय शब्द के अंतर्गत नपटा देना चाहिए था। जसवंत सिंह के अनुवाद को उच्चकोटि का साप्ताहिक अनुवाद बताया गया है और लोग उनके प्रबोधचन्द्रोदय से बहुत ज्यादा परिचित भी हैं किन्तु उनके प्रबोधचन्द्रोदय का परिचय अलग से नहीं दिया गया।

‘महाभारत’ शब्द पर एक तीन स्तम्भ की टिप्पणी दी गई है, किन्तु इस छोटे से आयाम में ही महाभारत के १३ प्रमुख हिंदी अनुवादों की अलग अलग चर्चा की गई है और इसके अलावा भी दो-तीन नए संस्करणों की चर्चा है। इस प्रकार हिंदी में महाभारत के महत्त्वपूर्ण अनुवादों की भारी इस टिप्पणी के अंतर्गत देखने को मिल जाती है। श्रेय यही है कि संस्कृत महाभारत पर जो सामान्य बात कही गई है वह अत्यंत सक्षिप्त है और भारतीय संस्कृति में इस महाग्रंथ के महत्त्व पर जरा भी प्रकाश नहीं डाल पाती।

‘सुसप्तपतिराय भट्टारी’ पर नीचे लिखी टिप्पणी दी गई है
जन्म १८६५ ई० में हुआ। कई पत्रों—‘बैंकटेंदर ममाचार’, ‘सदम प्रचारक’, ‘पाटलिपुत्र’ आदि का सम्पादन किया। सात भागों में प्रकाशित इनके अग्रणी हिंदी कौंग की पर्याप्त सराहना हुई। विविध विषयों पर लिखी इनके १८ पुस्तकें हैं।” इस टिप्पणी में भी थोटा-सा विस्तार अपेक्षित था।
इस मण्ड में सम्भवतः सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण टिप्पणी सूरदास पर है। सूरदास’ सूरसागर’ और सारावलि’ इन तीनों शब्दों पर कुल मिलाकर १७-१८ स्तम्भ दिए गए हैं। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही है कि सूरदास के जीवन

वृत्त और उनके कृत्या पर काफी व्यापक रूप से प्रकाश डाला जा सकता है। एसी स्थिति में तुलनाएँ जयान्त उपयोगी नहीं हानी, फिर भी इतना सा महज ही कहा जा सकता है कि जहाँ तुलसीदास के जीवन और जन्म और निधन तिथि आदि के बारे में लगभग एक स्तम्भ दिया गया है, वहाँ मूरदास के लिए लगभग छ स्तम्भ। इसी से मूरदास सम्बन्धी टिप्पणी का अपेक्षाकृत महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। सम्भवतः यही कारण है कि मूरदास के जीवन पत्र की ओर जितना ध्यान दिया गया है, उतना उनके कृतित्व पक्ष की ओर न दिया जा सका और उनके साहित्यिक वशिष्ट्य की चर्चा को एक ही स्तम्भ में ही पूरा कर देना पड़ा। फिर भी मूरदास विषयक बहुत ही उपयोगी सामग्री इस साहित्य काग्रेस में एकत्र की गई है।

इस भाग में हिन्दी की प्रमुख सभ्यताओं का भी लिखा गया है जिनमें से उल्लेखनीय हैं—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति नई दिल्ली, हिन्दुस्तानी अकादेमी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन नागरी प्रचारिणी सभा आदि।

प्रमुख नामों की टिप्पणियाँ का आकार क्या है इसकी कुछ जानकारी इसमें मिल जाती है। मूरदास ६ स्तम्भ, रामचरितमानस ७ स्तम्भ, मूरदास ८ स्तम्भ, रामचन्द्र ७ स्तम्भ, राधा ६ स्तम्भ, रामचन्द्र गुप्त ६ स्तम्भ, तुलसीदास १ स्तम्भ, रामधारीसिंह त्रिवर ५ स्तम्भ, जयान्त प्रसाद ५ स्तम्भ, दयानन्द ३ स्तम्भ। इस प्रसंग में भूमिका के रूप में का उद्धरण बहुत कुछ प्रासंगिक है और सारी स्थिति का स्पष्ट कर देता है। सामान्यतः लेखकों तथा कृतियों पर प्रस्तुत की गई टिप्पणियाँ का एक सीमा तक सानुपातिक विस्तार उनके मापन महत्त्व तथा उपलब्धि का मूल्यांकन दे सकता था। काय गुरु करण समय यह बात ध्यान में थी। परन्तु इस मिथ्याता का निर्वाह कई कारणों से नहीं किया जा सका। इनमें लेखकों पर प्राप्त सामग्री, उनकी रचनाओं की संख्या तथा सहयोगी लेखकों की गतिविधियों की विभिन्नता प्रमुख कारण माने जा सकते हैं। इस स्थिति में प्रस्तुत टिप्पणियाँ का आकार से लेखकों के महत्त्व या मूल्यांकन का कोई भी निश्चित सम्बन्ध नहीं है यह मानकर चलना चाहिए। इस उद्धरण को बवल में परिप्रेक्ष्य में पढ़ना चाहिए कि इसमें अनाहत अनाचना से बचन की संपादकीय कला भी भौक रही है।

पहले भाग की ही भाँति इस भाग के बारे में भी हमें इन बातों के बहू जान का गुजाइश है कि प्रमुख प्रमुख महत्त्वपूर्ण नामों को नहीं लिखा गया है या प्रमुख टिप्पणियों को बहुत संक्षेप में निरूपित किया गया है। यह बात विनापत 'उपनिषद्'

जसे शब्दा पर दी गई अत्यन्त सक्षिप्त और अधूरी टिप्पणियों के बारे में कही जा सकती है। वेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, सामवेद, आरण्यक, ब्राह्मण, जातक आदि अनेक प्राचीन ग्रन्थों पर टिप्पणियाँ का सबथा अभाव भी बड़ा सटकता है। और, इस बात की धार तब और पनी हो जाती है जब यह बात इस परिप्रेक्ष्य में देखी जाती है कि कुछ नगण्य पुस्तकों पर भी विस्तृत टिप्पणियाँ दी गई हैं, जैसे ज्ञान कवि की कथा बिजयवा साहिजादे व दबल दे की पर तीन स्तंभ लम्बी टिप्पणी दी गई है और 'दरवदन ओ माहियार' पर चार स्तंभ की।

गंगा यमुना, नरस्वती, नमदा, कावरी, गादावरी और सिन्धु नदिशा पर टिप्पणियाँ दी गई हैं पर मन्दाकिनी, सरयू, सोन, वेतवा, गोमती, काली, सतलुज, व्यास, रावी, चिनाब, भेनम आदि ऐसी अनेक नदियों को नहीं लिया गया है, जिनका हिन्दी साहित्य में काफी उल्लेख है। भारत के अनेक पहाड़ों का हिन्दी साहित्य में उल्लेख है पर इसकाश में एक भी पर्वत नहीं लिया गया है। रभा, तिलोत्तमा और उवगी पर टिप्पणियाँ हैं, पर मेनका पर नहीं। मुकरात का एक स्तंभ दिया गया है पर अरस्तू का नामोल्लेख नहीं है। पिरामिड पर एक छोटी सी टिप्पणी है पर अनेक कविताओं के प्रेरक ताजमहल को छोड़ दिया गया है। अगद सत्रधी टिप्पणी में इस भामक वाक्य को देखिए—“वाल्मीकि कृत अगद चरित्र ही परवर्ती राम काव्यों के लिए आधार रहा है।” यहाँ 'कृत' का अर्थ है वाल्मीकि द्वारा निरूपित लेकिन स्पष्ट ही वाल्मीकि किसी अगद चरित्र वाक्य के प्रणता नहीं हैं। इस कोश में १० मा० मु० की और चरवर्ती राज-गोपालाचारी पर टिप्पणियाँ देतकर अचम्भा होता है, जबकि रवीन्द्र, बंकिम चरद सुप्रहाण्यम् भारती आदि पर कोई टिप्पणी नहीं है।

जिन विद्वानों पर टिप्पणियाँ दी गई हैं उनके बारे में भी प्रामाणिक सामग्री सक्लित करने के लिए कभी-कभी विशेष ध्यान नहीं दिया गया। 'गभुनाय 'शेष' के बारे में यह वाक्य कि "कई वर्ष पूर्व अकरमात् आपका देहात हो गया" या वचनग मित्र के बारे में यह वाक्य कि "कई वर्ष पूर्व आपका देहात हो गया" इसके उदाहरण में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। 'शेष' के बारे में सामग्री साप्ताहिक हिन्दुस्तान की पुराना फाइलों से या दिल्ली के पुराने साहित्य-सेवियों से प्राप्त की जा सकती थी और निधन तिथि तो आकाशवाणी से ही प्राप्त हो जाती। इसी प्रकार वचनेग के बारे में काफी सामग्री परम्परा की विज्ञान हिन्दी संस्था से प्राप्त की जा सकती थी।

(४)

ऊपर 'हिन्दी साहित्य कोश' के दोनो खंडो के बारे मे जो पृथक पृथक विस्तृत चर्चा की गई है उसके अलावा भी बहुत सी ऐसी बातें हैं जो दानो खंडो के बारे मे सामान्य रूप से कही जा सकती है। यह ठीक है कि अनेक स्थलो पर सहायक ग्रन्थो का यथावत उल्लेख कर दिया गया है। आरम्भकथा' के नीचे अवदात्त ग्रन्थ सूची का पीछे उल्लेख किया गया था। पर सच पूछा जाए तो ग्रन्थ-सूची का उल्लेख करने मे बहुत कृपणता दिखाई गई है। कृष्ण' पर आठ स्तम्भो की विस्तृत टिप्पणी दी गई है, पर सदभ ग्रन्थो का उल्लेख बहुत ही अधूरा है। यह बात अनक ऐस शब्दो के बारे मे भी कही जा सकती है जिनके नीचे सहायक ग्रन्थ सूची दी तो गई है पर अधूरी दी गई है। इसके अलावा अमर्य एमे गब्द हैं, जिनके नीचे ग्रन्थ सूची दी जानी चाहिए थी पर दी नहीं गई है। यही बात अत मदभ या परस्पर-मदभ के बारे मे भी कही जाएगी। पीछे 'का-य दोष' शब्द के अन्तगत गब्द-दोष, अर्थ लोप और रम दोष गब्दो का उल्लेख न करने का जिक्र किया गया था। यही बात लंगको और उनकी कृतियो और उनके पाना सम्बन्धी टिप्पणियो के बीच परस्पर सदभ के सवधा अभाव के बारे मे भी कही जा सकती है। मान लीजिए मैंने प्रेमचन्द की टिप्पणी पढ़ी। इस टिप्पणी के अन्त मे हा मुझे पता लग जाना चाहिए कि गोदान, सेवामदन, निमला, रगभूमि, कायाकल्प आदि पर अलग से टिप्पणिया दी गई है जो मुझे यथास्थान देख लेनी चाहिए। इसी प्रकार गोदान सम्बन्धी टिप्पणी के नीचे ही उसके प्रमुख पात्र होरी, धनिया आदि की टिप्पणियो को यथास्थान देख लेना का सक्त मुझे मिलना चाहिए। इसी प्रकार प्रेमचन्द या जयगर्जर प्रसाद गब्द के अन्त मे इन दोनो के बारे मे अब तक लिखे गए सभी प्रमुख ग्रन्थो की सूची भी दी जानी चाहिए। हम विश्वास है कि कोश के नए संस्करण मे इन सभी बातो की ओर समुचित ध्यान दिया जाएगा।

किन्तु इन छोटी मोटी त्रुटियो का जो उल्लेख ऊपर किया गया है उसे केवल नए संस्करण मे समाहित सुधारो के लिए लिए जान वाले सुभावा के रूप मे ही देना जाना चाहिए। इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि इन छोटे माटे अभावो से इस महान् कृति का महत्त्व घट जाता है। हम आरम्भ मे ही यह स्वीकार कर चुके हैं कि 'हिन्दी साहित्य कोश' का प्रणयन हिन्दी साहित्य जगत् की एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण घटना है। इतने भारी काम मे, कम मे-कम पहले संस्करण मे कुछ छोटी मोटी भूलो का घा जाना बहुत बड़ी बात नहीं है। महत्त्व तो इस

बात का है कि इतने विशाल पमाने पर इतनी महान् योजना बनाई गई और उसे बड़ी कुशलता के साथ कार्यान्वित किया गया। यह हमारा दृढ़ विश्वास है कि 'हिंदी साहित्य कोश' का स्थान हिंदी साहित्य के प्रत्येक अध्ययन में बड़ा साधक रहेगा और उसमें हिंदी साहित्य के एक बड़े भारी अभाव की बहुत भारी मात्रा में पूर्ति हुई है। इस प्रकार के सद्भ प्रया से ही किसी भी साहित्य को समृद्ध कहा जा सकता है। हिंदी साहित्य को समृद्ध बनाने में 'हिंदी साहित्य कोश' का निश्चय ही एक बड़ा महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

हिन्दी विश्वकोश : एक महत्प्रयास का आरम्भ

ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में सदाभ ग्रंथों का कितना महत्त्व है वहन की आवश्यकता नहीं। हमारा भारतीय वाङ्मय अथ अनेकानेक क्षेत्रों की भाँति सदाभ ग्रंथों के क्षेत्र में भी पर्याप्त अग्रणी रहा है। अत्यन्त प्राचीन काल से ही यहाँ निघण्टुशा, कोशों एवं अनुक्रमणियों आदि की परंपरा मिलती है। किंतु आधुनिक पद्धति पर बनाए जाने वाले सदाभ ग्रंथों की परंपरा सच्चे अर्थों में यहाँ यूरोपीय संपर्क के बाद ही प्रारंभ हुई। विश्वकोश के क्षेत्र में बंगाली भाषा अग्रणी हुई। श्री नगेंद्रनाथ वसु ने बंगला विश्वकोश का संपादन किया जिसका प्रकाशन १९११ में पूर्ण हुआ। श्री वसु ने ही अनेक हिन्दी विद्वानों के सहयोग से बंगला विश्वकोश का आधार पर २५ भागों में 'हिन्दी विश्वकोश' प्रकाशित (१९१६ से १९२५ तक) किया। आगे चलकर मराठी, गुजराती आदि में भी कुछ ऐसे प्रयास हुए। महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश—जो एक प्रकार से विश्वकोश ही है—के प्रथम दो भाग भी हिन्दी में अनूदित होकर प्रकाशित हुए।

स्वतंत्रता के उपरांत सभी भारतीय भाषाओं में विश्वकोश की योजनाएँ बनीं। प्रस्तुत विश्वकोश भी उसी शृंखला में है। इसे केन्द्रीय सरकार की सहायता से नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ने प्रकाशित किया है।

इस तरह, प्रस्तुत हिन्दी विश्वकोश हिन्दी का तीसरा विश्वकोश है यद्यपि इसे प्रथम भी कह सकते हैं क्योंकि स्वतंत्र रूप से हिन्दी का यह पहला विश्वकोश है। प्रथम दो जसा कि संकेत किया जा चुका है मूलतः बंगला मराठी पर यूनाधिक रूप से आधारित थे।

१९६५ तक हिन्दी विश्वकोश के पाँच खंड प्रकाशित हुए हैं। पहला १९६०

म दूमरा १९६२ मे, तासरा १९६३ म चौथा १९६४ म तथा पाचवाँ १९६५ म। यो तो जब तक इससे सभो खड प्रकाश मे नही आ जाने तक इमरा समुचिन मूल्याकन नही बिया जा सकता किन्तु जो गड आ चुके है और उनके आधार पर जो प्रवृत्तिया सामान्यन दिखाई पड रही है, उह लेकर मोटे रूप से कुछ वाने अवश्य कही जा सकती है। किन्तु उन गता कालन मे पूव यह मकेय है कि हिन्दी म विश्वकाग सभो अपाग गगवावस्था म है। विश्व के प्रसिद्ध विश्वकाग 'इन साइकलापाडिया ट्रिनिटी क प्रथम संस्करण (जो १८वीं सदी म प्रकाशित हुआ था) को जा लाग लेख चके है उह यह बतवान की आवश्यकता नही कि विस्तार प्रामाणिकता गुडता तथा काशीचित गली आदि नी दृष्टि म उसने प्रथम या प्रारम्भिक संस्करण एव बलमान संस्करण म आवाग पाताल का अंतर है। वस्तुत विश्वकाग एक सुनीघ परम्परा क पश्चात ही अप्रक्षित स्वरूप ले पाता है। ऐसी स्थिति म प्रस्तुत हिन्दी विश्वकाग स इम बहुत अधिक आगा नही कर सकत और इसम यदि अनेक कमिया मिलती है ता उसके लिए हम केवल सम्पादक मडल या टिप्पणी लेमको का ही उत्तरदायी नही ठहरा सकने। उसका बहुत कुछ दोष हमार यहा अपेक्षित परम्परा एव वातावरण की कमी आदि पर भी है।

सभो प्रकार क कोसो म सबसे पहले हमारो ध्यान प्रविष्टि (entry) पर जाता है। वस्तुत प्रविष्टि वह मूत्र है जिसने सहारे पाठक काग या विश्वकोश का उपयोग करता है। इसलिए इसके चयन म बहुत सतकता अपेक्षित है। कोग के विस्तार को दृष्टि म रखत हुए यह चयन होना चाहिए ताकि कोई कम आवश्यक प्रविष्टि व्यय मे स्थान न पा जाय या आवश्यक प्रविष्टि छूट न जाय। इस दृष्टि से प्रस्तुत कोश म क्लाचित अपक्षित सतकता नहीं बरता जा सकी है। उदाहरण क लिए 'उपकला' एव उपचर्चा आवश्यक है किन्तु 'उपग्रह' मे अधिक आवश्यकता नही बटे जा सकते। प्रस्तुत विश्वकोश म 'उपकला तथा उपचर्चा' तो है, किन्तु 'उपग्रह' नही है। इसी प्रकार 'उष्णदेशीय आयुर्विज्ञान' है, किन्तु 'उष्णकटिबंध' नही है। विश्वकोश क पाचो खडो म कुन प्रविष्टिया चार हजार से ऊपर हैं, जिनम इस प्रकार की अव्यवस्थाए गताधिक हैं।

'ताजमहल' विश्व की किसी भी भाषा क विश्वकाग के लिए अनिवायत आवश्यक प्रविष्टि मानी जा सकनी है भारतीय भाषाओं के विश्वकोश— और उनम भी हिन्दी के विश्वकाग—के लिए तो कहना ही क्या? आशय है कि प्रस्तुत विश्वकोग मे 'ताजमहल' नही है। इसी प्रकार आधुनिक चित्रकला उपमा (उपमान दिया गया है), ओम, कत्यक, कथाकली कुटीर उद्योग, किशोरा कथा (adolescence) कुहासा या षोहरा कणिका (capillary),

कमरा, कलोरी, गुरुद्वारा, घाटी (Valley) चलचित्र (movies), छत्रक या कुबुर- (Mushroom), छापाभार युद्ध, छुईमुई (Mimosa pudica) जीवन बीमा (Life insurance), तितली, जेन्ना टेलिवाजन, ट्राजिस्टर, त्रिवेणी आदि अनेक अनिश्चायक प्रविष्टियाँ भी इसमें नहीं हैं। इनका छूट जाना विश्वकोश की उपादयता के लिए निश्चित रूप से बहुत घातक है।

प्रविष्टियाँ वणानुक्रम से होनी चाहिए। इसकी भूलें भी प्रस्तुत विश्वकोश में मिल जाती हैं। कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे। खड तीन म खल्द', खाद और उवरक, 'खादी' आदि शब्द प्रमानुकूल नहीं हैं। इन भूला के कारण कई शब्द जा इस वाग में है पाठक का नहीं मिल पाते। कहना न होगा कि इस प्रकार गलत क्रम में दी गई प्रविष्टियाँ का होना-न-होना बराबर है क्योंकि उन्हें पाना बहुत कठिन है।

प्रविष्टियाँ ऐसी हानी चाहिए कि एक ही सामग्री की पुनरुक्ति न हो। यदि सबके प्रविष्टियों का अलग अलग देना अपरिहाय हो तो स्थान बचाने की दृष्टि से सामग्री एक स्थान (जहाँ वह अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त हो) पर दी जानी चाहिए और दूसरे स्थान पर उसके अन्वय होने का संकेत कर दिया जाना चाहिए। कोश में इस बात का भी समुचित ध्यान नहीं रखा गया है। उदाहरण के लिए कीट और कीट विज्ञान दोनों ही प्रविष्टियाँ में लगभग एक ही सामग्री काफी विस्तार से दी गई है। इसी प्रकार डोर के अंतर्गत गाय तथा विभिन्न गो जातियों के विवरण तथा गाय के अंतर्गत विभिन्न गा जातियों के विवरण में काफी निवार्य पुनरुक्ति है तथा कहाँ-कहाँ तो परस्पर विरोध भी है।

विश्वकोश में प्रविष्टियों का निर्देश (Cross reference) भी बहुत आवश्यक है। उदाहरण के लिए यदि किसी जीव या वस्तु आदि के लिए एक से अधिक शब्द प्रचलित हैं तो दोनों को यथास्थान देकर अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित शब्द के साथ अपेक्षित सामग्री देकर दूसरे शब्द के साथ केवल संदर्भ दे देना पर्याप्त होता है। ऐसा न करने पर कभी-कभी अपेक्षित सामग्री नहीं मिलने की शिकायत रहती है। प्रस्तुत कोश में इस प्रकार की गड़बड़ियाँ बहुत अधिक हैं। उदाहरण के लिए इसमें वपान तो है किन्तु कबूतर नहीं है। वस्तुतः 'कबूतर का होना अपेक्षाकृत अधिक आवश्यक था। टिप्पणी उसी के साथ होनी चाहिए थी। क्योंकि यदि आवश्यक ही था तो उसके साथ ही 'कबूतर पर्याप्त होता। किन्तु यहाँ तो 'कबूतर' है ही नहीं। यह संभव नहीं कि देखने वाला 'कबूतर' न पाकर यह समझ ले कि प्रस्तुत कोश में यह नहीं दिया गया है। उसका ध्यान 'वपान' की

घोर जाए ही, यह आवश्यक नहीं है।

प्रबिष्टियों में एकरूपता का भी प्रस्तुत बोध में विशेष ध्यान नहीं रखा गया है। उदाहरण के लिए एक घोर तो 'अवधी भाषा घोर साहित्य', 'असामया भाषा घोर साहित्य' 'बैक भाषा घोर साहित्य', या 'चीनी भाषा घोर साहित्य' जैसे सम्युक्त शीपक हैं, तो दूसरी घोर बिना किसी विशेष कारण के 'जापानी भाषा घोर जापानी साहित्य' दो अलग अलग शीपक है। एकरूपता की दृष्टि से इन्हें एक साथ रखना अधिक उचित था।

प्रबिष्टियाँ की बतनी की घोर भी अनेक स्थलों पर उचित ध्यान नहीं दिया गया है। उदाहरण के लिए हिंदी में 'कुरान' शब्द चलता है न कि 'कुरआन'। यह ठीक है कि मूल शब्द 'कुरआन' ही है किंतु इसका कोष्ठक में उल्लेख पर्याप्त होता। इसी प्रकार हिंदी में 'कोहनूर' चलता है, न कि 'कोहेनूर', या 'कघार' चलता है न कि 'कदहार'। इस प्रकार की अव्यवस्थाएँ घोर भी हैं। 'काजी' घोर 'कागज' में पहले में कुछ उच्चारण देने का प्रयास है तो दूसरे में सामान्य। सब एक प्रकार की बतनी अपेक्षित थी।

हिंदी बतनी में एकरूपता (बहन बहिन, पहचान-पहिवान, अमेरीका अमेरिका दिल्ली दहली आदि) का अभाव है। हिंदी विद्वकोश में भी यह अनेकरूपता है यद्यपि संपादन के समय इसे कम किया जा सकता था। यदि केवल एक उदाहरण द्वारा इस अनेकरूपता को अपने विराटतम रूप में दिखाना चाहें तो 'हैनसांग' शब्द को ले सकते हैं। प्रस्तुत विद्वकोश के दूसरे खंड के पृष्ठ संख्या ४१६ में ५०७ तक अर्थात् केवल ८८ पृष्ठों में, मुझे इसकी पाँच बतनियाँ मिली हैं

- | | |
|-----------------|------------------|
| (१) हुयेनत्सांग | (खंड २ पृ० ४४५) |
| (२) युवात्च्वाड | (खंड २, पृ० ४१६) |
| (३) युवानच्चाग | (खंड २, पृ० ४२५) |
| (४) युवात्च्याग | (खंड २ पृ० ५०७) |
| (५) हुएनत्सांग | (खंड २ पृ० ६५०) |

ये इनके अद्यावधि प्रकाशित खंडों में क्रम क्रम ४५ घोर भी बतनियाँ भर देना मैं आर्क्ष हूँ

- | | |
|----------------|------------------|
| (६) युवानच्चाड | (खंड २, पृ० ३३८) |
| (७) हैनत्सांग | (खंड १, पृ० २०८) |

(८) ह्येन-त्साग (खंड १, पृ० ४७८)

(९) ह्येनसाग (खंड ३, पृ० ४६८)

असंभव नहीं कि इस शब्द की उपयुक्त नौ के अतिरिक्त कुछ और भी वत नियाँ इस विश्वकोश में हों। पाठक वदाचित्त इस बात की उत्सुकता से प्रतीक्षा करेंगे कि प्रविष्टि के शीपक के रूप में इसकी वननी प्रस्तुत विश्वकोश में किस तरह की रखी जाती है।

चालुक्य (खंड ३ पृष्ठ ६६) चौलुक्य (खंड ३ पृ० ७०) जमे कई अर्थों में भी वननी की एसी अनेकरूपताएँ हैं।

या तो छापे की भूलों किसी भी पुस्तक में सबथा निवार्य नहीं हैं किन्तु विश्वकोश में इस दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक सतकता अपेक्षित है। प्रस्तुत कोश में इस प्रकार की कुछ भूलें बहुत खटकती हैं। उदाहरणार्थ विवरण का 'विवरण (उपनिषद् में) मरकारा' का भेरकास' (कुग में) पिशल का पिरोल (दही में) आदि। खंड ४ में पृ० ४० पर गोवधनराम माधवराम त्रिपाठी की जन्म तिथि १८५५ दी गई है जब कि उनके बी० ए० की उपाधि प्राप्त करने की तिथि १८०५। स्पष्ट ही, प्रूफ की गलती के कारण ही जन्म के ५० वर्ष पूर्व बी० ए० कर लेने की यह उलटबासी वन गई है।

जहाँ तक विषयानुसार प्रविष्टियाँ का सबध है मुझ ऐसा लगा कि भौगोलिक नामों को सर्वाधिक लिया गया है। जो विश्वकोश में भौगोलिक नामों का होना चुरा नहीं, किन्तु अफ्रीका अमेरीका के बिल्कुल छोटे छोटे नगरों पर लेखा न इस विश्वकोश में कुछ असंतुलन-सा पदावर दिया है, इसमें सदेह नहीं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भूलत यह विश्वकोश है भूगोल का गजेटियर नहीं।

इस प्रकार भूगोल पर ध्यान तो अधिक दिया गया है, किन्तु भौगोलिक नामों पर जो टिप्पणियाँ दी गई हैं उनमें अनेकानेक स्थला पर सक्षिप्ति, प्रामाणिकता व्यवस्था तथा एकरूपता आदि का अभाव मिलता है। मेरा भौगोलिक ज्ञान बहुत अप्रौढ़ है किन्तु मुझे भी अनेक टिप्पणियों में गलतियाँ मिली। इस प्रकार की कुछ अशुद्धियाँ एव अशुद्धियाँ आदि की और यहाँ सबत करना अनुचित न होगा। नगरों के वनन में वही तो १९०१ की जनसंख्या दी गई है वही १९५१ की ता वही १९६१ की। नगरों की परस्पर दूरी का निर्देश वही मील द्वारा किया गया है तो वही किलोमीटर द्वारा। कुछ राज्यों के चित्र दिए गए हैं किन्तु कुछ के नहीं। राज्य ही क्यों देगा मैं भी यह शय्यवस्था है।

उदाहरणाय दमिणी अमेरीका के विवरण के साथ उसका चित्र दिया गया है, किंतु उत्तरी अमेरीका के साथ कोई चित्र नहीं है। 'अनंतपुर नगर को मद्रास में बतलाया गया है, किंतु यह कदाचित् आंध्रप्रदेश में। 'गुटूर' को भी मद्रास (खंड २ पृ० २४६) में बतलाया गया है, किंतु वह भी आंध्र में है। 'गजाम' में बुरहानपुर की स्थिति बही गई है किंतु यह खडवा में है। वहाँ संभवत बरहामपुर है। इसी प्रकार ज़िद गुडगाँव, कुग, मुल पवत आदि में भी ज्यौरे आदि की गलतियाँ हैं।

विवरणात्मक एवं तथ्य विषयक अनुद्धियाँ या कमियाँ और भी अनेक प्रकार की हैं। वस्तुतः आवश्यकता इस बात की है कि विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों या उनसे सबद्ध व्यक्तियों के पास सबद्ध विषया की टिप्पणियाँ भेजकर संशोधित करा ली जाय। यहाँ मैं कुछ विभिन्न प्रकार की भूलों की ओर मनेत कर रहा हूँ। यदि पाठक क्षमा करें तो मैं अपने ही प्रारम्भ कहूँ। खंड ३ में (पृ० १२ पर) मेरा पता तेहरान विश्वविद्यालय, तेहरान (ईरान) दिया गया है, जब कि मैंने तेहरान विश्वविद्यालय आज तक कभी देखा भी नहीं। मैं था ताशकंद विश्वविद्यालय, ताशकंद (सोवियत संघ) में। 'कालिदास' में आया है 'गद्य के लिए वह शौरसेनी का उपयोग करता है और पद्य के लिए महाराष्ट्री का।' यह वक्तव्य भ्रामक है क्योंकि स्त्री एवं निम्न श्रेणी के पात्रों में ही यह बात मिलती है। जो पात्र सस्मृत्योलत हैं, उन पर यह नहीं लागू होती। 'गुणायम' में बृहत्कथादलोकसंग्रह को क्षेमेद्र वृत कहा गया है किंतु यह रचना ध्रुव स्वामी की है। क्षेमेद्र की रचना का नाम बृहत्कथामजरी है। चत्रवाक' में कोकनद को उसका पर्याय कहा गया है। वस्तुतः चत्रवाक का पर्याय 'कोक' है। कोकनद का अर्थ तो लाल कमल होता है। 'कायम दडी के 'काव्यादास' में काव्य तावदिष्टायव्यवच्छिन्ना पदावली' उद्धृत किया गया है। ठीक दलीकाय कदाचित् है—'गरीर तावदिष्टायव्यवच्छिन्ना पदावली'। कोसल में दक्षिण कोसल का कोई उल्लेख नहीं है। गुणम सिक्कों के दस गुरुआ की चर्चा अनावश्यक न हाती। बुबकुट मुद्ध में ईरान, चीन आदि में इसके अस्तित्व की चर्चा है, किंतु प्राचीन भारत की कोई चर्चा नहीं है, जबकि इसके प्रचलन के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। गणेश में उसकी पूजा परम्परा आदि में अनाय तत्त्व की ओर संकेत नहीं है। गुणम व्याकरण में प्रयुक्त गुण-वृद्धि नहीं है। आदि आदि।

बिनी भी अर्थ में एक दूसरे के विरधी तथ्य पाठक का उल्लेखन वाले हात हैं। विद्वत्कोश जैसे प्रामाणिक प्राप्त अर्थ में तो यह बात और भी अनपेक्षित है।

किन्तु प्रस्तुतकोश में अनेक स्थानों पर विरोधी तथ्य दिए गए हैं। उदाहरण के लिए पृष्ठ २, पृष्ठ २६६ पर कचनचगा को '२८१४६ फुट ऊँचा, गौरीगकर के बाद समार का दूसरा सर्वोच्च पवन गिरार' कहा गया है। किन्तु खड्ड ४ पृ० ४६ पर गौरीगकर की ऊँचाई २० ४० फुट कही गई है। यदि गौरीगकर की ऊँचाई २३४४० फुट है, तो २८१४६ फुट ऊँच कचनचगा से वह अधिक ऊँचा कस है? इसी प्रकार कन्नौज तथा बानमुञ्ज में, एक डोर तथा गाय के अतगत गो जानिया व वणन आदि में भी परस्पर विरोधी बातें हैं। गुटूर को एक स्थान पर मद्रास में कहा गया है (खड्ड २ पृ० २४६) कि तू दूसरे स्थान पर प्राध्र में (खड्ड ३, पृ० ४४५)।

सभी प्रकार की रचनाओं में सतुलन का ध्यान अत्यावश्यक है। प्रस्तुत विश्वकोश इस कसौटी पर भी खरा नहीं उतरता। कई विवरणों में उचित सतुलन का अभाव खटकता है। उदाहरण के लिए उपन्यास पर एक कॉलम की सामग्री है तो 'कहानी' पर साढ़े तीन कॉलम की। इसी प्रकार अटलांटिक महासागर का विवरण लगभग ५० पंक्तियों में है, तो 'इंगलिश चनेल' का ४५ पंक्तियों में।

इस कोश में विषय प्रतिपादन में एकरूपता का उचित ध्यान भी नहीं रखा गया है। उदाहरण के लिए रसायनशास्त्र की कुछ प्रविष्टियाँ देखी जा सकती हैं। एक ओर जर्मनियम का प्रतिपादन पर्याप्त उच्च कोटि का है। उसमें अणु (symbol) परमाणु क्रमांक (atomic number) तथा परमाणु भार (atomic weight) आदि सभी का उल्लेख है किन्तु 'ऑक्सीजन', 'क्लोरीन', 'आयोडीन' के प्रतिपादन बड़े झूठे हैं। उनमें अनेक परमाणु क्रमांक परमाणु भार आदि अत्यंत आवश्यक बातें छूट दी गई हैं जिनका अभाव में य त्रुटिपूर्ण बड़ी सतही हो गई है। इस प्रकार की कमियाँ अन्य कई विषयों में भी हैं।

पीछे अनेक कहा जा चुका है कि प्रस्तुत कोश में जेब्रा नहीं है। दस्त-दाखते चित्रगदभ प्रविष्टि मिली। जेब्रा के लिए चित्रगदभ शब्द का प्रयोग, और वह भी प्रविष्टि के शीर्षक के रूप में, किया गया है। अतः यह उचित है कि यदि कोई जेब्रा देखना चाहे तो वह कैसे जान सकता है कि कौन सा शब्द उग देखना चाहिए। चित्रगदभ जेब्रा के लिए हिन्दी में अति तो क्या, अल्प प्रचलित शब्द भी नहीं है। शब्द निर्माण एवं उसके प्रयोग की इतनी अधिक छूट कम-कम कोशकार को भेर विचार में नहीं लेनी चाहिए। खर में इस भगद में न पट कर कि चित्रगदभ जेब्रा का उपयुक्त प्रतिपादन है या नहीं केवल यह कहना

लेखक दाना ही हिन्दी मसाल की ओर स बघाई के पाग है। हम आशा करनी चाहिए कि आगामी संस्करण म जसम अपक्षित सुधार हान जायेंग और अतत यह विश्वकोश भी उस ऊँचाई को प्राप्त कर सव गा जा विश्वकोश के लिए काम्य होती है। यह जानकर हम आश्चय नही हाना चाहिए कि ब्रिटनिना अमेरिकाना चम्बस तथा सावियत आदि सुप्रसिद्ध विश्वकोश भी अभी तक पूणत अटिरहित नही हे यद्यपि उनक पीछे मुनीष परपग है। एसी स्थिति म हिन्दी विश्वकोश की कमिया के निवारण क लिए मत्नगील तो हम हाना है किंतु उनस निराग होन का कोई कारण ननी।

चाहेंगे कि 'चित्रगदभ' के साथ ही यदि मामग्री दती थी, तो भी 'जेन्ना' यथास्थान अर्थ देना चाहिए या और वहाँ दो चित्रगदभ सक्त होना चाहिए। वस्तुतः इस प्रकार का यह अकेला उदाहरण नहीं है। इस अर्थ का प्रस्तुत विश्वकोश में नहीं लाया गया है किन्तु उनके लिए प्रयुक्त प्रतिशब्द हिन्दी में प्रचलित नहीं है अतः उन्हें सयोगदशात तो पाया जा सकता है किन्तु आवश्यकता पड़ने पर उन्हें खोज पाना संभव है। गदभ' और 'गदहा' दोनों ही काग म नहीं हैं। संभव है किसी अन्य शब्द के अंतर्गत इस पर मामग्री हो, कि तु वह किस काम का? इसी प्रकार 'उलूक' या 'उलूक' भी नहीं है।

हिन्दी में पारिभाषिक शब्दों का अभाव है। जो थोड़े बहुत बन भी हैं उनके बारे में मनबय नहीं है। एक ही अर्थ की शब्दों के लिए कोई ध्वनि या कोई मर्यादा एक ही शब्द का प्रयोग है तो दूसरी संस्था या दूसरी व्यक्ति दूसरे का। यही नहीं जिनके बारे में मनबय है उनका भी समुचित प्रचार नहीं हुआ है। इसीलिए यह बहुत आवश्यक है कि हिन्दी विश्वकोश जंग सदभ प्रथम दोस प्रकार के सभी पारिभाषिक शब्दों के साथ कोष्ठक में अर्थों का प्रयोग भी किया जायें। प्रस्तुत विश्वकोश में इस बात का कुछ ध्यान रखा तो गया है कि तु काफी स्थानों (जैसे उपचर्या आदि) पर अर्थों का प्रयोग नहीं है और इस अभाव के कारण अनेक स्थानों पर पाठकों के समक्ष कठिनाई आना स्वाभाविक है। अनेक प्रविष्टियों के साथ अर्थों का प्रयोग दिया भी गया है तो एकरूपता नहीं है। उदाहरण के लिए 'उष्ण' के साथ कोष्ठक में लिखा है अर्थों में हीट ता उष्ण विज्ञान' के या 'उष्णजिन के साथ कोष्ठक में केवल हाटिकल्चर का प्रयोग है, और कठिनाई के साथ कोष्ठक में रोमन में laryngitis है। इन तीनों के अतिरिक्त कहीं-कहीं एक चौथी पद्धति भी है। उदाहरण के लिए 'कटगुडी के साथ कोष्ठक में नागराक्षर में 'प्रकाशोमेफाना' तथा रोमन में Acanthocephala है। इसी प्रकार 'कपोतक' के साथ डब Dove दाना है। इन चारों के स्थान पर एक पद्धति ही अपेक्षित थी। कदाचित् केवल रोमन में देना पर्याप्त होता।

उपाई शब्दों के विषय में भी जो शब्दों कह जा सकते हैं। उपाई में भी एक रूपता नहीं है। चौथे खंड के शब्दों के अर्थों में छोटे टाइप में है। साथ ही प्रविष्टियों के बीच रिक्त स्थान भी कम है। विश्वकोश स्यामी महस्व के हान है, किन्तु प्रस्तुत विश्वकोश की जिल्द दतनी सामान्य है कि बहुत जल्द यह पटने लगती है।

अंत में दत्ता और जाड दत्ता में आवश्यक समझता है कि उपयुक्त कमियों के बावजूद प्रस्तुत विश्वकोश हिन्दी में उपयुक्त और प्रामाणिक विश्वकोश का एक अच्छी आधारभूत रची है किन्तु इसके लिए संपादक तथा टिप्पणी

लेखक दोना ही हिन्दी मसार की ओर स बधाई व पात्र है। हम आशा करनी चाहिए कि आगामी सस्करण म इसम अपक्षित सुधार होत जायग और अतत यह विश्वकोश भी उस ऊँचाई का प्राप्त कर सवगा जा विश्वकोशाक लिए काम्य हाती है। यह जानकर हम आश्चय नहीं हांना चाहिए कि ब्रिटनिशा अमरिकाना चम्बस तथा सोवियत आदि सुप्रसिद्ध विश्वकोश भी अभी तक पूणत त्रुटिरहित नहीं है यद्यपि उनके पीछे सुनीष परपरा है। एमा स्थिति म हिन्दी विश्वकाग की कमिया के निवारण क लिए यत्नगील तो हम हांना है किंतु उनस निराग होत का कोई कारण नहीं।

